卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

चलो - चलें

चलो - चलें, चलो - चलें, चलो - चलें - सम्मेदाचल छांव में।
बढ़ो चलें, बढ़ो - चलें, बढ़ो चलें - सिद्धों की राहों में . . .
हुए यहां अनन्तों सिद्ध, शुद्धातम की बाहों में।
होगें यहां अनन्तों सिद्ध, तिनको शीश नवाऊ मैं।१।
रहें यहां अनन्तों सिद्ध, सम श्रेणी में ध्याऊं मैं।
रहेंगे यहां अनन्तों सिद्ध, चेतन सिद्ध स्वभावों में।२।
वन्देगे यहां अनन्तो भव्य, सिद्धों को ध्याऊ मैं।
शाश्वत सिद्धक्षेत्र यह है, दर्शन कर सुख पांऊ मैं।३।
पंचम गति का पथ है सीधा, तामें ध्यान लगाऊं मैं।
अब संसार भ्रमण नश जावे, यही भावना भाऊं मैं।४।

ॐ

जिनेन्द्र भक्ति गंगा

आध्यात्मिक कविवर श्रीयुत बनारसीदास, द्यानतराय, दौलतराम, भागचन्द भैया भगवतीदास, बुधजन, भूधरदास, नन्दब्रह्म बुधमहाचन्द्र, नैनसुख, सुखसागर, जिनेश्वरदास, रूपचन्द, जगतराम, नवल, कुजी, बखतराम, चुन्नी, क्षुल्लक मनोहर वर्णी, सौभाग्य, ब्र निर्मलकुमार, शिवराम मक्खन, चम्पा, छत्त, मनराम, धर्मपाल, भंवर, ज्ञान, ज्योति, भोमराज, माणिक, न्यामत, पथिक, केवल, पकज, हितैषी, राजेन्द्र, जयकुमार, राजमल पवैया आदि - आदि प्राचीन एवम् आधुनिक आध्यात्मिक कवियों के भजनों / भक्तियों आदि का **'अपूर्व संकलन'** ।

प्रकाशक : श्री दि० जैन तेरापंथ महासंघ
कार्यालय एम-२३१, ग्रेटर कैलाश पार्ट II, नई दिल्ली, ४५
(फोन ६४१४३७३)

हे जिनवाणी माँ !

तेरा वैभव अमर रहे माँ !
हम दिन चार रहें न रहें।
भव के कष्ट नशें आश्रय से,
कर्म कलंक कोई न रहें।।

श्री दिगम्बर जैन तेरा पंथ महासंघ
कार्यलिय एम - २३१, ग्रेटर कैलाश पार्ट II
नई दिल्ली - ४५ (फोन ६४१४३७३)

(जिन भाइयों को यह साहित्य अपने आधार से छपवाना हो, वे हमसे प्रेस आफसेट लेकर "जयतु - जिनशासनम" में सहयोग ले सकते हैं।)

पता: श्री वीतराग विज्ञान प्रभावना मण्डल
४८ / ८९ जनरलगज, पचकूचा - कानपुर
(फोन २६९६५८)

न्योक्षावर लागत मूल्य से कम रु० १५ /-

प्रकाशकीय

श्रमण संस्कृति में प्राचीन ज्ञानी महापुरुषों ने अपने स्वानुभव की कलम को आत्मा में डुबो-डुबो कर जिस काव्य जगत का सृजन किया, वह प्रत्येक आत्मार्थी को शुद्धात्मा तक पहुँचाने में बड़ा सम्बल जान पड़ता है ।

प्राचीन आचार्यों ने जिस पद्य की रचना प्राकृत/संस्कृत भाषा मे की, वे तो जिनशासन के प्राणभूत ग्रन्थ ही बन गये हैं। फिर भी विगत ४०० वर्षों की परंपरा में प्राचीन एव आधुनिक कवियों ने जिन आध्यात्मिक भजनों एवं देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से ओतप्रोत जिन आध्यात्मिक गीतों की रचना की है, उन्ही का संकलन यह '**जिनेन्द्र भक्ति गंगा**' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है ।

इस संकलन में ७०० से भी अधिक भजनों को संगृहीत किया गया है तथा उन्हें १५ विषयो में मात्र औपचारिक रूप से विभाजित भी किया गया है यद्यापि एक भजन का एकाधिक विषयों में समावेश हो जाता है, तथापि उसे किसी एक विषय के अन्तर्गत ही लिया गया है अतः पाठकगण अन्यथा न लें ।

इस प्रकाशन मे जिन-जिन व्यक्तियों का हमे जिस किसी प्रकार सहयोग प्राप्त हुआ है, हम उन सभी का नामोल्लेख किये बिना बहुत-बहुत आभार व्यक्त करते हैं ।

आशा है पाठकगण 'जिनेन्द्र भक्ति गंगा' में स्नान करके अनन्त-अनन्त सिद्धात्मों मे साथ अपना एकत्व स्थापित करेंगे एवं शीघ्रातिशीघ्र स्वयं अमृता मुक्ति को प्राप्त करेंगे — यही मंगल कामना है ।

श्री दिगम्बर जैन तेरा पंथ महासंघ

ॐ

विषय-सूची

आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान ।
विश्व शांति का मूल है, वीतराग-विज्ञान ।।

वर्णानुक्रमानुसार अनुक्रमणिका

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

"हे भगवन् जो तेरापंथ वो मेरा पंथ,
हे भगवन् ! वो मेरा पंथ जो तेरापथ"

पंथ वही . . . .

पंथ वही सर्वज्ञ जहां प्रभु, जीव - अजीव का भेद बतावें।
पंथ वही निर्ग्रन्थ महामुनि, देखत रुप महा सुख पावें।।
पंथ वही जहां ग्रन्थ विरोध ना, आदि - अनंतलों एक बतावें।
पंथ वही जहां जीवदया वृष, कर्म नशाय के सिद्ध बनावें।।
पंथ वही जहा साधुचले सब, चेतन की चरचा चित लावें।
पंथ वही जहां आप विराजत, लोक - अलोक के ईश हो जावें।।
पंथ वही परमान चिदानंद, जाके चले भव भूल ना आवे।
पंथ वही जहां मोक्ष को मारग, सीधे चले शिव लोक में जावें।।

जयति-जिनशासनम्

बारह भावना

जग है अनित्य[1] ता में *शरण न वस्तु कोय*[2]।
तातें दुख *रासी भववास*[3] को निहारिये ॥
एक चिद्‌चिन्ह[4] सदा *भिन्न पर द्रव्यनितें*[5]।
अशुचि[6] शरीर मे न आपा बुद्धि धारिये ॥
रागादिक भाव[7] करें कर्म को बढावे तातें।
संवर स्वरुप[8] होय *कर्मबंध टारिये*[9] ॥
तीन लोक[10] माँहि *जिन धर्म एक दुर्लभ*[11] है।
तातें *निज धर्म*[12] को न छिनहूँ विसारिये ॥

१	अनित्य	२	अशरण	३	ससार
४	एकत्व	५	अन्यत्व	६	अशुचि
७	आश्रव	८	सवर	९	निर्जरा
१०	लोक	११	बोधि	१२	धर्म

卐 जयतु जिनशासनम् 卐

१. देव भक्ति

णमोकार मंत्र आरती (पंच परमेष्ठी)

ॐ णमो अरिहंताण स्वामी णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं - णमो आईरियाणं – (२)
णमो उवज्झायाणं - णमो लोए सव्व साहूण
प्रथमहि श्री अरहंत जिनेश्वर गुण अनन्त धारी, स्वामी.....
ज्ञान अनंते दरश अनंते – (२) सुख बल भंडारी – ॐ णमो।
दूजे सिद्ध सदा सुख दाता शिवपुर के वासी, स्वामी .....
पूर्ण शुद्ध परमातम् प्रभूजी – (२) अविचल अविनाशी ॐ
तीजे श्री आचार्य परम गुरु छत्तीस गुण धारी स्वामी .....
पंचाचार अचारी स्वामी – (२) मुनिसंघ संचारी – ॐ णमो।
चौथे श्री उपाध्याय गुरुजी स्वाध्याय धारी, स्वामी .....
ग्यारह अंग पूर्व चौदह के – (२) नित अभ्यासकारी – ॐ णमो।
पंचम सब मुनिराज लोक के रतनत्रयधारी स्वामी .....
आठ बीस गुण मूल सहित – (२) शुद्धातम चारी – ॐ णमो।
एसो पंच णमोयारो स्वामी सव्वपावप्पणासणो, स्वामी.....
मंगलाणंच सव्वेसि स्वामी – (२) पढमं होई मगलम् – ॐ णमो
.....

धन्य धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है

धन्य धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है ।
जिन चरणों की भक्ति करके आनन्द अपार है ।।टेक।।
खुशियाँ अपार आज हर दिल में छाई हैं, ।
दर्शन के हेतु देखो जनता अकुलाई है ।।
चारों ओर देख लो भीड़ बेशुमार है ।।१।।
भक्ति से नृत्य गान कोई हैं कर रहे, ।
आतम सुबोध कर पापों से डर रहे ।।
पल-पल पुण्य का भरे भन्डार है ।।२।।
जय जय के नाद से गूँजा आकाश हैं, ।
छूटेंगे पाप सब निश्चय ये आज है ।।
देखलो "सौभाग्य" खुला आज मुक्ति द्वार है ।।३।।

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ......

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुःखडा पाऊँ ।।टेक।।
आन कुदेव कुरीति छाँड के, श्री महावीर चितारूँ ।
राग-द्वेष का मैल जलाकर, उज्ज्वल ज्योति जगाऊँ ।।
अपनी मुक्ति-तिया हर्षाऊँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ ।।१।।
निज अनुभूति महालक्ष्मी का, वास हृदय करवाऊँ ।
निजगुण लाभ दोष टोटे का, लेखा ठीक लगाऊँ ।।
जासो फेर न टोटा पाऊँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ ।।२।।
ज्ञान-रतन के दीप मे, तप का तेल पवित्र भराऊँ ।
अनुभव ज्योति जगा के, मिथ्या अन्धकार बिनसाऊँ ।।
जासों शिव की गैल निहारूँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ ।।३।।
अष्ट करम का फोड फटाका, विजयी जिन कहलाऊँ ।
शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, शील स्वभाव लखाऊँ ।।
जासो शिवगोरी बिलसाऊँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ ।।४।।

जो मोह माया मान मत्सर......

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर है ।
जो विपुल विघ्नो बीच मे भी, ध्यान धारण धीर है ।।टेक।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर है ।
वे वदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वय महावीर है ।।१।।
जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान मे ।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान मे ।।२।।
युगपद् विशद् सकलार्थ झलके, ध्वनित हो व्याख्यान मे ।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरे हमारे ध्यान में ।।३।।
जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है ।
जिनके गुणो के कथन में, गणधर न पावै पार है ।।४।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है ।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वदना शत बार है ।।५।।

माता प्रियकारणी ने उपजायो वीर ललना.....

माता प्रियकारणी ने उपजायो वीर ललना।
वीर ललना श्री तीर्थंकर ललना ।।टेक।।
इन्द्रादिक भव क्षय के कारण, खुशियाँ खूब मनायें।
जय-जयकार करे प्रभुजी का, बाजे विविध बजावें।।
तान्डव नृत्य रचायो इन्द्र नृप के अंगना ।।१।।
डलो पालना चदन को तीर्थंकर जिसमें झूलें।
जिनका भव नहीं होना, वे देख हृदय में फूलें।।
ऐसी हर्षित होय शची, जिनका झुलावें पलना ।।२।।
और झुलावे नर नारी सब, खींच-खीच कर डोरी।
जन्म हमारा न हो प्रभुजी, ऐसी गावें लोरी।।
चहुँगति फेरा मिट जावे ऐसी दृष्टि धरना ।।३।।
जनम-मरण का नाशक प्रभु ने दिया हमें उपदेश।
करो नही तुम परद्रव्यन मे किंचित् राग न द्वेष।।
ऐसे धर्म से 'निर्मल' होवे न पुनः रुलना ।।४।।

निरखो अंग-अंग जिनवर के.....

निरखो अंग-अग जिनवर के, जिनसे झलके शान्ति अपार ।।टेक।।
चरणकमल जिनवर कहें, घूमा सब ससार।
पर क्षणभगुर जगत में, निज आत्म तत्व ही सार।।
याते पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।१।।
हस्तयुगल जिनवर कहें, पर का करता होय।
ऐसी मिथ्याबुद्धि ते ही भ्रमण चतुर्गति होय।।
याते पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।२।।
लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार।
पर दुःखमय गति चार में, ध्रुव आत्म तत्त्व ही सार।।
यातें नाशा दृष्टि विराजें जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।३।।
अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्म तत्त्व दरशाय।
जिनदर्शन कर निजदर्शन पा, सद्गुरु वचन सुहाय।।
यातैं अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ।।४।।

आओ जिन मंदिर में आओ.....

आओ जिन मंदिर में आओ, श्री जिनवर के दर्शन पाओ।
जिनशासन की महिमा गाओ, आया आया रे अवसर आनन्द का।।टेक।।
हे जिनवर तब शरण में, सेवक आया आज।
शिवपुर पथ दरशाय के, दीजे निजपद राज।।
प्रभु अब शुद्धातम बतलाओ, चहुँगति दुःख से शीघ्र छुड़ाओ।
दिव्यध्वनि अमृत बरषाओ, आया प्यासा मैं सेवक आनन्द का।।१।।
जिनवर दर्शन कीजिए, आतम दर्शन होय।
मोह महातम नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय।।
शुद्धातम का लक्ष्य बनाओ, निर्मल भेदज्ञान प्रगटाओ।
इन विषयो से चित्त हटाओ, पाओ पाओ रे मारग निर्वाण का।।२।।
चिदानन्द चैतन्य मय, शुद्धातम को जान।
निज स्वरूप में लीन हो, पाओ केवलज्ञान।।
नव केवललब्धि प्रगटाओ, फिर योगो को नष्ट कराओ।
अविनाशी सिद्धपद पाओ, आया आया रे अवसर आनन्द का।।३।।

गा रे भैया..... गा रे भैया.... गा रे भैया.....

गा रे भैया, गा रे, भैया गा रे भैया गा, प्रभु गुण गा तू समय न गँवा।।टेक।।
किसको समझे अपना प्यारे, स्वारथ के सब रिश्ते सारे।
फिर क्यों प्रीति लगाये - ओ भैयाजी गा रे भैया.. ।।१।।
दुनिया के सब लोग निराले, बाहर उजले अन्दर काले।
फिर क्यों मोह बढ़ाये - ओ बाबूजी गा रे भैया.. ।।२।।
मिट्टी की यह नश्वर काया, जिसमें आतम राम समाया।
उसका ध्यान लगा ले - ओ लालाजी गा रे भैया... ।।३।।
स्वारथ की दुनिया को तजकर, निशदिन प्रभु का नाम जपकर।
सम्यक् दर्शन पा ले - ओ काकाजी गा रे भैया.... ।।४।।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाकर, निर्मल भेद-ज्ञान प्रगटकर।
मुक्तिवधू को पाले - ओ लालाजी गा रे भैया... ।।५।।

प्रभु ! तुम आतम ध्येय करो......

प्रभु ! तुम आतम ध्येय करो ।
सब जगजाल तनो विकल्प तज निजसुख सहज वरो ।।टेक।।
हम तुम एकदेश के वासी, इतनो भेद परो ।
भेदज्ञान बल तुम निज साधो, हम विवेक विसरो ।।१।।
तुम निज राच लगे चेतन में, देह से नेह टरो ।
हम सम्बन्ध कियो तन धन से, भववन विपति भरो ।।२।।
तुमरो आतम सिद्ध भयो प्रभु, हम तनबन्ध धरो ।
याते भई अधोगति हमरी, भवदुख अगनि जरो ।।३।।
देख तिहारी शान्त छवि को, हम यह जान परो ।
हम सेवक तुम स्वामी हमारे, हमहिं सचेत करो ।।४।।
दर्शनमोह हरी हमरी मति, तुम लख सहज टरो ।
'चम्पा' सरन लई अब तुमरी, भवदुख वेग हरो ।।५।।

म्हारो मन लागो जी जिनजी सौं......

म्हारो मन लागो जी जिनजी सौ ।।टेक।।
अद्भुत रूप अनूपम मूरति, निरखि निरखि अनुरागो जी ।।१।।
समता भाव भये है मेरे, आंन भाव सब त्यागो जी ।
स्व-पर विवेक भयो नहीं कबहूँ, सो परगट होय जागो जी ।।२।।
ग्यान प्रभाकर उदित भयो अब, मोह महातम भागो जी ।
'नवल' नवल आनंद भये प्रभु, चरन-कमल अनुरागो जी ।।३।।

मेरी अरज कहानी, सुनि केवलज्ञानी......

मेरी अरज कहानी, सुनि केवलज्ञानी ।।टेक।।
चेतन के संग जड़-पुद्गल मिलि, सारी बुधि बौरानी ।।१।।
भववन माहीं फेरत मोकौं, लख चौरासी थानी ।
कबलौं वरनौं तुम सब जानो, जनम-मरन दुखखानी ।।२।।
भाग भले तैं मिले 'बुधजन' को, तुम जिनवर सुखदानी ।
मोह फांसि को काटि प्रभूजी, कीजे केवलज्ञानी ।।३।।

मेरे मन मन्दिर में आन.....

मेरे मन मन्दिर में आन, पधारो महावीर भगवान ।।टेक।।
भगवन तुम आनंद सरोवर, रूप तुम्हारा महा मनोहर ।
निशिदिन रहे तुम्हारा ध्यान, पधारो महावीर भगवान ।।१।।
सुन किन्नर गणधर गुण गाते, योगी तेरा ध्यान लगाते ।
गाते सब तेरा यश गान, पधारो महावीर भगवान ।।२।।
जो तेरी शरणागत आया, तूने उसको पार लगाया ।
तुम हो दयानिधि भगवान, पधारो महावीर भगवान ।।३।।
भक्त जनों के कष्ट निवारे, आप तिरे हमको भी तारे ।
कीजे हमको आप समान, पधारो महावीर भगवान ।।४।।
आये हैं हम शरण तिहारी, पूजा हो स्वीकार हमारी ।
तुम हो करुणा दया निधान, पधारो महावीर भगवान ।।५।।
रोम-रोम पर तेज तुम्हारा, भू-मण्डल तुमसे उजियारा ।
रवि-शशि तुम से ज्योर्तिमान, पधारो महावीर भगवान ।।६।।

तुम्हारे ध्यान की मूरत.....

तुम्हारे ध्यान की मूरत अजब छवि को दिखाती है ।
विषय की वासना तज कर, निजातम लौ लगाती है ।।टेक।।
तेरे दर्शन से हे स्वामी! लखा है रूप मै मेरा ।
तजूँ कब राग तन-धन का, ये सब मेरे विजाती है ।।१।।
जगत के देव सब देखे, कोई रागी कोई द्वेषी ।
किसी के हाथ आयुध है, किसी को नार भाती है ।।२।।
जगत के देव हठग्राही, कुनय के पक्षपाती है ।
तू ही सुनय का है वेत्ता, वचन तेरे अघाती है ।।३।।
मुझे कुछ चाह नहिं जग की, यही है चाह स्वामीजी ।
जपूँ तुम नाम की माला, जो मेरे काम आती है ।।४।।
तुम्हारी छवि निरख स्वामी, निजातम लौ लगी मेरे ।
यही लौ पार कर देगी, जो भक्तों को सुहाती है ।।५।।

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ......

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ, फिर जग कीच बीच नहिं आऊँ ।।टेक।।
जल गन्धाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊँ ।
आनंदजनक कनकभाजन धरि, अर्घ अनर्घ बनाय चढ़ाऊँ ।।१।।
आगम के अभ्यास माँहि पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊँ ।
सतन की संगति तजि के मै, अत कहूँ इक छिन नहिं जाऊँ ।।२।।
दोषवाद में मौन रहू फिर, पुण्य पुरुष गुन निशिदिन गाऊँ ।
मिष्ट स्पष्ट सबहि सो भाषो, वीतराग निज भाव बढ़ाऊँ ।।३।।
बाहिज दृष्टि ऐच के अन्दर, परमानन्द स्वरूप लखाऊँ ।
'भागचन्द' शिव प्राप्त न जौलौं, तौलौं तुम चरनाबुज ध्याऊँ ।।४।।

श्री अरिहंत छवि लखि हिरदै......

श्री अरिहत छवि लखि हिरदै, आनन्द अनुपम छाया है।।टेक।।
वीतराग मुद्रा हितकारी, आसन पद्म लगाया है।
दृष्टि नासिका अग्र धार मनु, ध्यान महान बढ़ाया है।।१।।
रूप सुधाकर अंजुलि भर-भर, पीवत अतिसुख पाया है।
तारन-तरन जगत हितकारी, विरद शचीपति गाया है।।२।।
तुम मुख-चन्द्र-नयन के मारग, हिरदै माँहि समाया है।
भ्रमतम दुःख आताप नस्यो सब, सुखसागर बढि आया है।।३।।
प्रगटी उर सन्तोष-चन्द्रिका, निज स्वरूप दरशाया है।
धन्य धन्य तुम छवि 'जिनेश्वर', देखत ही सुख पाया है।।४।।

दरबार तुम्हारा मनहर है......

दरबार तुम्हारा मनहर है, प्रभु दर्शन कर हरषाये है ।।टेक।।
भक्ति करेगे चित्त से तुम्हारी, तृप्त भी होगी चाह हमारी ।
भाव रहे नित उत्तम ऐसे, घट के पट में लाये हैं।।१।।
जिसने चितन किया तुम्हारा, मिला उसे सन्तोष सहारा ।
शरणा जो भी आये हैं, वो निज आतम लख पाये हैं।।२।।
विनय यही है प्रभु हमारी, आतम की महके फुलवारी ।
अनुरागी हो तुम पद पावन, 'बुद्धि' चरण सिर नाये हैं।।३।।

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी......

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, मुझे नहिं चैन पड़ती है ।
छवि वैराग्य तेरी सामने आखों के फिरती है ।।टेक।।
निराभूषण विगत दूषण, परम आसन मधुर भाषण ।
नजर नैनों की नाशा की, अनी पर से गुजरती है ।।१।।
नहीं कर्मों का डर मुझको, कि जब लग ध्यान चरणन में ।
तेरे दर्शन से सुनते हैं, करम रेखा बदलती है ।।२।।
मिले गर स्वर्ग की सम्पत्ति, अचम्भा कौनसा इसमें ।
तुम्हें जो नयन भर देखे, गति दुरगति की टलती है ।।३।।
हजारों मूर्तियाँ हमने बहुत-सी अन्य मत देखी ।
शान्ति मूरत तुम्हारी-सी, नहीं नजरों मे चढ़ती है ।।४।।
जगत सिरताज हो जिनराज, सेवक को दरश दीजे ।
तुम्हारा क्या बिगड़ता है, मेरी बिगड़ी सुधरती है ।।५।।

एक तुम्ही आधार हो जग में......

एक तुम्ही आधार हो जग में, अय मेरे भगवान।
कि तुमसा और नहीं बलवान, कि तुमसा और नहीं गुणवान ।।टेक।।
सम्हल न पाया गोते खाया, तुम बिन हो हैरान,।
कि तुमसा और नहीं गुणवान, कि तुमसा और नहीं बलवान।।१।।
आया समय बड़ा सुखकारी, आतम बोध कला विस्तारी।
मैं चेतन तन वस्तु न्यारी, स्वयं चराचर झलकी सारी।।
निज अन्तर में ज्योति ज्ञान की, अक्षय निधी महान।।२।।
दुनिया में एक शरण जिनन्दा, पाप-पुण्य का बुरा है फन्दा।
मैं शिवभूप रूप सुख कन्दा, ज्ञाता-दृष्टा तुमसा वन्दा।।
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान।।३।।
सहज स्वभाव भाव अपनाऊँ पर-परिणति से चित्त हटाऊँ।
पुनि-पुनि जग मे जन्म न पाऊँ, सिद्ध समान स्वय बन जाऊँ।।
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का, है 'सौभाग्य' महान।।४।।

छोटासा मन्दिर बनायेंगे.....

छोटासा मंदिर बनायेंगे, वीर गुण गायेंगे ।
वीर गुण गायेंगे, महावीर गुण गायेंगे ।।टेक।।
कँधों पे लेकर चाँदी की पालकी, प्रभु का विहार करायेंगे ।
हाथों में लेकर सोने के कलशा, प्रभुजी का नह्वन करायेंगे ।।१।।
हाथों में लेकर द्रव्य की थाली, पूजन-विधान रचायेंगे ।
हाथों में लेकर ताल-मजीरा, प्रभुजी की भक्ति रचायेंगे ।।२।।
हाथों में लेकर श्री जिनवाणी, पढ़ेंगे सबको पढ़ायेंगे ।
वीतराग-विज्ञान पाठशालायें खोलकर तत्त्वों का ज्ञान करायेंगे ।।३।।
श्रद्धा में लेकर वस्तु स्वरूप, आतम का अनुभव करायेंगे ।
चारित्र में लेकर शुद्धोपयोग, मुक्तिपुरी को जायेंगे ।।४।।

सब मिलके आज जय कहो श्री वीरप्रभु की.....

सब मिलके आज जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।
मस्तक झुका के जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।।टेक।।
विघ्नों का नाश होता है, लेने से नाम के ।
माला सदा जपते रहो, श्री वीर प्रभु की ।।१।।
ज्ञानी बनो दानी बनो, बलवान भी बनो ।
अकलंक सम बन जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।।२।।
होकर स्वतंत्र धर्म की, रक्षा सदा करो ।
निर्भय बनो अरु जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।।३।।
तुमको भी अगर मोक्ष की, इच्छा हुई है दास ।
उस वाणी पर श्रद्धा करो, श्री वीर प्रभु की ।।४।।

नैना लाग रहे मोरे,.....

नैना लाग रहे मोरे, जिन चरणन की ओर ।।टेक।।
निरखत मूरत तेरी नैना, जैसे चन्द-चकोर ।।१।।
जैसे चातक चहत मेघ को, घन गरजत जिमि मोर ।।२।।
'ज्ञान' कहे धन भाग्य हमारा, बन्दे दोउ कर-जोर ।।३।।

महावीर के पथ पर चलकर.....

महावीर के पथ पर चलकर महावीर गुण गायेंगे ।
महावीर से शक्ति प्राप्त कर महावीर बन जायेंगे ।।टेक।।
जीव मात्र की हिसा मे हो विमुख दया अपनायेगे ।
सत्य धर्म पर दृढ रहकर हम झूठ न उर मे लायेंगे ।।१।।
बिना किसी की आज्ञा कोई वस्तु न कभी उठायेंगे ।
ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर गीत शील के गायेंगे ।।२।।
अनुचित सग्रह छोड सदा अपरिग्रह अपनायेंगे ।
पाच पाप से दूर रहेगे अणुव्रत पॉच निभायेंगे ।।३।।
क्रोध मान माया तृष्णा का अब हम नाम मिटायेंगे ।
सेवा करके दीन दुखी जीवों का कष्ट हटायेंगे ।।४।।
क्रोध भाव को त्याग निरन्तर क्षमाभाव उर लायेंगे ।
मान कषाय दूर करके हम विनय महा चित लायेंगे ।।५।।
मायाचारी त्याग सहज ही सरल भावना भायेंगे ।
लोभ हटा सन्तोषामृत से जीवन सुखी बनायेंगे ।।६।।
सप्त व्यसन मे दूर रहेगे तप सयम नित ध्यायेंगे ।
कैसा भी सकट विपत्ति हो धैर्य हृदय मे लायेंगे ।।७।।
आत्म स्वरूप नही भूलेगे समता भाव जगायेंगे ।
श्रद्धा ज्ञान चरित्र धारकर, नरभव सफल बनायेंगे ।।८।।

वह शक्ति हमें दो दयानिधे.....

वह शक्ति हमे दो दयानिधे, हम मोक्षमार्ग मे लग जावे ।।टेक।।
करि शुद्ध रत्नत्रय भेद त्याग, निज शुद्धातम मे रमि जावे ।।१।।
तज इष्टानिष्ट विकल्प सभी, ममतारस निज मे भरि लावे ।
करि साम्यभाव स्वाभाविक परिणति, पाय उसी मे रमि जावे ।।२।।
है गुण अनन्तमय शुद्ध निजातम, शक्ति प्रगटकर दिखलावे ।
फिर काल अनन्ता रहे उसी मे, ज्ञाता दृष्टा बन जावे ।।३।।
झलके लोकालोक कालत्रय, निजपरिणति मे मिल जावे ।
स्वाधीन निराकुल ज्ञानचन्द्रिका, आस्वादी हम बन जावे ।।४।।

देखो जी आदीश्वर स्वामी .....

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है
कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है ।।टेक।।
जगत-विभूति भूति सम तजिकर, निजानन्द पद ध्याया है ।
सुरभित श्वासा आशाबासा, नासादृष्टि सुहाया है ।।१।।
कञ्चन वरन चलै मन रञ्च न, सुरगिर ज्यों थिर थाया है ।
जास पास अहि-मोर मृगी-हरि, जाति विरोध नसाया है ।।२।।
शुभ उपयोग हुताशन में जिन, वसुविधि समिध जलाया है ।
स्यामलि अलिकावलि सार सोहै, मानो धुआँ उडाया है ।।३।।
जीवन-मरन-अलाभ-लाभ जिन, तृन -मनि को सम भाया है ।
सुर-नर-नाग नमहिं पद जाकै, 'दौल' तास जस गाया है ।।४।।

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे.....

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे आये हाँ जी हाँ हम आये आये ।।टेक।।
देखे देव जगत के सारे, एक नही मन भाये ।
पुण्य उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये ।।१।।
जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये ।
अब तो स्वामी जन्म मरण का, दुखड़ा सहा न जाये ।।२।।
भव सागर में नाव हमारी, कब से गोता खाये ।
तुम ही स्वामी हाथ बढ़ाकर, तारो तो तिर जाये ।।३।।
अनुकम्पा हो जाय आपकी, आकुलता मिट जाये ।
'पकज' की प्रभु यही वीनती, चरण शरण मिल जाये ।।४।।

तुम गुणमनि निधि हौ अरहन्त.....

तुम गुणमनि निधि हौ अरहन्त ।।टेक।
पार न पावत तुमरो गनपति, चार ज्ञान धरि सन्त ।
ज्ञानकोष सब दोष रहित, तुम अलख अमूर्ति अचिन्त ।।१।।
हरिगन अरचत तुम पदवारिज, परमेष्ठी भगवन्त ।
'भागचन्द' के घट-मन्दिर मे, बसहु सदा जयवन्त ।।२।।

जगत में सो देवन को देव......

जगत में सो देवन को देव ।।टेक।।
जासु चरन परसै इन्द्रादिक, होय मुकति स्वयमेव ।।१।।
जो न छुधित, न तृषित, न भयाकुल, इन्द्री विषय न बेव ।
जनम न होय, जरा नहिं व्यापै, मिटी मरन की टेव ।।२।।
जाकै नहिं विषाद, नहिं बिस्मय, नहिं आठों अहमेव ।
राग विरोध मोह नहिं जाके, नहिं निद्रा परसेव ।।३।।
नहिं तन रोग, न श्रम, नहिं चिंता, दोष अठारह भेव ।
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव ।।४।।

हे जिन तेरो सुजस उजागर ......

हे जिन तेरो सुजस उजागर, गावत हैं मुनिजन ज्ञानी ।।टेक।।
दुर्जय मोह महाभट जाने, निजवश कीने जगप्रानी ।
सो तुम ध्यानकृपान पानिगहि, ततछिन ताकी थिति भानी ।।१।।
सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निजसुधि विसरानी ।
ह्वै सचेत तिन निज-निधि पाई, श्रवन सुनी जब तुम बानी ।।२।।
मंगलमय तू जग मे उत्तम, तुही शरन शिवमग दानी ।
तुम पद-सेवा परम औषधी जन्म-जरा-मृत गद हानी ।।३।।
तुमरे पञ्चकल्यानक माहीं, त्रिभुवन मोददशा ठानी ।
विष्णु विदम्बर, जिष्णु, दिगम्बर, बुधशिव कहा ध्यावत ध्यानी ।।४।।
सर्व दर्वगुनपरजय परनति, तुम सुबोध में नहिं छानी ।
तातैं 'दौल' दास उर आशा, प्रगट करो निजरससानी ।।५।।

तेरो गुण गावत हूँ मैं, ...

तेरो गुण गावत हू मैं, निजहित मोहि जताय दे ।।टेक।।
शिवपुर की मोकौं सुधि नाहीं, भूलि अनादि मिटाय दे ।।१।।
भ्रमत फिरत हूँ भववन माहीं, शिवपुर बाट बताय दे ।
मोह-नींद वश घूमत हूँ नित, ज्ञान बधाय जगाय दे ।।२।।
कर्म शत्रु भव-भव दुख दे हैं, इनतैं मोहि छुटाय दे ।
'बुधजन' तुम चरना सिर नावै, एती बात बनाय दे ।।३।।

अरहंत-सा कोई दाता नहीं है......

अरहंत-सा कोई दाता नहीं है, ।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नहीं है ।।
ध्याता की होती है द्रव्यदृष्टि, ।
हुआ करती जिसके ज्ञान-दर्शन की दृष्टि ।।
बसा करते मन में पांचों परमेष्ठी, ।
मिटा करतीं जिसके कर्मों की सृष्टि ।।
आपके सिवा कुछ सुहाता नहीं है ।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नहीं है ।।१।।
ध्याता जो होता उत्तम क्षमा का धारी ।
दशलक्षण धर्म की जिसने किरणें पसारी ।।
जो हो लक्ष्य जिसमें, वह है लक्ष्यधारी, ।
जिसे अपनी जान से हर जान हो प्यारी ।।
फिर वह किसी को सताता नहीं है, ।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नहीं है ।।२।।
अरहत हैं देव देवों के देवा, ।
जो करता है सेवा पाता है मेवा ।।
'माणिक' प्रभु आपका नाम लेगा ।
कर दो मेरा भवसागर से खेवा ।।
आपके सिवा कोई दिखाता नहीं है ।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नहीं है ।।३।।

मैं आयौ, जिन शरन तिहारी......

मैं आयो, जिन शरन तिहारी ।।टेक।।
मैं चिर दुखी विभाव भाव तैं, स्वाभाविक निजनिधि बिसारी ।।१।।
रूप निहार धार तुम गुन सुन, बैन होत भवि शिवमगचारी ।
यों मम कारज के कारन तुम, तुमरी सेव एक उर धारी ।।२।।
मिल्यौ अनन्त जन्म तैं अवसर, अब बिनऊँ हे भव सरतारी ।
पर में इष्ट अनिष्ट कल्पना, 'दौल' कहै झट मेट हमारी ।।३।।

जिन नाम सुमर मन! बावरे.....

जिन नाम सुमर मन! बावरे, कहा इत-उत भटकै ।।टेक।।
विषय प्रगट विष बेल है, इनमे मत अटकै ।।१।।
दुर्लभ नरभव पाय के, नग सों मत पटकै ।
फिर पीछैं पछतायगो, औसर जब सटकै ।।२।।
एक घरी है सफल जो, प्रभु गुन रस गटकै ।
कोटि वरष जीयो वृथा, जो थोथा फटकै ।।३।।
'द्यानत' उत्तम भजन है, लीजै मन रटकै ।
भव-भव के पातक सबै, जै है तो कटकै ।।४।।

मैं तुम शरन लियो तुम सांचे.....

मै तुम शरन लियो, तुम साचे प्रभु अरहन्त ।।टेक।।
तुमरे दर्शन-ज्ञान मुकर मे, दरश-ज्ञान झलकन्त ।
अतुल निराकुल सुख आस्वादन, वीरज अरज अनन्त ।।१।।
राग-द्वेष विभाव नाश भये, परम समरसी सन्त ।
पद देवाधिदेव पायो किय, दोष क्षुधादिक अन्त ।।२।।
भूषन-वसन-शस्त्र-कामादिक, करन विकार अनन्त ।
तिन तुम परमौदारिक तन, मुद्रा सम शोभन्त ।।३।।
तुम वानी तै धर्म-तीर्थ जग, माहि त्रिकाल चलन्त ।
निजकल्याण हेतु इन्द्रादिक, तुम पदसेव करन्त ।।४।।
तुम गुन अनुभव तै निज-पर गुन, दरसत अगम अचिन्त ।
'भागचन्द' निजरूप प्राप्ति अब, पावैं हम भगवन्त ।।५।।

घड़ि-घड़ि पल-पल छिन-छिन निश-दिन.....

घडि-घडि पल-पल छिन-छिन निश-दिन, प्रभुजी का सुमिरन कर ले रे ।।टेक।।
प्रभु सुमिरे तैं पाप कटत है, जनम-मरन दुख हर ले रे।।१।।
मन-वच-काय लगाय चरन चित, ज्ञान हिये बिच धर ले रे।।२।।
'दौलतराम' धर्म नौका चढि, भवसागर तैं तर ले रे।।३।।

शिवपुर पथ परिचायक जय हे ....

शिवपुर पथ परिचायक जय हे, सन्मति युग निर्माता ।।टेक।।
गंगा कलकल स्वर से गाती तव गुण गौरव गाथा ।
सुर नर किन्नर तव पद युग में, नित नत करते माथा ।।
हम भी तव यश गाते, सादर शीष झुकाते हे सद्बुद्धि प्रदाता, ।।१।।
दुखहारी सुखकारी जय हे सन्मति–युग निर्माता ।
जय हे जय हे जय जय जय जय हे ।।

तेरे दर्शन से भगवान हुआ ....

तेरे दर्शन से भगवान, हुआ मुझको आनंद महान ।।टेक।।
जिसने तेरा ध्यान लगाया, उसने मोक्ष पदारथ पाया ।
कर लिया आतम का कल्याण, हुआ मुझको आनंद महान ।।१।।
मुझको शांति छवि दिखलाई, भगवन यह मेरे मन भाई ।
तेरा दर्शन सुख की खान, हुआ मुझको आनंद महान ।।२।।
तुम हो दीनानाथ दयाल, करते हो करुणा प्रतिपाल ।
तुम्हारा है जग मे गुन गान, हुआ मुझको आनंद महान ।।३।।
यह प्रेम शरण मे आया, अंग फूला नहीं समाया ।
देख कर तेरी निराली शान, हुआ मुझको आनद महान ।।४।।

परम पंच परमेष्ठी का ध्यान कर ....

परम पच परमेष्ठी का ध्यान कर, परम ब्रम्ह का रूप आया नजर ।
परम ब्रम्ह की मुझको आयी परख, हुआ उर में सन्यास का अब हरष ।।१।।
लगन आतमा राम से लग गई, महामोह निद्रा मेरी मर गई ।
खुली दृष्टि चैतन्य चिद्रूप पर, टिकी आन कर ब्रम्ह के रूप पर ।।२।।
परम रस की अब तो गटागेट मेरे, शुद्धातम रहस्य की रटारट मेरे ।
निजानंद भानन की झंकारे हैं, मेरे हर्ष आनंद का जोर है ।।३।।
जरा आत्म भावों को उर आने दो, परमब्रम्ह की लय मुझे ध्याने दो ।
मुझे ब्रम्हचर्चा से वर्ते हुलास, करो औन चर्चा न तुम मेरे पास ।।४।।
परम ब्रम्हलाहा लिया आज मैं, परम ब्रम्ह अमृत पिया आज मैं ।
तिहूँ जग में सन्यास की ये घड़ी, मेरे हाथ आयी ये अदभुत जड़ी ।।५।।

वीर तुम्हारा जीवन जग के.......

वीर तुम्हारा जीवन जग के जीवों का वरदान बन गया ।।टेक।।

जब तुम चले स्वर्ग से तुमको तब इन्द्राणी रोक न पायी
अधिक कहूँ क्या! आश्रित देवों की भी वाणी रोक न पायी
और मृतिका सा इन्द्रासन, त्याग चला जब जीव तुम्हारा
कुंड ग्राम की मोहनी ने तब निज भाग्योदय को ललकारा
बस फिर क्या था, च्यवन तुम्हारा उसका गर्भाधान बन गया

तुरन्त उठाली नाम कर्म ने अपनी सबसे सुन्दर तूली
तीर्थंकर के तन रचना की, कला उसे थी अभी न भूली
नव मासों के अविरत श्रम पर उसे हुआ संतोष कहीं तब
सहस्राक्ष भी खोज न पाया उसकी कृति में दोष कहीं तब
और तुम्हारा रूप सची के दृग खंजन को उद्यान बन गया

इधर बीतता शैशव शिशु का, त्यों यौवन ने जोडा नाता
त्यों ही पुत्र वधू को गहने लगी गढ़ाने त्रिसला माता
किन्तु तुम्हारा यौवन सबके यौवन से था रहा निराला
अतः एक भी राजकुमारी पहना न पायी निज वरमाला
और तुम्हारा संयम उनकी सुषमा का अपमान बन गया

तुमने वन की गहन गुफा को राजभवन से सुन्दर माना
सिंहों के गर्जन को तुमने जाना वन्दीजन का गाना
जेठ मास की तप्त शिला को तुम सिंहासन मान विराजे
सावन के धन गर्जन को तुम समझे गंधर्वों के बाजे
और पूस का पवन तुम्हारी काया का परिधान बन गया

विपुलाचल की दिव्यध्वनि वह जीवन में नवजीवन लायी
निर्दय से भी निर्दय अन्तर की करुणा से हुई सगाई
निज सन्तति के मुंडों से फिर हुई न देवियों की अर्चा
केवल ग्रंथों में शेष बची नरमेधों की भीषण चर्चा
अतः मुक्ति का दिन दीपावली का महान त्योहार बन गया

चाह मुझे है दर्शन की.....

चाह मुझे है दर्शन की, वीर चरण स्पर्शन की ....
वीतराग छवि प्यारी है, जग-जन की मनहारी है।
मूरति मेरे भगवन की, वीर चरण स्पर्शन की।।

हाथ पै हाथ धरा ऐसे, करना कुछ न रहा जैसे।
देख दशा पद्मासन की, वीर चरण स्पर्शन की।।

कुछ भी नहीं श्रंगार किये, हाथ नहीं हथियार लिये।
फौज भगाई कर्मन की, वीर चरण स्पर्शन की।।

समता पाठ पढ़ाती है, ध्यान की याद दिलाती है।
नासादृष्टि लखो इनकी, वीर चरण स्पर्शन की।।

जो शिव आनंद चाहो तुम, इनसा ध्यान लगाओ तुम।
विपत हरे भव भटकन की, वीर चरण स्पर्शन की।।

आये आये रे जिनंदा ....

आये आये रे जिनंदा, आये रे जिनन्दा, तोरी शरण में आये ।
कैसे पावें ....हो ....कैसे पावे तुम्हारे गुण गावे हो ।।
मोह में मारे मारे ...भवभव मे गोते खाये ...तोरी शरण में आये।।टेक।।

जग झूठे से प्रीत लगायी, पाप किये हम मन माने।
सद्गुरु वाणी कभी न मानी, लागे भ्रमरोग सुहाने।।१।।

आज मूल की भूल मिटी है, तब दर्शन कर स्वामी ।
तत्व चराचर लगे झलकने, घट घट अतरयामी ।।२।।

जामन - मरण रहित पद पावन, तुम सा नाथ सुहाया।
वो सौभाग्य मिले अब सुन्दर, मोक्ष महल मन भाया।।३।।

जिन देख मगन भयो मेरो मनुवा ....

जिन देख मगन भयो मेरो मनुवा।।टेक।।
शुभ को उदय भयो अब मोहे, अशुभ जलें जैसे सूखे पतवा।।१।।
तीन लोक के नाथ निहारे, नगन दिगम्बर जाके तनवा।।२।।
दौलतराम दोहु कर जोड़े, नित उठ गावत तेरो गुणवा।।३।।

हमको भी बुलवा लो स्वामी ......

हमको भी बुलवा लो स्वामी, सिद्धों के दरबार में।।टेक।।
जीवादिक सातों तत्वों की, सच्ची श्रद्धा हो जाये।
भेद ज्ञान से हमको भी प्रभु, सम्यग्दर्शन हो जाये।।
मिथ्यातम के कारण स्वामी, हम डूबे संसार में।।१।।
आत्म द्रव्य का ज्ञान करें हम, निज स्वभाव में आ जायें।
रत्नत्रय की नाव बैठकर, मोक्षभवन को पा जाये।।
पर्यायों की चकाचौंध से, बहते हैं मंझधार में।।२।।

वीर प्रभु का है कहना.......

वीर प्रभु का है कहना, राग में जीव तू मत फँसना ।।टेक।।
जीव अनादि से रुलता है, दृष्टि पर में धरता है।
अब न यह गलती करना, राग में जीव तू मत फँसना।।१।।

देह मदिर मे देव है तू, निज प्रभु को पहचान ले ।
प्रभुता का आदर करना, राग में जीव तू मत फँसना ।।२।।

तू तो गुनों का रत्नाकर, पूर्णानंद महाप्रभु है।
निज में ही दृष्टि धरना, राग में जीव तू मत फँसना।।३।।

गुण-पर्याय का भेद न कर, शाश्वत ध्रुव में दृष्टि धर ।
मोक्षपुरी में ही चलना, राग मे जीव तू मत फँसना ।।४।।

स्वरूप नगर का वासी है, सिद्धों का प्रत्याशी है।
निज प्रभु का स्वागत करना, राग में जीव तू मत फँसना।।५।।

प्रभु दर्शन कर जीवन की ....

प्रभु दर्शन कर जीवन की, भीड भगी मेरे कर्मन की।।टेक।।
भव वन भ्रमता हारा था, पाया नहीं किनारा था।
घडी सुखद आई सुवरण की, भीड भगी मेरे कर्मन की।।१।।
शान्त छवि मन भाई है, नैनन बीच समाई हैं।
दूर हटूँ नही पल छिन भी, भीड भगी मेरे कर्मन की।।२।।
निज पद का 'सौभाग्य' वरूँ, और न कोई चाह करूँ।
सफल कामना हो मन की, भीड़ भगी मेरे कर्मन की।।३।।

पड़ी मझधार में नैया ....

पड़ी मझधार में नैया उबारोगे तो क्या होगा।
तरण तारण जगतपति हो उद्धारोगे तो क्या होगा।।टेक।।
फँसा मैं कर्म के फन्दे पडा भवसिंधु में जाके।
झकोले दुःख के निशदिन निहारोगे तो क्या होगा।।१।।
चतुरगति भंवर है जिसमें, भ्रमण की लहर हैं तिसमे।
पडा विधिवस जु मैं उसमें, निकालोगे तो क्या होगा।।२।।
यह भव सागर अथाही है मेरी है नांव अति झर्झरी।
सुनो यह अर्ज तुम स्वामी, सुधारोगे तो क्या होगा।।३।।
यहाँ कोई नहीं मेरा, मेरे रखपाल हो तुमही।
बही जाती मेरी किश्ती जु थाबोगे तो क्या होगा।।४।।
शरण चपा ने लीनी है, भवर में आ गई नैया।
मेरी विनती अपावन की विचारोगे तो क्या होगा।।५।।

तुम हो दीनन के बन्धु ....

तुम हो दीनन के बन्धु दया के सिन्धु करो भव पारा।
तुम बिन प्रभु कौन हमारा।।टेक।।
मोहादि शत्रु बलकारी है, इनने सब सुबुद्धि विसारी है।
इन दुष्टो से कैसे होवे छुटकारा, प्रभु तुम बिन कौन हमारा।।१।
पचेन्द्रिय विषय नचाते हैं, नहि त्याग भाव कर पाते हैं।
विषयों की लम्पट ताने ध्यान विसारा, प्रभु तुम बिन कौन हमारा।।२।।
ये कुटुम विटव सताते है, नहि धर्म ध्यान करपाते है।
इन कर्मों ने निज ज्ञान दबायम सारा, प्रभु तुम बिन कौन हमारा।।३।
ऐसो भव सिधु अपारी है, वह रहै सभी ससारी है।
अब तुम्ही कहो कैसे होवे निस्तारा, प्रभु तुम बिन कौन हमारा।।४।
पर देव बहुत दिखलाते हैं, सब राग-द्वेष यत पाते हैं।
वे खुद अशांत किमदेय शांति का द्वारा प्रभु तुम बिन कौन हमारा।।५।
तुम डूबत भविक उबारे है, कुंजी हूँ शरण तिहारे हैं।
मोय दे समकित का दान करो उद्धारा, प्रभु तुम बिन कौन हमारा।।६।

सीमंधर स्वामी ! मैं चरनन का चेरा ....

सीमंधर स्वामी मैं चरनन का चेरा।
इस संसार असार में, कोई और न रक्षक मेरा।।टेक।।
लख चौरासी योनि में, फिर फिर कीना फेरा।
तुम महिमा जानी नहीं प्रभु, देख्या दुख घनेरा।।१।।
भाग उदय तैं पाइया अब, कीजे नाथ निबेरा।
वेगि दया करि दीजिये मोहि, अविचल थान बसेरा।।२।।
नाम लिये अघ न रहे ज्यों, ऊँगे भान अँधेरा।
'भूधर' चिन्ता क्या रही, ऐसा समरथ साहिब मेरा।।३।।

महावीर की जय बोल, भव से तिर ....

महावीर की जय बोल, भव से तिर जाएगा,।
जीवन तेरा अनमोल, सुख से कट जाएगा।।टेक।।
धर्म की पावन गंगा, हो जाएगा मन चंगा,।
भज लो वीर जिनन्दा, कट जाए भव फंदा।।
अन्तर के पट खोल, वीर जैसा बन जाएगा।।१।।
प्रभु का ले लो सहारा, मिटे जगत अंधियारा।
भोग विषय दुखदारा, फिरै वो मारा मारा।।
मीठी वाणी बोल, दुःख सब कट जाएगा।।२।।

इहविध आरति करौं प्रभु तेरी ....

इहविध आरति करौं प्रभु तेरी अमल अबाधित निजगुण केरी।
नित्य अखण्ड अतुल अविनाशी,लोकालोक सकल परकाशी।।टेक।।
ज्ञान-दरस-सुख-बल गुणधारी, परमातम अविकल अविकारी।
क्रोध आदि रागादि न तेरे, जनम-जरा-मृत कर्म न तेरे।।१।।
अवपु अबंध करणसुख नासी, अभय अनाकुल शिवपदवासी।
रूप न रेख न भेक न कोई चिन्मूरति प्रभु तुम ही होई।।२।।
अलख अनादि अनंत अरोगी, सिद्ध विशुद्ध सुआतम भोगी।
गुन अनंत किम वचन बतावें, 'दीपचद' भवि भावन भावें।।३।।

सुधि लीज्यो जी म्हारी ....

सुधि लीज्यो जी म्हारी मोहि भव दुख दुखिया जानके ।।टेक।।
तीन लोक स्वामी नामी तुम त्रिभुवन के दुखहारी ।
गनधरादि तुव शरन लई लख लीनी शरन तिहारी ।।१।।
जो विधि अरी करी हमरी गति सो तुम जानत सारी ।
याद किये दुख होत हिये ज्यों लागत कोट कटारी ।।२।।
लब्धि अपर्यापत निगोद में एक उसास मंझारी ।
जनम मरन नव दुगुन बिथाकी कथा न जात उचारी ।।३।।
भू जल ज्वलन पवन प्रत्येक विकलत्रय तन धारी ।
पचेन्द्री पशु नारक नर सुर विपति भरी भयकारी ।।४।।
मोह महारिपु नेंक न सुखमय होंन दई सुधि थारी ।
सो दुठि मंद भयौ भागन तैं पाये तुम जगतारी ।।५।।
यदपि विराग तदपि तुम शिवमग सहज प्रगट करतारी ।
ज्यो रवि किरन सहज मग दर्शक यह निमित्त अनिवारी ।।६।।
नाग छाग गज बाघ भील दुठ तारे अधम उधारी ।
सीस नमाय पकारत अबकें 'दौल' अधम की वारी ।।७।।

आज हम जिन राज तुम्हारी भक्ति रचायें ....

आज हम जिन राज तुम्हारी भक्ति रचायें।।टेक।।
वीतराग-सर्वज्ञ प्रभो हो, नासादृष्टि लगाये।
अद्भुत शान्तिमयी छवि तेरी, सब के मन को भाये।।१।।
सभी द्रव्य स्वयमेव पूर्ण हैं, कोई कुछ नहिं चाहे,।
स्वयं परिणमन होता सबका, आज समझ में आये।।२।।
द्रव्यदृष्टि से तुमसा ही हूँ, जान हर्ष मन छाये।
पर्याय-शुद्धि हेतु प्रभुजी, परम पुरुषार्थ जगाये।।३।।
पुण्य भाव भी मीठा विष है, इसमें नहिं अटकाये।
वीतराग-विज्ञान भावमय, मम परिणति हो जाये।।४।।
यही भावना है अब मेरी, सम्यग्दर्शन पाये,।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, जीवन सफल बनायें।।५।।

धन्य धन्य बाहुबली स्वामी ....

धन्य धन्य बाहुबली स्वामी, आत्मबली प्रभु जय जय जय।
जय जय जय प्रभु जय जय जय।।टेक।।
कैसे अलौकिक भाव झलकते, निज महिमा में ही प्रभु रमते।
बाहर आने की फुरसत नही है, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।१।।
हार कर वैभव अनेको ने छोडा, पर प्रभु विजयी हो मुख मोडा।
आतम मे परिणति को जोडा, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।२।।
धन्य भाग्य मै दर्शन पाया, उर मे फूला नहीं समाया।
मेरा रोम रोम पुलकाया, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।३।।
अचिन्त्य शक्तिमय आतम देव, चिन्मात्र चिन्तामणि रत्न एव,।
अन्तर मे प्रत्यक्ष दिखाया, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।४।।
आज अलौकिक प्रकाश हुआ है, चैतन्य प्रभु प्रत्यक्ष हुआ है।
आनन्द रह्यो छलकाय, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।५।।
तृप्त हुआ अति तृप्त मै, पायो सुखमय सहज तत्व मै।
सहज विनय प्रगटाय, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।६।।
अतिशय पुण्य अतिशय पवित्रता, शीतलता का घन् पिण्ड दिखता।
आत्म शान्ति बरषाय, आत्मबली प्रभु जय जय जय।।७।।

चल चेतन प्यारे! बीस विदेह मँझार ....

चल चेतन प्यारे बीस विदेह मँझार।
बीस बिदेहो में बीस जिनेश्वर, समवशरण विस्तार।।टेक।।
नित प्रति वहाँ पै वाणी खिरती, एक दिना तीन बार।
समवशरण की शोभा वहाँ पै, अद्भुत रूप निहार।।१।।
मानस्तम्भ वहाँ पर राजे, मान सभी गल जाय।
बारह सभा वहाँ पै लग रही, भविजन जावे अपार।।२।।
श्री जिनवर को अतिशय ऐसो, बैर भाव मिट जाय।
सिंहासन पर जिनवर सोहे, भामन्डल पिछवार।।३।।
तीन छत्र सिर ऊपर राजे, चौंसठ चँवर ढुराय।
विदेहक्षेत्र में जीव अभी भी, हो रहे भव से पार।।४।।

स्वामी! मोहे अपनो जानि तारौ ....

स्वामी! मोहे अपनो जानि तारौ, यह विनती अब चित्त धारो ।।टेक।।
जगत उजागर करूना सागर, नागर नाम तिहारो ।।१।।
भव अटवी में भटकत भटकत अब मैं अति ही हारो ।।२।।
'भागचन्द' स्वच्छन्द ज्ञानमय, सुख अनन्त विस्तारो ।।३।।

प्रभू हम सबका एक तू ही ....

प्रभू हम सबका एक तूही है तारणहारा रे ।।टेक।।
तुम को भूला, फिरा वही नर मारा मारा रे ।।१।।
बडा पुण्य अवसर यह आया आज तुम्हारा दर्शन पाया ।
फूला मन यह हुआ सफल मेरा जीवन सारा रे ।।२।।
भक्ति में अब चित्त लगाया, चेतन में तब चित ललचाया ।
वीतरागी देव करो अब भव से पारा रे ।।३।।
अब तो मेरी और निहारो, भव समुद्र से नाव उबारो ।
पंकज का लो हाथ पकड़, मैं पाऊँ किनारा रे ।।४।।
जीवन में मैं नाथ को पाऊँ, वीतरागी भाव बढ़ाऊँ ।
भक्ति भाव से प्रभु चरण में जाऊँ जाऊँ रे ।।५।।

जिन पूजन कर लो, ये ही जगत में सार ....

जिन पूजन कर लो, ये ही जगत मे सार ।।टेक।
बडे पुण्य अवसर यह आया, श्री जिनवर का दर्शन पाया ।
जिन-भक्ति कर लो, ये ही जगत में सार, जिन पूजन कर लो ... ।।१।।
बडे पुण्य अवसर यह आया, जिनगुरु का उपदेश सुहाया ।
उपदेश सु सुन लो, ये ही जगत में सार जिन पूजन कर लो .... ।।२।।
बड़े पुण्य अवसर यह आया दुर्लभ मनुज तन उत्तम पाया ।
व्रत सयम धर लो ये ही जगत में सार जिन पूजन कर लो ..... ।।३।।
बड़े पुण्य अवसर यह आया, साधर्मी जन मेला पाया ।
तत्वचर्चा कुछ कर लो, ये ही जगत में सार जिन पूजन कर लो ... ।।४।।
बड़े पुण्य अवसर यह आया, श्री दशलक्षण पर्व सु आया ।
निज धर्म समझ लो में ही जगत में सार जिन पूजन कर लो .... ।।५।।

मन भज ले श्री भगवान . . . .

मन भज ले श्री भगवान, उमरिया रह गयी थोरी।
सुन चेतन चतुर सुजान, अब मन लाओ जिनवाणी।।टेक।।
क्यों मोह नींद में सोवे, अनुभव आनन्द रस खोवे।
कर लो तुम सम्यग्ज्ञान, अब मन लाओ जिनवाणी।।१।।
देव-शास्त्र-गुरु पहिचानो, तत्वों का मर्म सुजानो।
फिर करो भेदविज्ञान, अब मन लाओ जिनवाणी।।२।।
फिर सर्व विकल्प भगावो, स्व सन्मुख दृष्टि लावो।
हो स्वानुभूति सुखखान, अब मन लाओ जिनवाणी।।३।।
जिनवाणी जगहितकारी, शिवमार्ग दिखावन हारी।
प्रगटाओ आतमज्ञान, अब मन लाओ जिनवाणी।।४।।
जिनवाणी पढो पढाओ, नित सविनय शीश झुकाओ।
हो सब जग का कल्याण, मन लाओ जिनवाणी।।५।।

मेरी परिणति में आनन्द अपार . . . .

मेरी परिणति में आनन्द अपार, नाथ तेरे दर्शन से।।टेक।।
मूरति प्रभु कल्याण रूप है, स्वानुभूति की निमित्त भूत है।
भेद-विज्ञान हो सुखकार, नाथ तेरी वाणी से।।१।।
अनादिकाल का मोह नशाया, निज स्वभाव प्रत्यक्ष लखाया।
प्रभु मोह नशो दु:खकार-शुद्धातम दर्शन से।।२।।
रागादिक अब दु:खमय जाने, ज्ञानभाव सुखमय पहिचाने।
मैं तो आज लखो भव पार, नाथ तेरे दर्शन से।।३।।
तिहूँलोक तिहुँकाल मँझारा, निज शुद्धातम एक निहारा।
शिव स्वरूप शिवकार, नाथ तेरे दर्शन से।।४।।
तोड़ सकल जग द्वद-फंद प्रभु, मैं भी निज में रम जाऊँ विभु।
भाव यही अविकार, नाथ तेरे दर्शन से।।५।।

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजै.....

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजै ।।टेक।।
राग-द्वेष दावानाल तें बचि, समता रस में भीजै ।
पर कों त्याग अपनपो निज में, लाग न कबहूँ छीजै ।।१।।
कर्म,कर्म फल माँहि न राचै, ज्ञान सुधारस पीजै ।
मुझ कारज के तुम कारन वर, अरज 'दौल' की लीजै ।।२।।

लखिकै स्वामी रूप को मेरा मन भया.....

लखिकै स्वामी रूप को मेरा मन भया चंगा जी ।।टेक।।
विभ्रम नष्ट गरुड़ लखि जैसे भगत भुजंगा जी ।।१।।
शीतल भाव भये अब न्हायो सुगंगा जी ।।२।।
'भागचन्द' अब मेरे लागो निजरस रंगा जी ।।३।।

मन वीतराग पद वंद रे.....

मन! वीतराग पद वंद रे ।।टेक।।
नैन निहारत ही हिरदा में, उपजत है आनन्द रे ।।१।।
प्रभु को छांडि लगत विषय में, कारिज सब न्यंद रे ।
जो अविनाशी सुख चाहै तौ, इनके गुनन स्यौं फंद रे ।।२।।
ये काम रुचि तैं राखि इन में, त्यागि सकल दुख-दुंद रे ।
'नवल' नवल पुन्य उपजत, यातैं अघ सब होय निकंद रे ।।३।।

श्री जिनवर पद ध्यावे जे नर.....

श्री जिनवर पद ध्यावे जे नर, श्री जिनवर पद ध्यावैं ।।टेक।।
तिनकी कर्मकालिमा विनशै, परम ब्रह्म हो जावैं ।
उपल अग्नि संजोग पाय जिमि, कञ्चन विमल कहावैं ।।१।।
चन्द्रोज्वल जस तिनको जग में, पण्डित जन नित गावैं ।
जैसे कमल सुगन्ध दशों दिश, पवन सहज फैलावैं ।।२।।
तिनहिं मिलन को मुक्ति सुन्दरी, चित अभिलाषा ल्यावैं ।
कृषि में तृण जिम सहज ऊपजै, त्यों स्वर्गादिक पावैं ।।३।।
जनम-जरा-मृत दावानल ये, भाव सलिल तैं बुझावैं ।
'भागचन्द' कहां ताईं वरनै, तिनहिं इन्द्र शिर नावैं ।।४।।

सर्वज्ञता का धाम हो ....

सर्वज्ञता का धाम हो या ज्योतिवान हो ।
तुम तो प्रभु तुम्ही में दैदीप्यमान हो ।।टेक।।

तीन छत्र सिर पे तेरे सुन्दर सजे हुए ।
भामण्डल की प्रभा से भविजन खिले हुए ।।
चर्चाएँ ध्रुवधाम की तुम तीर्थनाथ हो ।।१।।

मूरत है तेरी शान्तिमय गणधर करे नमन ।
शत इन्द्र तेरी शान पे गद्‌गद्‌ हुए हैं मन ।।
पावेंगे कब तुम्हें प्रभु तुम शुद्ध ज्ञान हो ।।२।।

हम अपनी भूल से सभी व्याकुल हुए दुःखी ।
धर्मी का ध्यान करने से हो जाएँगें सुखी ।।
कर्मों का नाश हो मेरे और मुक्तिवास हो ।।३।।

मेरो मनुवा अति हरषाय......

मेरो मनुवा अति हरषाय, तोरे दरसन सौ ।।टेक।।
शात छबि लखि शात भाव ह्वै, आकुलता मिट जाय।।१।।
जबलौं चरन निकट नहि आया, तबलौं आकुल थाय।
अब आवत ही निज निधि पाया, नित नव मंगल पाय।।२।।
'बुधजन' अरज करै कर जोरे सुनिये श्री जिनराय।
जबलौं मोख होय नहि तबलौ भक्ति करू गुन गाय।।३।।

बिन काम ध्यान मुद्राभिराम......

बिन काम ध्यान मुद्राभिराम, तुम हो जगनायकजी ।।टेक।।
यद्यपि वीतराग मय तद्यपि, हो शिवदायकजी ।।१।।
रागी देव आप ही दुखिया, सो क्या लायकजी ।
दुर्जय मोह शत्रु हनवे को, तुम वच शायकजी ।।२।।
तुम भवमोचन ज्ञान सुलोचन, केवल क्षायकजी ।
'भागचन्द' भागन तै प्रापति, तुम सब ज्ञायकजी ।।३।।

ॐ जय जय अविकारी ....

ॐ जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी।।टेक।।
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेश हारी।।१।।
हे स्वभावमय जिन तुम चीना, भव-संतति टारी।
तुम भूलत भव भव भटकत सहत विपति भारी।।२।।
पर सम्बन्ध बन्ध दुःख कारण, करत अहित भारी।
परम ब्रम्ह का दर्शन, चहुँगति दुःखहारी।।३।।
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनि-मन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचि गुण भण्डारी।।४।।
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शान्ति चारी।
टले टलें सब पातक, परबल बलधारी।।५।।

जप ले प्रभु का नाम ....

जप ले प्रभु का नाम, जग से पार उतर ले।
छोड जगत जंजाल, निज आतम को भज ले।।टेक।।
चारों गति में अब तक घूमा, मोह मदिरा पी नशे में झूमा।
इस जग में कुछ नहीं है तेरा, काहे करता तेरा मेरा।।
अब तो निद्रा छोड़ प्रभु का नाम सुमर ले .....।।१।।
मानुष भव उत्तम कुल पाया, अब तक जीवन व्यर्थ गँवाया।
संयम से नहीं नाता जोड़ा, विषयों से क्यों मुख नहीं मोडा।।
सत्य समझ उर धार संयम धारण कर ले .....।।२।।
सात तत्व का निर्णय कर ले, जीव अजीव स्वरूप समझ ले।
सम्यक् श्रद्धा जब मन लाये, कर्म बन्ध ढीले पड़ जायें।।
अपना सच्चा रूप समझ कर दुविधा हर ले .....।।३।।

प्रभु थांको लखि मम चित हरषायो......

प्रभु थांको लखि मम चित हरषायो।।टेक।।
सुन्दर चिन्तारतन अमोलक, रंकपुरुष जिमि पायो।।१।।
निर्मल रूप भयो अब मेरो, भक्ति नदी जल न्हायो।।२।।
'भागचन्द' अब मम करतल में, अविचल शिवथल आयो।।३।।

प्रभु हम सबका एक ....

प्रभु हम सब का एक, तू ही तारण हारा रे.....२ ।
तुम को भूला फिरा वही नर मारा मारा रे.....२ ।।टेक।।
बड़ा पुण्य अवसर यह आया, आज तुम्हारा दर्शन पाया ।
फूला मन यह हुआ सफल मेरा जीवन सारा रे.....२ ।।१।।
भक्ति में जब चित्त लगाया, चेतन में तब चित ललचाया ।
वीतरागी देव करो हमें भव से पारा रे.....२ ।।२।।
अब तो मेरी ओर निहारो, भव समुद्र से नाथ उबारो ।
पंकज का लो हाथ पकड़, मैं पाऊँ किनारा रे.....२ ।।३।।
जीवन में मैं नाथ को पाऊँ, वीतरागी भाव बढाऊँ ।
भक्ति भाव से प्रभु चरन में, जाऊँ जाऊँ रे.....२ ।।४।

निरखत जिनचन्द्र-बदन .....

निरखत जिनचन्द्र-बदन, स्वपद सुरुचि आई ।।टेक।'
प्रगटी निज आन की, पिछान ज्ञान भान की ।
कला उदोत होत काम जामिनी पलाई ।।१।।
सास्वत आनन्द स्वाद, पायो बिनस्यो विषाद ।
आन में अनिष्ट-इष्ट, कल्पना नसाई ।।२।।
साधी निज साध की, समाधि मोह-व्याधि की ।
उपाधि को विराधि कैं, आराधना सुहाई ।।३।।
धन दिन छिन आज सुगुन, चिन्तैं जिनराज अबै ।
सुधरे सब काज 'दौल', अचल सिद्धि पाई ।।४।।

जैन-मन्दिर हमको लागे प्यारा .....

जैन-मन्दिर हमकौ लागै प्यारा ।।टेक।।
कैंधौ व्याह मुकति मगल ग्रह, तोरनादि जुत लसत अपारा ।।१।।
धर्मकेतु सुखहेत देत गुन, अक्षय पुण्य रतन भण्डारा ।
कहुँ पूजन कहूँ भजन होत हैं, कहु बरसत पुन श्रुतरसधारा ।।२।।
ध्यानारूढ़ विराजत हैं जहा, वीतराग प्रतिबिम्ब उदारा ।
'भागचन्द' तहां चलिये भाई, तजिकै गृहकारज अघ भारा ।।३।।

आनंद मंगल आज हमारे.....

आनंद मंगल आज हमारे, आनंद मंगल आज।।टेक।।
श्री जिन-चरण-कमल परसत ही, विघन गये सब भाज।।१।।
सफल भई सब मेरी कामना, सम्यक् हिये विराज।।२।।
'नैन' वयन मन शुद्ध करन को, भेंटे श्री जिनराज।।३।।

जयवन्तो जिनबिम्ब जगत में.....

जयवन्तो जिनबिम्ब जगत में, जिन देखत निज पाया है।।टेक।।
वीतरागता लखि प्रभुजी की, विषय-दाह विनशाया है।
प्रगट भयो संतोष महागुण, मन थिरता में आया है।।१।।
अतिशय ज्ञान शरासन पै धरि, शुक्ल ध्यान शरवाया है।
हानि मोह-अरि चंड चौकड़ी, ज्ञानादिक उपजाया है।।२।।
वसुविधि अरि हर कर शिवथानक, थिरस्वरूप ठहराया है।
सो स्वरूप रुचि स्वयंसिद्ध प्रभु, ज्ञानरूप मन भाया है।।३।।
यद्यपि अचित तदपि चेतन को, चितस्वरूप दिखलाया है।
कृत्य कृत्य 'जिनेश्वर' प्रतिमा, पूजनीय गुरु गाया है।।४।।

मुक्तिपुरी का ऋषभ दुलारा.....

मुक्तिपुरी का ऋषभ दुलारा, सबकी आंखों का तारा।
ध्यान करत मन आनन्द पावे, ऐसा प्रभु का अतिशय न्यारा।।टेक।।
सात सुरों के सरगम में, प्रभु तेरे गुण को गावें रे,।
सुमरन करते नाम प्रभु का, भव-भव कर्म छुड़ावें रे।।
घर-घर मंगल होवे सबके, पाकर प्रभु का अमर सहारा।।१।।
अष्ट कर्म की जंजीरों को, तोड़ के मोक्ष सिधारे हो।
ज्ञानज्योति से सबको स्वामी, सम्यक् ज्योति देते हो।।
मन-मन्दिर में ध्यान लगावे, लेकर तेरा नाम निराला।।२।।
अमृतमय सन्देश तुम्हारा, धर्म की ज्योति जलावेगा।
मानवता में शान्ति करके, सद्बुद्धि फैलावेगा।।
भव-भव में हम शरणा पावे, जो है सबका तारणहारा।।३।।

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभु तुमको मैं......

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभु तुमको मैं शीस झुकाता हूँ।
अज्ञान तिमिर के हरण हेतु जिन चरण शरण में आता हूँ।।टेक।।
तुमने अनंत सुख प्राप्त किया रागादि विकार हटाया है।
ज्ञायक स्वभाव में तन्मय हो अनुपम निज वैभव पाया है।।१।।
मै उस वैभव को भूला था, निज पर का कुछ भी ज्ञान न था।
पर मे सुख मान भटकता था निज आतम सुख का भान न था।।२।।
निज पर को कर्ता मान जान प्रतिपल अनुकूल बनाने मे।
चिरकाल से व्यस्त रहा फिर भी असमर्थ रहा अपनाने मे।।३।।
शुभराग को धर्म समझता था जो चिद्विकार दुखकारी है।
अज्ञात था ज्ञायक भाव मुझे जो सहज सिद्ध सुखकारी है।।४।।
मन वचन काय की परणति को निज परणति मैंने मानी थी।
ये भव के भाव मिटा न सका तो भव की कौन कहानी थी?।।५।।
अब शात छवि लख जिनवर की मैने यह निश्चित जाना है।
"मै ज्ञानानद स्वभावी हूँ"- जो भूला था पहचाना है।।६।।
जिसने प्रभु को पहचान लिया उसने अपने को जान लिया।
निज आतम में परमात्मदशा का शांति सुधारस पान किया।।७।।
आत्म 'हितैषी' को मिले, जिनसे आतमज्ञान।
ऐसे जिनवर देव को, शत शत करूँ प्रणाम।।८।।

आरति श्री जिनराज तिहारी.........

आरति श्री जिनराज तिहारी, भरमदलन सतन हितकारी।।टेक।।
सुर-नर-असुर करत तुम सेवा, तुम ही सब देवन के देवा।।१।।
पच महाव्रत दुद्धर धारे, राग-रोष परिणाम विदारे।
भव भयभीत शरन जे आये, ते परमारथपथ लगाये।।२।।
जो तुम नाथ जपै मनमाहि, जनम-मरन भय ताको नाही।
समवसरन संपूरन शोभा, जीते क्रोध-मान-छल-लोभा।।३।।
तुम गुण गण हम कैसे गावे, गणधर कहत पार नहि पावै।
करुणासागर करुणा कीजे, 'द्यानत' सेवक को सुख दीजे।।४।।

आज मैंने प्रभु दर्शन पाये......

आज मैंने प्रभु दर्शन पाये, महाराज श्रीजिनवर जी।।टेक।।
तुमरे ज्ञान द्रव्य गुन पर्जय, निज चित गुन दरशाये।
निज लच्छन तैं सकल विलच्छन, ततछिन पर दृग आये।।१।।
अप्रशस्त संक्लेश भाव अघ, कारन ध्वस्त कराये।
राग प्रशस्त उदय तै निर्मल, पुण्य समस्त कमाये।।२।।
विषय कषाय आताप नस्यो सब, साम्य सरोवर न्हाये।
रुचि भई तुम समान होन की, 'भागचन्द' गुन गाये।।३।।

रे मन ! भज-भज दीनदयाल.....

रे मन ! भज-भज दीनदयाल।
जाके नाम लेत इक छिन मैं, कटैं कोटि अघजाल।।टेक।।
परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी, देखै होत निहाल।
सुमरन करत परम सुख पावत, सेवत भाजै काल।।१।।
इन्द्र फनिन्द चक्रधर गावैं, जाको नाम रसाल।
जाको नाम ज्ञान परकासै, नाशै मिथ्याजाल।।२।।
जाके नाम समान नही कछु, ऊरध मध्य पताल।
सोई नाम जपो नित 'द्यानत', छाडि विषय विकराल।।३।।

चरणों में आया हूँ प्रभुवर ....

चरणो में आया हूँ प्रभुवर, शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।।टेक।।
सोचा करता हूँ भोगो से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक मे घी डाला।।१।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख को ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु, सच्चे सुख की भी परिभाषा।।२।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर, जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों मे, जग के माणिक मोती सारे।।३।।
स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखो, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं।।४।।

दया कर दया कर दया धर्म धारी ....

दया कर दया कर दया धर्म धारी, हम आये हुए हैं शरण में तुम्हारी ।।
नहीं हमने अपना समयसार जाना, सदा परपदार्थ में अपनत्व माना ।
उन्हें याद करते रहे रात-दिन हम, जिन्हें सर्वदा के लिए था भुलाना ।
अहो मूल में हो रही भूल भारी, हम आये हुए हैं शरण में तुम्हारी ।।

प्रभो कर्म मेरे घिरे आस्रवों से, रही प्रीत मेरी सदा आस्रवों से ।
मिलेगा इन्हें देव विस्तार कैसे, बहें लोक सागर में टूटे पल्लवों से ।
निकालो खिवैया ये नैया हमारी, हम आये हुए हैं शरण में तुम्हारी ।।

सुलभ हो मुझे भेदविज्ञान अपना, पृथक् पुदगलों से समय का परखना ।
करूं आत्मचिंतन तजूं जन्म सागर, वरूं मोक्षलक्ष्मी निर्वाण पाकर ।
कृपानाथ तुमसा मैं बनूं सिद्धधारी, हम आये हुए हैं शरण में तुम्हारी ।।

सुनादेव तारन-तरन नाम तेरा, इसी से लिया है चरन में बसेरा ।
तुम्ही सुप्रभांत, तुम्हीं हो सवेरा ,तुम्ही ने प्रभो कर्म पथ को निवेरा ।
कहाँतक कहें नाथ महिमा तुम्हारी, हम आये हुए हैं शरण में तुम्हारी ।।

वीतराग जिन महिमा थारी......

वीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकै को जन त्रिभुवन में ।।टेक।।
तुमरे अनन्त चतुष्टय प्रगट्यो, नि शेषावरनच्छय छिन में ।
मेघ विघटनतै प्रगटन जिमि मार्तण्ड प्रकाश गगन में ।।१।।
अप्रमेय ज्ञेयन के ज्ञायक, नहिं परिनमत तदपि ज्ञेयन में ।
देखत नयन अनेकरूप जिमि, मिलत नही पुनि निज विषयन मे ।।२।।
निज उपयोग आपनै स्वामी, गाल दिया निश्चल आपन में ।
है असमर्थ बाह्य निकसन को, लवन घुला जैसै जीवन मे ।।३।।
तुमरे भक्त परम सुख पावत, परत अभक्त अनन्त दुःखन में ।
जैसो मुख देखो तैसौ ह्वै, भासत जिम निर्मल दरपन मे ।।४।।
तुम कषाय बिन परम शान्त हो, तदपि दक्ष कर्मारि हतन में ।
जैसे अति शीतल तुषार पुनि, जार देत द्रुम भारि गहन में ।।५।।
अब तुम रूप जथारथ पायो, अब इच्छा नहिं अन कुमतन में ।
'भागचन्द' अमृतरस पीकर, फिर को चाहै विष निज मन में ।।६।।

भव्य-सुन ! महावीर-संदेश !.........

भव्य-सुन ! महावीर-संदेश !।
विपुला-चल पर दिया प्रमुख जो, आत्मधर्म उपदेश।।टेक।।
सब-जीवों अब मुझ-सम देखो, धर श्रद्धा नहिं क्लेश।
वीतराग ही रूप तुम्हारा, संशय तज आदेश।।१।।
मोहाश्रित हो रूप निरख कर, करता नट-वत भेष।
मुझ-सम देख ! देख ! निर्मोही, ज्ञायकता अविशेष।।२।।
चार कषायों के रहने से, मलिन ज्ञान-प्रदेश।
निर्मल-ज्ञान जान ! अवलोको, स्वच्छ-ज्ञान निज-देश।।३।।
देव, मनुष, तिर्यंच, नारकी, पुद्गल-पिंड विशेष।
छेद ! चार-गति पंचम-गति पति, जानो ! अपना-देश।।४।।
दर्शन-ज्ञान चेत ! चेतन-पद, यहाँ न पर परवेश।
निःप्रमाद हो स्थिर अब रहना, नहीं कल्प लवलेश।।५।।
श्रुतज्ञान नहिं श्रुत के आश्रय, ज्ञानाश्रित निरदेश।
ज्ञानी ! ज्ञान स्वरूप केवली, नन्द-वंद्य परमेश।।६।।

तुम से लागी लगन ....

तुम से लागी लगन, ले लो अपनी शरण ।
पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा ।।

निशदिन तुझको जपूँ, पर से नेहा तजूँ ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ।।टेक।।

अश्वसेन के राजदुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे ।
सबसे नेहा तोड़ा, जग से मुँह को मोड़ा, संयम धारा ।।१।।
इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये ।
आशा पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ।।२।।

जगके दुख की तो परवाह नहीं है, स्वर्गसुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन-मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा।।३।।
लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊँ, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊँ।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया लागे खारा।।४।।

वीर प्रभु के ये बोल तेरा प्रभु ....

वीर प्रभु के ये बोल तेरा प्रभु तुझ ही में डोले।।टेक।।
तुझ ही में डोले हाँ तुझ ही में डोले ।
मन की तो गुंडी को खोल, खोल - ३,तेरा प्रभु .....।।१।।
क्यों जाता गिरनार क्यों जाता काशी, घट ही में है तेरे घट-घट का वासी ।
अन्तर का कोना टटोल, टोल - ३, तेरा प्रभु .....।।२।।
चारों कषायों को तूने है पाला, आतम प्रभु को जो करती है काला ।
इनकी तू संगति को छोड़, छोड़ - ३, तेरा प्रभु .....।।३।।
पर में जो ढूँढा न भगवान पाया, संसार को ही है तूने बढ़ाया ।
देखो निजातम की ओर, ओर - ३, तेरा प्रभु .....।।४।।
मस्तों की दुनियाँ में तू मस्त हो जा, आतम के रंग में ऐसा तू रंग जा ।
आतम को आतम में घोल, घोल - ३, तेरा प्रभु .....।।५।।
भगवान बनने की ताकत है तुझमें, तू मान बैठा पुजारी हूँ बस मैं ।
ऐसी तू मान्यता को छोड़, छोड़ - ३, तेरा प्रभु .....।।६।।

जय बोलो महावीर स्वामी की ....

जय बोलो महावीर स्वामी की, घट-घट के अंतरयामी।।टेक।।
जिन सिद्धारथ घर जनम लिया, पितु मात को आन मुदित किया।
उस त्रिशलानन्दन ज्ञानी की, जय बोलो महावीर स्वामी की।।१।।
जिसने राग-द्वेष सब छोड़ दिया, हिंसा से नाता तोड़ दिया।
उस महावीर महाज्ञानी की, जय बोलो महावीर स्वामी की।।२।।
जिसने भारत आन जगाया, मिथ्यातम को दूर भगाया।
उस परम दिगम्बर ज्ञानी की, जय बोलो महावीर स्वामी की।।३।।

बनने जिन महावीर वन को ....

बनने जिन महावीर वन को चल दिए, आत्मचिन्तन पर ही पूरा बल दिए।।टेक।।
अष्टकर्मादिक खड़े सब देखते, तोड़ने बन्धन करम का चल दिए।।१।।
पाप-पुण्य मिथ्यात्व थे सब रो रहे, थे जिन्होंने तुमसे अक्सर छल किए।
भावना बारह संजोए ध्यान में, धार दशलक्षण धर्म को चल दिए।।२।।
जयन्ती उनकी हैं मनाते पर सभी होके जो आजन्म शिवपुर चल दिए।
जन्मदिन तेरा मुबारक हो उन्हें आज से जो तेरे पथ पर चल दिए।।३।।

मैं ये निर्ग्रन्थ प्रतिमा देखूं ....

मैं ये निर्ग्रन्थ प्रतिमा, देखूं अब ध्यान से।
बैठे पद्मासन जिनवर, देखो किस शान से।।टेक।।

राग-द्वेष का नाम नहीं, बैठे अपने अन्तर में।
दृष्टि को अन्दर करके, प्रभु बैठे हैं निज घर में।।
अन्जन से पापी उतरे, जिनके गुणगान से।।१।।

कर्मकालिमा नष्ट करी और अष्टकर्म को जीता।
वो भी हो जाते जिनवर सम, जो आतम रस पीता।।
आत्म के अनुभवी दीखें सबको निष्काम से।।२।।

देती ये उपदेश मूर्ति, अरे जगत के जीवों।
चौरासी से थकान लगी, तो आतम रस पीवो।।
हम तो थक कर बैठे, हैं सारे जहान से।।३।।

हाथ पै हाथ धरे बैठे जो वही वीतरागी है।
तीन लोक की सभी सम्पदा, जिनवर ने त्यागी है।।
अब भी भगवान हो तुम, पहले भी भगवान थे।।४।।

कर लो जिनवर की पूजन ......

कर लो जिनवर की पूजन, आई पावन घडी।
आई पावन घडी, मन भावन घडी।।टेक।।

दुर्लभ यह मानव तन पाकर, कर लो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान।।१।।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, मोहनीय अन्तराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय।।२।।

धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया संसार।
निज स्वभाव सेअ सिद्ध पद पाया, अनुपम अगम अपार।।३।।

जड़ से भिन्न सदा तुम चेतन, करो भेद विज्ञान।
सम्यग्दर्शन अंगीकृत कर, निज को लो पहचान।।४।।

रत्नत्रय की तरणी चढकर, चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ, हो जाओ भव पार।।५।।

किस विधि किये करम चकचूर.....

किस विधि किये करम चकचूर।
थांकी उत्तम क्षमा पै जी अचंभो म्हाने आवै।।
एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर, पास न तिल तुष मात्र हजूर।
दूजे जीव दया के सागर, तीजे संतोषी भरपूर।।
चौथे प्रभु तमु हित उपदेशी, तारण तरण जगत मशहूर।
कोमल वचन सरल सम वक्ता, निर्लोभी संजम तप-शूर।।
कैसे ज्ञानावरण निवारचो, कैसे गेरचो अदर्शन चूर।
कैसे मोह-मल्ल तुम जीते, कैसे किये घातिया दूर।।
त्याग उपाधि हो तुम साहिब, आकिंचन व्रतधारी मूल।
दोष अठारह दूषण तज के, कैसे जीते काम क्रूर।।
कैसे केवलज्ञान उपायो, अन्तराय कैसे निर्मूल।
सुरनर मुनि सेवै चरण तिहारे, तो भी नही प्रभु तुमको गरूर।।
करत दास अरदास 'नैनसुख' येही वर दीजे मोहे जरूर।
जन्म-जन्म पद-पंकज सेऊँ और नही कछु चाह हजूर।।

तुम्ही हो ज्ञाता, दृष्टा तुम्ही हो.....

तुम्ही हो ज्ञाता, दृष्टा तुम्ही हो तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
तुम्ही हो त्यागी, तुम्ही वैरागी, तुम्ही हो धर्मी, सर्वज्ञ स्वामी।
हो कर्म जेता, तीरथ प्रणेता, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
तुम्ही हो निश्छल, निष्काम भगवन, निर्दोष तुम हो, हे विश्वभूषण।
तुम्हें त्रिविध है वन्दन हमारी, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
तुम्ही सकल हो, तुम्ही निकल हो, तुम्ही हजारों हो नाम धारी।
कोई न तुमसा हितोपकारी, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
जो तिर सके ना भव सिन्धु मांही, किया क्षणों में है पार तुमने।
बैरी है पावन मुक्तिरमा को, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
जो ज्ञान निर्मल है नाथ तुममें, वही प्रगट हो वीरत्व हममें।
मिले परमपद 'सौभाग्य' हमको, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।

लिया प्रभु अवतार.....

लिया प्रभु अवतार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।
त्रिशला नन्दकुमार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।टेक।।
आज खुशी है आज खुशी है, हमें खुशी है तुम्हें खुशी है ।
खुशियां अपरम्पार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।१।।
पुष्प और रत्नों की वर्षा, सुरपति करते हरषा हरषा ।
बजे दुन्दभीसार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।२।।
उमंग उमंग नरनारी आते नृत्य भजन संगीत सुनाते ।
इन्द्र शची ले सार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।३।।
प्रभु का रूप अनूप सुहाया, निरख निरख छवि हरि ललचाया ।
कीने नेत्र हजार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।४।।
जन्मोत्सव की शोभा भारी, देखो प्रभु की लगी सवारी ।
जूड़ रही भीड अपार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।५।।
आवो हम सब प्रभु गुण गावे, सत्य अहिंसा ध्वज लहरावें ।
जो जग मगलकार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।६।।
पुण्य योग्य सौभाग्य हमारा, सफल हुवा है जीवन सारा ।
मिले मोक्ष दातार जय जयकार जय जयकार जय जयकार ।।७।।

हे जिन ! तेरे मैं शरणै आया.....

हे जिन ! तेरे मैं शरणै आया।।टेक।।
तुम हो परमदयाल जगत गुरु, मैं भव-भव दुःख पाया।।१।।
मोह महादुठ घेर रह्यो मोहि, भव कानन भटकाया।
नित निज ज्ञान- चरन निधि विसर्‍यो, तनधन कर अपनाया।।२।।
निजानन्द अनुभव पियूष तज, विषय हलाहल खाया।
मेरी भूल मूल दुःखदाई, निमित मोह-विधि पाया।।३।।
सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढ़िग, और न हेत लखाया।
शिवस्वरूप शिवमगदर्शक तुम, सुयश मुनीगन गाया।।४।।
तुम हो सहज निमित जगहित के, मो उर निश्चय भाया।
भिन्न होहुं विधि तैं सो कीजे, 'दौल' तुम्हें सिर नाया।।५।।

अरहन्त सुमर मन बावरे.....

अरहन्त सुमर मन बावरे ।।टेक।।

ख्याति लाभ पूजा तजि भाई, अन्तर प्रभु लौं लाव रे ।।१।।
नरभव पाय अकारथ खोवै, विषय भोग जु बढ़ाव रे।
प्राण गये पछितैहै मनुवा, छिन-छिन छीजै आव रे ।।२।।
युवती तन-धन सुत-मित परिजन, गज तुरंग रथ चाव रे।
यह संसार सुपन को माया, आँख मीच दिखराव रे ।।३।।
ध्याय-ध्याय रे अब है अवसर, आतम मंगल गाव रे।
'द्यानत' बहुत कहाँ लौं कहिये, और न कछु उपाव रे ।।४।।

श्री जिनपूजन को हम आये.....

श्री जिनपूजन को हम आये, पूजत ही दुखदुँद मिटाये ।।टेक।।

विकलप गयो प्रगट भयो धीरज, अदभुत सुख समता बरसाये ।
आधि-व्याधि अब दीखत नाहीं, धरम कलपतरु आंगन थाये ।।१।।
इतमैं इन्द्र चक्रवर्ति इतमैं, इतमैं फनिंद खरे सिर नाये ।
मुनिजनबृंद करैं थुति हरषत, धनि हम जनमैं पद परसाये ।।२।।
परमौदारिक मैं परमातम, ज्ञानमयी हमको दरसाये ।
ऐसे ही हममें हम जानैं, 'बुधजन' गुन मुख जात न गाये ।।३।।

हमारी वीर हरो भवपीर .....

हमारी वीर हरो भवपीर ।।टेक।।

मैं दुःख तपित दयामृत सर तुम, लखि आयो तुम तीर ।
तुम परमेश मोक्षमग दर्शक, मोह दवानल नीर ।।१।।
तुम बिनहेत जगत उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर ।
गनपति ज्ञानसमुद्र न लंघैं, तुम गुनसिन्धु गहीर ।।२।।
याद नहीं मैं विपति सही जो, धर-धर अमित शरीर ।
तुम गुन चिन्तत नशत तथा भय, ज्यों घन चलत समीर ।।३।।
कोटवार की अरज यही है, मैं दुःख सहूँ अधीर ।
हरहु वेदनाफन्द 'दौल' की, कतर कर्म जंजीर ।।४।।

राग-द्वेष जाके नहिं मन में......

राग-द्वेष जाके नहि मन में हम ऐसे के चाकर हैं।
जो हम ऐसे के चाकर तो कर्म रिपू हम कहा करि हैं।।टेक।।
नहिं अष्टादश दोष जिनू में छियालीस गुण आकर हैं।
सप्त तत्व उपदेशक जग में सोही हमारे ठाकुर हैं।।१।।
चाकरि में कछु फल नहिं दीसत तो नर जग में थाकि रहे।
हमरे चाकरि में है यह फल होय जगत के ठाकुर हैं।।२।।
जांकी चाकरि बिन नहिं कछु सुख तातैं हम सेवा करि हैं।
जाकै करणैं तैं हमरे नहिं खोटे कर्म विपाक रहैं।।३।।
नरकादिक गति नाशि मुक्तिपद लहै जु ताहि कृपा धर हैं।
चंद्र समान जगत में पंडित 'महाचंद्र' जिन स्तुति करिहैं।।४।।

आओ भवि जिनवर की भक्ति करेंगे ....

आओ भवि जिनवरकी भक्ति करेंगे भक्ति करेंगे वाणी सुनेंगे।
वीर प्रभू ने केवल पायो, छियासठ दिन नहिं अवसर आयो।।टेक।।
श्रावण बदी एकम दिन पावन करेंगे, आओ भवि जिनवर ....।।१।।

अवधिज्ञान से इन्द्र जानकर, नहीं सभा में कोई गणधर।
गौतम द्विज प्रभु के गणधर बनेंगे, आओ भवि जिनवर ....।।२।।

जा पूछा अर्थ इन्द्र इक पद का, समझे न विप्र चढ्यो रस तब मद का।
बोले तेरे गुरु से हम चर्चा करेंगे आओ भवि जिनवर ....।।३।।

मानस्तम्भ देख समकित लह सप्तऋद्धि अरु चार ज्ञान लह।
हुए गणी हमको अब तत्व कहेंगे, आओ भवि जिनवर ....।।४।।

खिरी दिव्यध्वनि अविरलरूप से काढ़नहारी संसार कूप से।
सार प्रवचन का समाधि में रहेंगे, आओ भवि जिनवर ....।।५।।

परम्परा दिगम्बर से आई वाणी, आज भी सुनायें यहाँ समयक् ज्ञानी।
वाणी कों सुनकर तत्व निर्णय करेंगे, आओ भवि जिनवर ....।।६।।

तत्वों कों निर्णय से सम्यक्त्व पाकर , ज्ञानमयी चारित्र अपनाकर।
शुक्ल ध्यान द्वारा परमात्मा बनेंगे आओ भवि जिनवर ....।।७।।

२. शास्त्र भक्ति

ओम् जय जय जिनवाणी ....

ओम् जय जय जिनवाणी माता जय जय जिनवाणी।
तुमको निशदिन ध्यावत सुर नर मुनि ज्ञानी।।टेक।।
श्री जिन गिरि तैं निकसी, गणधर उर आनी।
जीवन भ्रम तम नाशन, दीपक दरशानी।।१।।
कुमति कुलाचल चूरण, वज्र सु सरधानी।
नव पदार्थ निक्षेपण, देखन दरपानी।।२।।
पातक पंक पखालन, पुण्य परम पानी।
मोह महार्णव डूबत, तारन नौकानी।।३।।
लोकालोक निहारत, दिव्य नेत्र थानी।
निज-पर भेद दिखावन, सूरज किरणानी।।४।।
श्रावक मुनिगण जननी, तुम ही गुणखानी।
सेवक लख सुखदायक, पावन परमानी।।५।।

हमने तो घूमी चार गतियाँ ....

हमने तो घूमी चार गतियाँ न मानी जिनवाणी की।।टेक।

नरकों में दुख ही दुख पाये, खण्ड खण्ड यह देह कराये।
पायो न चैन दिन रतियाँ, न मानी जिनवाणी की बतियाँ।।१।।

पशु बन करके बोझ उठायो, भूख प्यास सही अकुलायो।
अँसुवन से भीग गईं अखियाँ, न मानी जिनवाणी की बतियाँ।।२।।

जब दुर्लभ मानुष तन पायो, माया ममता में विसरायो।
लीनी न अपनी सुरतियाँ, न मानी जिनवाणी की बतियाँ।।३।।

पुण्य उदय से सुरगति पायी, मरण समय माला मुरझाई।
मरकें फिर भये पेड़ पतियाँ न मानी जिनवाणी की बतियाँ।।४।।

बिन सम्यक् घूमा तन धारी, अपने को पहचान पुजारी।
सतगुरु की मानो समतियाँ न मानी जिनवाणी की बतियाँ।।५।।

हो जिनवानी जू, तुम मोकौं तारोगी.....

हो जिनवानी जू, तुम मोकौं तारोगी ।।टेक।।
आदि अन्त अविरुद्ध वचन तैं, संशय भ्रम निरबारोगी ।।१।।
ज्यौं प्रतिपालत गाय बत्स कौं, त्यों ही मुझको पारोगी ।
सनमुख काल बाघ जब आवै, तब तत्काल उबारोगी ।।२।।
'बुधजन' दास बीनवै माता, या विनती उर धारोगी ।
उलझि रह्यौ हूँ मोह जाल में, ताकौ तुम सुरझारोगी ।।३।।

जिनवानी जान सुजान रे.....

जिनवानी जान सुजान रे ।।टेक।।
लाग रही चिरतैं विभावता, ताको कर अवसान रे ।।१।।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की, कथनी को पहिचान रे ।
जाहि पिछाने स्व-पर भेद सब, जान परत निदान रे ।।२।।
पूरब जिन जानी तिनही ने, भानी संसृतिबान रे ।
अब जानै अरु जानैंगे जे, ते पावैं शिवथान रे ।।३।।
कह 'तुषमाष' मुनी शिवभूती, पायो केवलज्ञान रे ।
यौं लखि 'दौलत' सतत करो भवि, चिद्वचनामृत पान रे ।।४।।

जिनवाणी मो मन भावे.....

जिनवाणी मो मन भावे, या संशय तिमिरि मिटावे जी ।।टेक।।
नव तत्वनि की समझि करावे, स्व-पर भेद दरशावे जी ।
मिथ्या अलट मिटावन कारण, स्याद्वाद मय धावे जी ।।१।।
चन्द्रभानु मणि नांहि पटन्तर, बाहिर तिमिर मिटावे जी ।
बाह्याभ्यन्तर मैटे वाणी, तीन लोक सिर नावें जी ।।२।।
तप व्रत संयम यामें गर्भित, श्री गुरु श्रुत में गावें जी ।
या बिन दूजो शिव पथ नाहीं, यातें शुभगति पावे जी ।।३।।
रत्नत्रय वाही तै मिलि हैं, या बिन नहिं उपजावे जी ।
'पारस' जोलों शिव नहिं हो है, उर तिष्ठो याचावे जी ।।४।।

संसारी जीवनां भावमरणो......

संसारी जीवनां भावमरणो टालवा करुणा करी,।
सरिता बहावी सुधा तणी प्रभु वीर ! तें संजीवनी ।।
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी।
मुनिकुन्द संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी ।।१।।
कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या।
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या ।।२।।
अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नितरती,।
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी ।।
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती।
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दौड़े परिणती ।।३।।
तूं छे निश्चयग्रन्थ भंग सघला व्यवहारना भेदवा।
तूं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा ।।
साथी साधकनो तू भानु जगनो सदेश महावीरनो।
विसामो भवक्लांतनां हृदयनो, तूं पंथ मुक्ति तणो ।।४।।
सूण्ये तगो रसनिबंधा शिथिल थाय,।
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय ।।
तूं रूचतां जगतनी रुचि आलसे सौ.।
तू रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे ।।५।।
बनावुं पत्र कुन्दनना, रत्नोना अक्षरो लखी।
तथापि कुन्दसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी ।।६।।

जिनवाणी माता ....दरशायो तुम ....

जिनवाणी माता .....दरशायो तुम ही राह ।।टेक।।

भ्रमत अनादिकाल से मिथ्या तम मे माहि।
ज्ञानस्वरूपी मैं ही हूँ दरशायो तुम राह ।।१।।

अब ना कभी पर्याय में मम का भ्रम हो जाय।
चेतना में ही रमूँ और कछु नहि भाय ।।२।।

जिनवाणी माता रत्नत्रयनिधि दीजिये.....

जिनवाणी माता रत्नत्रयनिधि दीजिये ।।टेक।।
मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण में, काल अनादि घूमे ।
सम्यग्दर्शन भयौ न तातें, दुःख पायो दिन दूने ।।१।।
है अभिलाषा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण दे माता! ।
हम पावैं निजस्वरूप आपनों, क्यों न बनैं गुण-ज्ञाता ।।२।।
जीव अनन्तानन्त पठाये, स्वर्ग-मोक्ष में तूने ।
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने ।।३।।
भव्य जीव हैं पुत्र तुम्हारे, चहुँगति दुःख से हारे ।
इनको जिनवर बना शीघ्र, अब दे दे गुणगण सारे ।।४।।
औगुण तो अनेक होत हैं, बालक में ही माता ! ।
पै अब तुम-सी माता पाई, क्यों न बने गुण-ज्ञाता ।।५।।
क्षमा-क्षमा हो सभी हमारे, दोष अनन्ते भव के ।
शिव का मार्ग बता दो, माता! लेहु शरण में अब के ।।६।।
जयवन्तो जिनवाणी जग में, मोक्षमार्ग प्रवर्तो! ।
श्रावक है 'जयकुमार' बीनवे, पद दे अजर अमर तो ।।७।।

ज्ञानी जिनवाणी आधार.....

ज्ञानी जिनवानी आधार, निज को सिद्ध कहाने वाला ।।टेक।।
ज्ञानी ज्ञान भाव करतार, जाने स्याद्वाद के द्वार ।
होकर अनेकान्त से पार, विकलप दूर बहाने वाला ।।१।।
पाया रूप आपका सार, है वह चेतन ज्योति अपार ।
तीनों कर्म जाल निःसार, पुदगल कृत ही होने वाला ।।२।।
यद्यपि एक क्षेत्र आवास, रहता षट् द्रव्यों सहवास ।
तद्यपि भिन्न-भिन्न रहवास, देखे ज्ञान नेत्र ही वाला ।।३।।
आता कर्म उदय जब जान, ज्ञानी होत नटी समान ।
ल्याता रस जब उदय प्रमान, तद्यपि ज्ञान चेतना वाला ।।४।।
कर लो निज अनुभव का ज्ञान, ज्ञानी सिद्ध सहज अमलान ।
होगा भावकर्म सब हान, मुक्तिपुरी को जाने वाला ।।५।।

समयसार की अदभुत महिमा.......

समयसार की अदभुत महिमा, आज बताऊँ गली गली
सुनलो सच्चे सुख के वांछक, धूम मचाऊँ गली गली।।टेक।।

समयसार ही तीन लोक में, परमोत्कृष्ट बताया है।
सुखी हुये वे ही जिन-जिनने, समयसार निज ध्याया है।
समयसार बिन सुख न मिलेगा, बात कहूँ मैं खरी खरी।।

तर्क छंद साहित्य पढ़े अरु, बहु आगम अभ्यास किया।
पंडित भी कहलाए पर नहीं, समयसार का ज्ञान किया।
समयसार पहचान किये बिन, घूमें जग की गली गली।।

तन कर्मों से न्यारा जाना, रागादि में अटक गया।
रागादि भी भिन्न कहें पर्याय भेद में अटक गया।
समयसार में भेदों से भी भिन्न आत्मा शुद्ध कहा।।

ज्ञान मात्र ध्रुव धाम शुद्ध सुखमय चिन्मूरत आतमराम।
समयसार कारण परमातम शक्ति अनंतों का गुण धाम।
उपादेय आश्रय करने के योग्य आत्मा शुद्ध यही।।

म्हारा आतम छोड़ी दे मिथ्यात्व ....

म्हारा आतम छोड़ी दे मिथ्यात्व ,बुलावे जिनवाणी
म्हारा शुद्ध बुद्ध अभिराम, बुलावे जिनवाणी।।टेक।।

पुण्य-पाप को तुम छोड़ी दो, बन्ध आस्रव की होली कर दो
आयु पूरी होय रही है, नरक तिर्यञ्च का भय रख लीजो
म्हारा शुद्ध निजातम धाम, बुलावे जिनवाणी

विषय-भोग ने अब छोड़ी दो, आतम धर्म को ज्ञान करीजो
शिक्षण-शिविर कहता आ रहा है, जिनवाणी रसपान करीजो
म्हारा चिन्तामणी जीवराज, बुलावे जिनवाणी

केवलज्ञान कर मोक्ष में जाओ शमदम का तुम साज सजाओ
आदिअन्त से रहित शान्त तुम निज आतम का ध्यान करीजो
म्हारा परम पारणामिक भाव, बुलावे जिनवाणी

परम जननी धरम कथनी ....

परम जननी धरम कथनी भवार्णव पार कौ तरनी।
अनक्षरि घोष आपत की, अक्षरजुत गनधरौं बरनी।।टेक।।

निरवेयौ नयनु जोगन ते, भविन कौं तत्व अनुसरनी।
विथरनी शुद्ध दरसन की, मिथ्यातम मोह की हरनी।।१।।

मुकति मन्दिर के चढ़ने कौं, सुगम-सी सरल निसरनी।
अंधेरे कूप में परतां, जगत उद्धार की करनी।।२।।

तृषा के ताप मेटन कौ, करत अमृत वचन झरनी।
कथंचित वाद आदरनी, अवर एकान्त परिहरनी।।३।।

तेरा अनुभौ करत मोकौं, बनत आनन्द उर भरनी।
फिर पौ संसार दुखिया हूँ, गही अब आनि तुम सरनी।।४।।

अरज 'बुधजन' की सुन जननी, हरौ मेरी जनम मरनी।
नमूं कर जोरि मन बचतैं, लगा के सीस कौं धरनी।।५।।

नित पढ़ूँ पढ़ाऊँ, आतम पाऊँ ....

नित पढ़ूँ पढ़ाऊँ आतम पाऊँ, वन्दन शत-शत बार ।।टेक।।

सद्धर्म प्रकाशे, पाप विनाशे, कुगति उथप्पन हार।
मिथ्यामति खण्डे, पाप विहण्डे, मण्डे दया अपार।।१।।

तृष्णा मद मोहराग विडारें, यही जिनागम सार ।
जो पूजे ध्यावें, पढ़े पढ़ावे ते जग माँहि उदार ।।२।।

जिन कुन्द वचन सुन स्वात्म लखा ....

जिन कुन्दवचन सुन स्वात्म लखा उन आन का ध्यान किया न किया।
स्वविवेक कला जिनके हिरदै, षट खण्ड पति वह हुआ न हुआ।।टेक।।
वांछित फल निज अनुभव दायक, ले चिन्तामणि श्री गहा न गहा।
ज्ञायक गुण अक्षय धन पायो; उन पारस कण को लहा न लहा।।१।।
स्वच्छ दीप्ति परमात्म ज्योति घट, भानु प्रकाश किया न किया।
शुद्ध बोध का उभय दान दे, और दान दिया न दिया।।२।।
निज परिणाम नित्य निज का लख, और त्याग किया न किया।
'नन्द' विमल मति बोधामृत चख अमृत और पिया न पिया।।३।।

हे द्वादशांग वाणी ! तुमको लाखों ....

हे द्वादशांग जिनवाणी ! तुमको लाखों प्रणाम ।
हे सरस्वती जिनवाणी ! तुमको लाखों प्रणाम ।।टेक।।

हो तुम ज्ञान कला अविकारी, मिथ्यातम की नाशनहारी।
हो माता कल्याणी, तुमको लाखों प्रणाम।।१।।

ज्ञान भानु प्रगटावन हारी भव्य कमल सरसावन हारी।
हो तुम मुक्ति निशानी, तुमको लाखों प्रणाम ।।२।।

चिदानन्द की हो रजधानी, वीर प्रभु के मुख से आनी।
गौतम गणधर छानी, तुमको लाखों प्रणाम।।३।।

तीन जगत की हो हितकारी, दासन को उद्धारन हारी ।
हो माता सुखदानी, तुमको लाखों प्रणाम ।।४।।

जिनवाणी सदा मुख बोल ....

जिनवाणी सदा मुख बोल अमृत बूँद झरी ।
वीर मुखारविन्द घन गरजी, हररयो भविजन मोर ।।टेक।।

जन्म जरा मृत्यु रोग हरण को जीवन जन्म अनमोल।
मिथ्यातम के नाश करन कूँ, रवि शशि के सम तोल।।१।।

भव सागर पार करन की, जिन वच नाव अडोल ।
आतमराम समझ जिनवाणी, होऊँ शिव शिरमोर ।।२।।

जिनवाणी प्यारी लागै छै ....

जिनवाणी प्यारी लागै छै महाराज सब दुःखहारी सुखकारी।
अनन्त जनम के करम मिटत हैं, सुनत हि तनक आवाज ।।टेक।।

षट् द्रव्यन कौं कथन करत हैं, गुन परजाय समाज।
हेयाहेय बतावत सिगरे, कहत है काज अकाज।।१।।

नय-निक्षेप-परमाण वचन तैं, परमत हरत मिजाज ।
'बुधजन' मन वांछा सब पूरै, अमृत स्याद् आवाज ।।२।।

वस्तु तत्त्व दर्शाती जग में ....

वस्तुतत्त्व दर्शाती जग में, जय जिनवाणी माता ।
ज्ञानीजन यों करे स्तुति भक्तिभाव उमगाता ।।टेक।।

मिथ्यामति को नाश किया है जय जिनवाणी माता।
सम्यक् दीप जलाने वाली है जिनवाणी माता।।१।।

आपा पर का भेद कराती है जिनवाणी माता ।
शुद्धातम अनुभूति कराती है जिनवाणी माता ।।२।।

मुक्ति मार्ग दिखावन हारी जय जिनवाणी माता।
सोये भव्य जगाने वाली है जिनवाणी माता।।३।।

स्वानुभूति से झरती उर में है जिनवाणी माता ।
ज्ञानामृत का पान कराती है जिनवाणी माता ।।४।।

निज से निज में थिर हो जाऊँ हे जिनवाणी माता ।
निज में ही पंचमगति पाऊँ हे जिनवाणी माता ।।५।।

हे मात ! करुणा कर मुझे ....

हे मात ! करुणा कर मुझे अब गोद में ले प्यार दे ।
कह सकूँ मैं माँ तुम्हें ऐसा मुझे अधिकार दे ।।टेक।।

रुदन मेरा बन्द हो, ऐसा सुभग उपहार दे।
मग्न हो गाया करूँ, ऐसी मधुर मल्हार दे।।१।।
अब मुझे पुचकार ले, माता कहाने के लिए।
मैं कर रहा हूँ वन्दना, निज बोध पाने के लिए।।२।।

संशै मिटै संशै मिटै ....

संशै मिटै संशै मिटै, जिनवाणी के सुनै मेरौ संशै मिटै ।।टेक।।

पाप पुण्य को मारग सुझे, भव भव की मेरी व्याधि कटै ।
और ठौर मोहि विकलप उपजे, यहाँ आके आनन्द डटै ।।१।।

निज-पर भेद विज्ञान प्रकाशै विषयन की मेरी चाह घटै ।
वानी सुनि नैनानंद उपजै मोह तिमिर को दोष घटै ।।२।।

श्रुत को पंचम भाव से जोड़े ....

श्रुत को पंचम भाव में जोड़े, तब श्रुत पंचमि पर्व मने ।
मिथ्यात्व तिमिर का नाश होय, सम्यक श्रुत ज्ञान की ज्योति जगे ।।टेक।

श्रुत के दो भेद द्रव्य भाव कहे, फिर बारह अंग बताये हैं।
उन सबका सार उन्हीं पाया, जो निज पर दृष्टि लगाये हैं।।१।।

हे द्वादशांग का तत्व यही, पर से हट कर निज में आना ।
रागादि विकल्प अरु भेद रहित, बस निज अभेद में रम जाना ।।२।।

पहिचाना जाना रमजाना, निश्चय रत्नत्रय ये ही है।
मुक्ति का सीधा पथ यही, सुख का सोपान भी ये ही है।।३।।

अतएव आत्मज्ञानी को भावश्रुत केवलि ग्रंथों में गाया ।
अरु द्वादशांग के पाठी को, श्रुत केवली द्रव्य से बतलाया ।।४।।

जो केवल निज आतम जाने, हो लोकालोक का वह ज्ञाता।
अरु आतम ज्ञान बिन बहु आगम पढ़ भी भव में ही दुख पाता।।५।।

अपने श्रुत ज्ञान को रे भाई, अब तक तो पर मे ही जोडा ।
अतएव भाव औदयिक हुए कर्मों से नाता नही तोडा ।।६।।

बस झडे पुराने नये बँधे नहीं अन्त अभी तक आया।
सुख की इच्छा करने पर भी, केवल दुःख ही दुःख पाया।।७।।

अतएव एक पुरुषार्थ यही, पर्यायों में मध्यस्थ बने ।
सहज ज्ञान में आ जावे तो, रागद्वेष वहाँ नहीं करे ।।८।।

ज्ञानादि गुणों का गुणी धनी, निज आतम का बहुमान करे।
सम्पूर्ण समर्पण हो अभेद को तब ही करुणा भाव पले।।९।।

आनन्दमयी शिवपद पावे, शिवपद का पंथ सु प्रकटावें ।
जिसको पाकर भवि प्राणी भी, निश्चित भवसागर तिर जावें ।।१०।।

है जिनवाणी तो निमित्त मात्र, पुरुषार्थ स्वयं को करना है।
पढ़ जिनवाणी को वाच्य आत्मा पर निज दृष्टि धरना है।।११।

आत्मन् बहुमान आत्मा का ही जिनवाणी बहुमान सही ।
निज में ही शवाश्वत लीन रहो, जिनवाणी करे पुकार यही ।।१२।।

भ्रात ! जिनवाणी सम नहिं आन ....

भ्रात! जिनवाणी सम नहिं आन जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।टेक।।

एकान्तों का नहीं ठिकाना, स्याद्वाद का लखा निशाना ।
मिटता भव-भव का अज्ञान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।१।।

केवलज्ञानी की यह वाणी, खिरे निरक्षर तदि समज्ञानी ।
सुर नर तिर्यंच सुनते आन, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।२।।

गणधर हृदय विराजी माता, ज्ञानस्वभाव सहज झलकाता ।
सुनत चिन्तत हो भेद ज्ञान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।३।।

भविजन प्रीति सहित चित धारे रविशशिसम तम को परिहारे ।
उस घट प्रगटे पूरन आन, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।४।।

मोक्षदायिका है जिनमाता, तुम पूजक सम्यक् निधि पाता ।
आत्मा अपने आश्रित जान, जान श्रुतपंचमि पर्व महान ।।५।।

माता ! अन्तर के दृग खोल ....

माता ! अन्तर के दृग खोल ।।टेक।।
श्रुतपूजक पूजन को आये पंचमि दिन सुन अति हरषाये ।
तुम सेवा विन अति दुःख पाये, करो दया अब शीघ्र देहु ।।
मुझे सम्यक् रत्न अमोल, माता अन्तर के दृग खोल ।।१।।

द्वादशांग सागर समवाणी, सम्यक् रत्न ज्योति जिमि पानी ।
भव्योत्तम को चिर सुखदानी, ज्ञानस्वरूप आप शारद माँ ।।
सम्यक् रस अब घोल, माता अन्तर के दृग खोल ।।२।।

केवलज्ञानी की तू माता गणधरादि सुत हैं विख्याता ।
स्याद्वाद युत अधिक सुहाता, साधै मोक्ष स्वरूप सहज हो ।।
तुम कुल चन्द्र अडोल, माता अन्तर के दृग खोल ।।३।।

भूल मिटा दो सुख विहँसादो, दुख ताप छिन माँहि हटा दो ।
शिवमार्ग की राह बना दो, 'नन्द' होय अपने पद से रत ।।
सहज ही करहु कलोल, माता अन्तर के दृग खोल ।।४।।

गुरूदेव आपकी वाणी का ....

गुरूदेव आपकी वाणी का मूल्यांकन कर नहीं सकते हैं ।
जो कुन्द गुरु ने वचन कहे वो ही अमृत रस झरते हैं ।।टेक।।

पढ़ लिया सुना नहीं जान सका कि जैन धर्म क्या वस्तु है ।
बस जैन जैन का नाम रटे अर्थों को नहीं समझते हैं ।।

जो तत्व आपने बतलाया अपनी हित-मित-प्रिय वाणी से ।
शुद्धात्मा की सम्यक् प्रतीति को, सम्यग्दर्शन कहते हैं ।।१।।

निज वस्तु अलौकिक बतलाई, झनकार उठी सुन श्वाँसों में ।
खिल उठे हृदय के तार-तार, हम प्रकट नहीं कर सक्ते हैं ।।

हे बार-बार प्रणाम तुम्हें, बतला रहे सच्चा ज्ञान हमें ।
पा जायें उस चिर ज्योति को, अभिलाष यही हम करते हैं ।।२।।

नमो मैं नमो मैं नमो जैनवाणी ....

नमो मैं नमो.मैं नमो जैनवाणी, सदा पाद तेरे नमो जैनवाणी
पूरौ आश वागेश्वरी जैनवाणी हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी

न जाना तुम्हे माँ मैंने कदा ही, सुयातें धरी चौरासी देही।
भयो दीन भारी न साता दिखानी हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी।।

सदा वास कीनो गति चारही में बिना तो कृपा के रहो त्रास ही मे।
कहो मात तोसों कहाँ लों कहानी हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी।।

महा मोह विध्वंसनी खड्गधारा, विषय वाटिका नासिवे कूँ तुषारा।
त्रिधा रोग की औषधि तू महानी, हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी।।

समाधानरूपा अनूपा निहारी, अनेकान्त-स्याद्वाद मुद्रा तिहारी।
तुम्ही सप्तधा द्वादशांगी बखानी हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी।।

सदा ध्यान तेरो धरैं लोग जे जे, करें पाद-पूजा भलीभाँति ते ते।
मिले तासुको मोक्ष की राजधानी, हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी।।
तिहुँलोक में एक नौका मिली है, भली-भाँति भवदधि तारन तुही है ।
सुधा धर्म धारा पिलाती है वाणी, हमें ज्ञान कैवल्य दो जैनवाणी ।।

हे द्वादशांग वाणी जय हो सदा ....

हे द्वादशांग वाणी जय हो सदा विजय हो।
निज आत्मरूप दर्शन सुख ज्ञान का उदय हो।।टेक।।

जिनदेव शास्त्र गुरु की सम्यक् प्रतीति वर्ते।
प्रतिकूलताओं में भी श्रद्धा न चल विचल हो।।१।।

तत्त्वों का होवे निर्णय फिर भेद ज्ञान द्वारा।
पर से पृथक् निजातम मम दृष्टि का विषय हो।।२।।

संयोग कर्म परिणति रागादि की न दीखे।
पर्याय शुद्ध भी ना गुणभेद भी विलय हो।।३।।

मम ज्ञान साधना से हो ज्ञानमात्र ज्ञायक।
नितज्ञेय ज्ञान ज्ञाता तीनों अभिन्न अमल हो।।४।।

मैं बाह्य में अटक कर निज को न भूल जाऊँ।
माँ ! गृहस्थपन ये छूटे मुनिधर्म का उदय हो।।५।।

निज की शरण से ही माँ कर्मों का नाश होवे।
निष्कर्म निर्विकारी ध्रुव सिद्धपद अचल हो।।६।।

माता तू दया करके.......

माता तू दया करके, कर्मों से छुड़ा लेना
इतनी सी विनय तुमसे, चरणों में जगह देना।।टेक।।

माता आज मैं भटका हूँ माया के अंधेरे में
कोई नहीं मेरा है, इस कर्म के रेले में
कोई नहीं मेरा है, तुम धीर बँधा देना

यौवन के चौराहे पर, मैं सोच रहा कब से
जाऊँ तो किधर जाऊँ, ये सोच रहा मन से
पथ भूल गया हूँ मैं, तुम राह बता देना

लाखों को उबारा है, मुझको भी उबारो तुम
मँझदार में है नैया, उसको भी तिरा दो तुम
मँझदार में अटका हूँ मुझे पार लगा देना

अखिल-जग तारन को जलयान ....

अखिल-जग तारन को जलयान
प्रकटी वीर, तुम्हारी वाणी, जग में सुधा समान।।टेक।।

अनेकान्तमय-स्यात्पद अंकित, नीति न्याय की खान
सब कुवाद का मूल नाश कर, फैलाती सत् ज्ञान

नित्य-अनित्य-अनेक-एक, इत्यादि कुवादि महान
नत मस्तक हो जाते सम्मुख, जोड़ सकल अभियान

जीव अजीव तत्व निर्णय कर, करती संशय हान
साम्यभाव-रस चखते हैं, जो करते इसका पान

ऊँच नीच औ, लघु सु दीर्घ का, भेद न कर भगवान
सबके हित की चिन्ता करती, सब पर दृष्टि समान

अन्धी श्रद्धा का विरोध कर, हरती सब अज्ञान
युक्ति-वाद का पाठ पढ़ाकर कर देती सज्ञान

ईश न जग-कर्त्ता फलदाता, स्वयं सृष्टि-निर्माण
निज-उत्थान-पतन निज-कर में करती यों सुविधान

हृदय बनाती उच्च सिखाकर, धर्म सुदया-प्रधान
जो नित समझ आदरें इसको, वे युग-वीर महान

क्या माँगू मैं नाथ तुम्ही से ......

क्या माँगू मैं नाथ तुम्ही से, क्या अब तक है नहिं पाया।
बार-बार सुर आदि देह लही, पंच परा में भटकाया ... ।।

महाभाग्य है नाथ आज तुम, दर्शन से निज को पाया।
दिव्य देशना द्वारा अब तो, आत्मज्ञान सूरज पाया ।।

नहिं पाया तो बस नहिं पाया, निज का दर्शन नहिं पाया।
मिला आज वो ज्ञान यथारथ, जो अनादि से नहिं पाया।।

बारह भावन का चिंतन अब, निजपरणति में मुस्काया।
तत्त्व ज्ञान से प्राप्त निजानन्द ही में अब जीवन पाया।।

धन्य-धन्य जिनवाणी माता, ज्ञायकरूप ....

धन्य-धन्य जिनवाणी माता, ज्ञायकरूप दिखायो है।
तीन लोक चूड़ामणि अद्‌भुत, ज्ञायकरूप दिखायो है ।।टेक।।
नव तत्वों से न्यारा आतम, शुद्ध बुद्ध शाश्वत परमातम।
नित्य निरंजन चिन्मय अनुपम, ज्ञायक रूप दिखायो है ।।१।।
अभूतार्थ व्यवहार बताया, शुद्धनय भूतीर्थ जताया।
शुद्धनय अवलम्बन लेकर, ज्ञायकरूप बतायो है ।।२।।
कर्मादिक का कथन कराया, पर न्यारा चेतन दरशाया।
आश्रय करने योग्य एक ही, ज्ञायकरूप दिखायो है ।।३।।
बाह्य आचरण सब बतलाया, पर ज्ञायक को नहीं भुलाया।
अहो लीनता योग्य सहज एक ज्ञायकरूप दिखायो है ।।४।।
जो भूले उन ही दुःख पाया, जिन ध्याया तिन शिवपद पाया।
उनकी जीवन गाथा मे भी, ज्ञायकरूप दिखायो है ।।५।।
आज सुनहरा अवसर आया, जिनवाणी उपदेश सुहाया।
श्रद्धा-भक्ति विनय सहित मैं सविनय शीस झुकायो है ।।६।।

शिवसुखदानी है जिनवाणी ....

शिवसुखदानी है जिनवाणी।
है जिनवाणी है जिनवाणी शिवसुखदानी है जिनवाणी ।।टेक।।
स्वयं स्वयं को भूल गयो है, मोह महातम छाय रह्यो है।
दूर करन सूरज जानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी ।।१।।
परभावों से भिन्न स्व आतम, ज्ञानमूर्ति शाश्वत परमातम।
द्रव्यदृष्टि तैं दरशानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी ।।२।।
जिनवाणी अभ्यास करें जे, सम्यक् तत्व प्रतीति धरें जे।
पावे निश्चय शिवरजधानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी ।।३।।
स्याद्वाद शैली अति प्यारी, वस्तुस्वरूप दिखावन हारी।
अनेकान्त मय गुणखानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी ।।४।।
शीस नमावें श्रद्धा लावें, जिनवाणी नित पढें पढावें।
सर्व दुःखों की होवे हानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी ।।५।।

करता हूँ मैं अभिनन्दन ....

करता हूँ मैं अभिनन्दन स्वीकार करो माँ
शरणागत अपने बालक का उद्धार करो माँ
हे माँ जिनवाणी ! हे माँ जिनवाणी ।।टेक।।

मिथ्यात्व वश रुल रहा हूँ अशरण संसार में
पुण्योदय से आ गया हूँ माँ के दरबार में
सम्यक् हो मेरी बुद्धि उपकार करो माँ

इस पंचम काल में तीर्थंकर दर्शन हैं नहीं
सच्चे ज्ञानी गुरु दुर्लभ मिलते कभी कहीं
अतएव मुझ निराधार की आधार तुम्ही माँ

जीवादि सात तत्त्वों का माँ मर्म बताया
स्याद्वाद अनेकान्त से निजरूप जनाया
निज रूप को लखकर मैं निज में लीन रहूँ माँ

भोगों से उदासीन निज-पर की धारूँ करुणा
सम्यक् दृढ़ श्रद्धा पूर्वक कषाय परिहरना
रत्नत्रय पथ पर चलकर शिवनारि वरूँ माँ

शरण कोई नहीं जग में ....

शरण कोई नहीं जग में शरण बस है जिनागम का
जो चाहो काज आतम का तो शरणा लो जिनागम का ।।टेक।।

जहाँ निज सत्व की चर्चा, जहाँ सब तत्त्व की बातें
जहाँ शिवलोक की कथनी, तहाँ डर है नहीं यम का

इसी से कर्म नसते हैं, इसी से भरम भजते हैं
इसी से दान धरते हैं, विरागी वन में आतम का

भला यह दाव पाया है, जिनागम हाथ आया है
अभागे दूर क्यो भागो, भला अवसर समागम का

जो करना है सो अब कर लो, बुरे कामों से अब डर लो
कहे मुलतान सुन भाई, भरोसा है न इक पल का

जिनवाणी माता शरण तिहारी आयो.....

जिनवाणी माता, शरण तिहारी आयो,
भव सागर में रुलते रुलते, तीर नही मैं पायो ....
जग असार अब तो बहु लख के, शरण तिहारी आयो।
चरण शरण मिल जावे माता, अब तो बहुत भ्रमायो।।

निज स्वरूप जानो नहिं साँचो, सो मैं बहुत भ्रमायो।
तुम से ही पायो मैं मारग, अन्य बहुत भटकायो।।

जिनने तुम्हरी शरणा लीनी, भव को कष्ट नशायो।
सच्चा सुख मेरे ही में है, ज्ञान यथारथ पायो।।

तुम्हरे सांचे मारग माही, सिद्ध अनन्ते थायो।
ऐसो पद मै भी अब पाऊँ, चरनन शीश नवायो।।

जिनवाणी साँची माँ ....

जिनवाणी साँची माँ, जिनवाणी साँची माँ।
जयवन्तो जिनवाणी, जयवन्तो जिनवाणी।।टेक।।
श्री सर्वज्ञ प्रभु की वाणी, गणधर गुरु उर माँहि समानी।
चुनि चुनि अंग रचे सुखखानी, द्वादशागमय श्री जिनवाणी।।१।।
नित्य-बोधिनी माँ जिनवाणी, स्व-पर विवेक कराती वाणी।
मिथ्या-भ्रन्ति नशाती वाणी, ज्ञायक प्रभु दर्शाती वाणी।।२।।
असदाचरण नशाती वाणी,सत्य धर्म प्रगटाती वाणी।
भवदुःख हरण पियूष समानी, भवदधि-तारक नौका जानी।।३।।
जो हित चाहो भविजन प्राणी, पढो सुनो ध्यावो जिनवाणी।
स्वानुभूति से करो प्रमाणी, शिवपथ को है यही निशानी।।४।।

सुनकर वाणी जिनवर की ....

सुनकर वाणी जिनवर की म्हारे हर्ष हिये न समाय जी ।।टेक।।

काल अनादि की तपन बुझायी, निज निधि मिलो अथाह जी
संशय भ्रम औ विपर्यय नाशा, सम्यक् बुद्धि उपजाय जी

अब निर्भय पद पायो उर में, बन्दू मन-वच-काय जी
नरभव सफल भयो अब मेरा, 'बुधजन' भेटत पाय जी

माता ! जिनवाणी सुखकार ....

माता जिनवाणी सुखकार, ते शिवमग दर्शानेवाली।।टेक।।

द्वादश अंग भरे भण्डार, साँची स्याद्वाद तलवार
हो अनेकान्त गुणधार, मिथ्या मान गलानेवाली

यद्यपि आप अनादि अनंत, उपजत विनशत भाखी सत
लाखों वर्ष रही लोपंत, आतम कलिमल हरनेवाली

पायो केवल प्रभु महावीर, तब प्रगटी जग में गंभीर
जैसे मेघ ध्वनी की भीर, या रूपक तैं आनेवाली

ज्यों ज्यों घटी अवस्था काय लागी, जग जीवन के हितकाज
तब धरसेनाचारजराय, कीनी हित दरसानेवाली

दो शिष्यों को दिया ज्ञान, उन लिखि लिपि बनाई आन
तब भई अक्षरवती सुजान, ग्रन्थों में बतलाने वाली

फिर भये श्रेष्ठ मुनी सुज्ञान तिन, निज निज भाषा में आन
रचिरचि रुचितैं लिखी प्रमाण, जिन मारग दरसाने वाली

भाष्य अनुभाष्य भये तैयार, अरु अनुवादन की वोछार
तेरो तहू न पायों पार, लोकालोक बतानेवाली

'कुंजी' बात रहो जैवन्त, तुम गही हों ही साधु निरग्रन्थ
जग से कीने पार अनन्त, दूरमति दूर भगाने वाली

जैन वानी है जगत हितकारनी ....

जैन वानी है जगत हितकारनी, शान्ति सुख विस्तारनी दुखहारिनी।।टेक।
तत्त्व इसका है निराला स्याद्वाद ये है वस्तु स्वरूप की निरधारिनी।
कर्म का सिद्धान्त इसका है प्रबल, स्वावलम्बन पाठ की सुप्रचारिणी।।१।।
है अहिंसा तत्त्व भी इसका विशाल, कोड़ी कुञ्जर सर्व रक्षा कारिनी।
चोर अंचन से निरंजन कर दिये, दुष्ट पापी जन अधम उद्धारनी।।२।।
है अचम्भा कौन जो नरक्षर गये, यह तो है सिंहादि की अघटारनी।
है शरण 'शिवराम' तेरी शारदे, पारकर दुख भवसिंधु से भवतारनी।।३।।

जिनवाणी सुन उपदेशी ....

जिनवाणी सुन उपदेशी खोल ले अखियाँ निज मन की ।।टेक।।

पुण्य उदय जब आया है, मनुष जनम तब पाया है
छोड़ दे बातें विषयन की, खोल ले अखियाँ निज मन की

मात-सुना-सुत-नारी हैं, जग मतलब की यारी है
झूठी ममता परिजन की, खोल ले अखियाँ निज मन की

शान्ती आतम ज्योति जगा, मोह-तिमिर को दूर भगा
शरण गहो प्रभू चरणन की, खोल ले अखियाँ निज मन की

मैं सेवक हूँ थारो......

मैं सेवक हूँ थारो, हे! जिनवाणी माता ।
करो भवोदधि पार थे, भवहरणीं माता... ।।

महाभाग्य स थारो मैं हूं ज्ञान लखायो ।
काल अनन्तो भ्रम्यो नहिं कहिं सुख मैं पायो ।
लेलो अब थे शरणा मैं, भव दुःख हर माता... ।।

मैं टावर हूं थारो मेरी अरज सुनीजे ।
अब तो मैं नहिं भ्रमूं चर्तुगति ऐसो कीजे ।
आतम रूप लखूं ऐसो वर दीजे माता... ।।

काललब्धि मैं पायो, स्व-पर विवेक जतायो ।
थार बिना नहिं इस जग कहिं ज्ञान मैं पायो ।
अब जाऊँ तज राग-द्वेष सिद्धालय माता... ।।

धन्य धन्य जिन धर्म हमारो......

धन्य धन्य जिन धर्म हमारो भवसागर से तारण हारो
धन्य जिनेश्वर धन्य जिनागम धन्य धन्य ध्रुव धाम हमारो
देव-शास्त्र-गुरु तीन रतन पा धन्य बनो नर जन्म हमारो
वीतराग सर्वज्ञ देव लखि सम्यक् दर्शन उर में धारो
द्वादशांग जिनवाणि हृदय धरि भेद-ज्ञान कला विस्तारो
परम दिगम्बर मुनिवर वन्दूँ सम्यक् चारित्र रत्न हमारो

प्रभु वीर की वाणी ....

प्रभु वीर की वाणी, शिव मग दानी, है आत्म कल्याणी ।।टेक।।

कर्मों के कारण चौरासी के, चक्कर खूब लगाते हैं
सौभाग्य जगे मानुष भव में, हम जन्म तभी तो पाते है
पाकर धन वभव इस जग में क्यों विषयों में मन भरमाता है
और भूल गया यह सत्य आज, तन धन कुछ साथ न जाता है

जब समवशरण में वीर प्रभुजी, रह वाणी वर्षाते हैं
भूले भटके सब जीव जगत के, आतम की सुधि पाते हैं
और मोक्षमार्ग पर लगते लाखों, ज्ञान कला प्रगटाती है
करें स्वयं कल्याण सभी को, मुक्ति मार्ग दिखलाती है

यह द्वादशांग वाणी प्रभु की, तत्वों की बात बताती है
और अनेकान्त की पद्धति से निज सत्य स्वरूप जताती है
जो करता इसका अनुसरण,रह उसमे ज्ञान जगाती है
मिथ्यात्व कालिमा को क्षय कर, सम्यक् दर्शन प्रगटाती है

खुद जियो और जीने दो का, यह वाणी मर्म बताती है
और दया अहिसा शील परिग्रह, त्याग धर्म बतलाती है
मैत्री प्रमोद के भावो को, यह प्रतिदिन खूब बढ़ाती है
और कर्म बन्ध से बचने का, यह सच्चा मार्ग बताती है

हम अगर वीर वाणी पै श्रद्धा करें . . . .

हम अगर वीर वाणी पै श्रद्धा करे, ज्ञान के दीप जलते चले जायेगे।।टेक।।
गर जले ज्ञान के दीप हृदय में तो, मार्ग संयम के खुलते चले जायेगे ।।१।।
हमने पाया है मुश्किल से यह नर का तन, देव तरसे जिसे ऐसा पाया रतन ।
गर इसे हमने विषयों में ही खो दिया, भूल पर अपनी हम खुद पछतायेंगे ।।२।।
अब मिलाहै ये जिनधर्म जिनवरशरण, गुरु मिलेहै दिगम्बर औ अमृत वचन ।
मोह ममता से थोड़ा भर हम हटें, मार्ग कल्याण के खुद ही खुल जायेंगे ।।३।।
जब नही सच्ची श्रद्धा तो क्या अर्थ है, इस बिना ज्ञान और आचरण व्यर्थ है ।
हम पुजारी बने वीतरागी के तो, कर्म बंधन भी कटते चले जायेंगे ।।४।।

अकेला ही हूँ मैं......

अकेला ही हूँ मैं, करम सब आये सिमटिकें।
लिया है मैं तेरा, शरण अब माता ! सटकिकें ।।टेक।।
भ्रमावत है मोकों, करम दुख देता जनम का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता ! भ्रमन का ।।१।।
दुखी हुआ भारी, भ्रमत फिरता हूँ जगत में।
सहा जाता नाही, अकल घबरानी भ्रमन में ।।२।।
करूँ क्या माँ मोरी, चलत वश नाहीं मिटन का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता ! भ्रमन का ।।३।।
सुनो माता ! मोरी, अरज करता हूँ दरद में।
दुखी जानो मोको, डरप कर आयो शरन में ।।४।।
कृपा ऐसी कीजे, दरद मिट जावै मरन का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता! भ्रमन का ।।५।।
पिलावै जो मोकों, सुबुधि कर प्याला अमृत का।
मिटावै जो मेरा, सरव दुख सारा फिरन का ।।६।।
पड़ूँ पाँवों तेरी, हरो दुख सारा फिकर का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता! भ्रमन का ।।७।।

चरणों में आ पड़ा हूँ......

चरणों मे आ पड़ा हूँ, हे द्वादशाग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ।।टेक।।
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा-पराया भासा, हो भानु के समानी ।।१।।
षडद्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी ।।२।।
रिपु चार मेरे मग में, जन्जीर डाले पग में।
ठाड़े हैं मोक्षमग में, तकरार मोसों ठानी ।।३।।
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे 'सुदर्शन' साता, नहिं जग में तेरी सानी ।।४।।

नित पीज्यौ धी धारी

नित पीज्यौ धी धारी, जिनवाणि सुधासम जान के ।।टेक।।
वीर मुखारविन्द तैं प्रगटी, जन्म-जरा-भय टारी।
गौतमादि गुरु-उर घट व्यापी, परम सुरुचि करतारी ।।१।।
सलिल समान कलिल मल गंजन, बुधमन रंजन हारी।
भंजन विभ्रम धूलि प्रभंजन, मिथ्या जलद निवारी ।।२।।
कल्यानक तरु उपवन धरिनी, तरनी भवजल तारी।
बन्ध विदारन पैनी छैनी, मुक्ति नसैनी सारी ।।३।।
स्व-पर स्वरूप प्रकाशन को यह, भानुकला अविकारी।
मुनिमन-कुमुदिनि मोदन शशि-भा, शमसुख मनसुवारी ।।४।।
जाके सेवत बेवत निजपद, नसत अविद्या सारी।
तीनलोक पति पूजत जाको, जान त्रिजग हितकारी ।।५।।
कोटि जीभ सौं महिमा जाकी, कहि न सके मति धारी।
'दौल' अल्पमति केम कहै यह, अधम उधारन हारी ।।६।।

केवलि-कन्ये वाङ्गमय गंगे

केवलि-कन्ये वाङ्गमय गंगे, जगदम्बे अघ नाश हमारे।
सत्य स्वरूपे मंगल रूपे, मन-मन्दिर में तिष्ठ हमारे ।।टेक।।
जम्बूस्वामी गौतम गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे।
जग तैं स्वयं पार ह्वै करके, दे उपदेश बहुत जन तारे ।।१।।
कुन्दकुन्द अकलंकदेव अरु, विद्यानन्दि आदि मुनि सारे।
तव कुल-कुमुद चन्द्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे ।।२।।
तूने उत्तमतत्त्व प्रकाशे, जग के भ्रम सब क्षय कर डारे।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि-शशि छिपते नित्य बिचारे ।।३।।
भव-भय पीड़ित व्यथित-चित्त जन, जब जो आये शरण तिहारे।
छिन भर में उनके तब तुमने, करुणा करि संकट सब टारे ।।४।।
जब तक विषय-कषाय नसै नहिं, कर्म-शत्रु नहिं जाय निवारे।
तब तक 'ज्ञानानन्द' रहैं नित, सब जीवन तैं समता धारे ।।५।।

धन्य धन्य जिनवाणी माता.....

धन्य धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आए।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाए।।टेक।।
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है।
हमारी नैया खेता है।।
वस्तु कथञ्चित् नित्य-अनित्य, अनेकान्तमय शोभे।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टय मय शोभे।।
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है।
जगत का फेरा मिटता है।।१।।
नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्तिपथ, शुभ व्यवहार उचरती।।
माता तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है।
महा मिथ्यातम धुलता है।।२।।
तेरे अंचल में चेतन की, दिव्यचेतना पाते।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसातें।।
माता तेरी वर्षा से, निजानन्द झरना झरता है।
अनुपमानन्द उछलता है।।३।।
नव-तत्त्वों में छिपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक घन का, दर्शन सदा कराती।।
माता तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है।
सम्यग्दर्शन होता है।।४।।

महिमा है अगम जिनागम की.....

महिमा है अगम जिनागम की ।।टेक।।
जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की ।।१।।
रागादिक दु:खकारन जाने, त्याग दीनी बुद्धि भ्रम की ।
ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर, रुचि बाढ़ी पुनि शमदम की ।।२।।
कर्मबन्ध की भई निरजरा, कारण परम्पराक्रम की ।
'भागचन्द' शिवलालच लागो, पहुँच नहीं है जहाँ यम की ।।३।।

सर्वांगी 'सन्मति' श्रुतधारा..... समयसार स्तुति

सर्वांगी 'सन्मति' श्रुतधारा, गुरु गौतम ने मुख धारी।
थी करुणा हों भाव-मरण बिन, तृषित तप्त भवि संसारी।।
हृदय शुद्ध मुनि कुन्दकुन्द ने, वह संजीवन दया विचार।
घट 'प्रवचन' 'पंचास्ति' 'समय' मे, ली लख शोषित अमृत धार।।१।।
कुन्द रचित पद सार्थक कर, मुनि 'अमृत' ने अमृत सीचा।
ग्रन्थराज त्रय तुमने अद्भुत, मृदुरस ब्रह्म-भाव सीचा।।२।।
वीर वाक्य यह अहो, नितारें साम्य सुधारस।
भर हृदयान्जलि पिये, मुमुक्षु वमे विषय-विष।।
गहरी-मूर्छा प्रबल-मोह, दुस्तर-मल उतरे।
तज विभाव हो स्वमुख परिणति ले निज लहरे।।३।।
यह है निश्चय ग्रन्थ, भग सयोगी भेदे।
अरु है प्रज्ञा-शस्त्र उदय मति संधी छेदे।।
साधक साथी जगत सूर्य, सदेश वीर का।
क्लान्त जगत विश्राम-स्थान, सतपथ सुधीर का।।४।।
सुने, समझ ले, रुचे, जगत रुचि से अलसावे।
पड़े बधरस शिथिल हृदय ज्ञानी का पावे।।५।।
कुन्दन पत्र बना लिखे, अक्षर रत्न तथापि।
कुन्द सूत्र के मूल्य का, अकन हो न कदापि।।६।।

धन्य-धन्य है घड़ी आज की.....

धन्य-धन्य है घडी आज की, जिन-धुनि श्रवन परी
तत्त्व-प्रतीति भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी।।टेक।।
जड तै भिन्न लखी चिन्मूरति, चेतन स्वरस भरी।
अहकार ममकार बुद्धि पुनि, पर में सब परिहरी।।१।।
पाप-पुण्य विधि बन्ध अवस्था, भासी अति दुःख भरी।
वीतराग-विज्ञान भावमय, परिणति अति विस्तरी।।२।।
चाह-दाह विनसी बरसी पुनि, समता मेघ झरी।
बाढी प्रीति निराकुल पद सो. 'भागचन्द' हमरी।।३।।

भव तारण शिव-सुख कारण.....

भव तारण शिव-सुख कारण, जग में जगती जिनवाणी ।।टेक।।
स्याद्वाद की कथनीवाली सप्तभंग जानी।
सप्त-तत्त्व निर्णय में तत्पर, नव-पदार्थ दानी ।।१।।
मोह-तिमिर अंधन को जो, है ज्ञान शलाकानी।
मिथ्यातप तप-तन का जो, है मलियागिर खानी ।।२।।
इस पंचम कलिकाल माँहि, जो हैं केवली समानी।
धर्म-कुधर्म, कुदेव-देव, गुरु-कुगुरु बतानी ।।३।।
इन्द्र धरणेन्द्र खगेन्द्रादिक, पद की है निसानी।
विषयादिक विष विध्वस कर, सेव सुख सुधा पानी ।।४।।
कुमग गमन करता भविजन कूँ, सुद्ध मग जितानी।
जड़-पुद्गल रत 'बुधमहाचन्द' कूँ, निज-पर समझानी ।।५।।

म्हांके घट जिन धुनि अब प्रगटी.....

म्हाकै घट जिन धुनि अब प्रगटी ।।टेक।।
जागृत दशा भई अब मेरी, सुप्त दशा विघटी।
जग रचना दीसत अब मोकों, जैसी रहट घटी ।।१।।
विभ्रम तिमिर-हरन निज दृग की, जैसी अञ्जनवटी।
तातैं स्वानुभूति प्रापति तैं, पर-परणति सब हटी ।।२।।
ताके बिन जो अवगम चाहै, सो तो शठ कपटी।
तातै 'भागचन्द' निशिवासर, इक ताही को रटी ।।३।।

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है.....

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है ।।टेक।।
जीव कर्म के जुदा करन को, यह ही पैनी छैनी है।
जो जिनवाणी नित अभ्यासै, सो ही सच्चा जैनी है ।।१।।
जो जिनवाणी उर न धरत है, सैनी हो के भी असैनी है।
पढ़ो सुनो ध्यावो जिनवाणी, यदि सुख शांति लेनी है ।।२।।

यदि भवसागर दुख से भय है.....

यदि भवसागर दुख से भय है, तो तज दो परभाव को।
करो चिंतवन शुद्धातम का, पालो सहज स्वभाव को।।टेक।।
नर पशु देव नरक गतियों में, बीता कितना काल है।
फिर भी समझ नहीं पाये, यह भव- वन अति विकराल है।
तजो शुभाशुभ भाव सभी शुद्धोपयोगी ढाल है।
किया तत्व निर्णय जिसने, वो जिनवाणी का लाल है।
द्रव्य-दृष्टि से समकिती बन, करो दूर परभाव को।।१।।
पाप-पुण्य दोनों जग सृष्टा, इसमें दुख भरपूर है।
इसकी उलझन सुलझ न पाये, तो फिर सुख अति दूर है।
पर विभाव को नष्ट करे जो, वो ही सच्चा सूर है।
समकित औषधि से अच्छा, भर दो अनादि घाव को।।२।।
बीती रात प्रभात हो गया, जिनवाणी का उदय हुआ।
जिसने दिव्यध्वनि हृदयंगम की, उसके उर में सूर्य जगा।
आत्मज्ञान का देख उजाला, भाग रहे परभाव लजा।
चिदानंद चैतन्य आत्मा का अदर मे नाद जगा।
समकित की सुगंध महकी है, देखो ज्ञायकभाव को।।३।।

जिनकी वानी अब मनमानी.....

जिनकी वानी अब मनमानी ।।टेक।।
जाके सुनत मिटत सब दुविधा, प्रगटत निज निधि छानी ।।१।।
तीर्थंकरादि महापुरुषनि की, जामें कथा सुहानी ।
प्रथम वेद यह भेद जास कौ, सुनत होय अघ हानी ।।२।।
जिनकी लोक अलोक काल जुत च्यारौं गति सहनानी ।
दुतिय वेद इह भेद सुनत होय, मूरख हू सरधानी ।।३।।
मुनि श्रावक आचार बतावत, तृतीय वेद यह ठानी ।
जीव अजीवादिक तत्वनि की, चतुरथ वेद कहानी ।।४।।
ग्रन्थ बंध करि राखी जिन तें, धन्य धन्य गुरु ध्यानी ।
जाके पढत सुनत कछु समझत, 'जगतराम' से प्रानी ।।५।।

सांची तो गंगा यह वीतरागवाणी......

सांची तो गंगा यह वीतरागवाणी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी।।टेक।।
जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी।
जहाँ नहीं संशयादि पङ्क की निशानी।।१।।
सप्तभङ्ग जहँ तरंग उछलत सुखदानी।
सन्तचित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी।।२।।
जाके अवगाहन तै शुद्ध होय प्रानी।
'भागचन्द' निहचै घट माहिं या प्रमानी।।३।।

वानी सुनि मन कैं हरष अपार......

वानी सुनि मन कैं हरष अपार, चित कैं हरष अपार।।टेक।।
ज्यौं तिरषातुर अमृत पीवत, चातक अंबुद धार।।१।।
मिथ्या तिमिर गयो ततखिन हो, संशय भरम निवार।
तत्त्वारथ अपने उर दरस्यौ, जानि लियो निज सार।।२।।
इन्द नरिंद फनिंद पदीधर, दीसत रंक लगार।
ऐसा आनद 'बुधजन' के उर, उपज्यौ अपरपार।।३।।

जान के सुज्ञानी जैनवानी की सरधा लाइये......

जान के सुज्ञानी जैनवानी की सरधा लाइये।।टेक।।
जा बिन काल अनन्ते भ्रमता, सुख न मिलै कहूँ प्रानी।
स्व-पर विवेक अखण्ड मिलत है, जाही के सरधानी।।१।।
अखिल प्रमान सिद्ध अविरुद्धत, स्यात्पद शुद्ध निशानी।
'भागचन्द' सत्यारथ जानी, परम धरम रजधानी।।२।।

जिन स्वानुभूति से खिरी......

जिन स्वानुभूति से खिरी, मम स्वानुभूति मधि गिरी।।टेक।।
श्री विमल धारा जैन श्रुत, आनन्द अमृत से भरी।।१।।
समता प्रवाह वहावती, रागादि विकलप तोरि के।।२।।
माँ सरस्वती प्रति भाव वन्दन, दृष्टि निज में जोड़ि के।।३।।

अमृतझर झुरि-झुरि आवे......

अमृतझर झुरि-झुरि आवे जिनवाणी ।।टेक।।
द्वादशांग बादल ह्वै उमड़े, ज्ञान अमृत रसखानी ।।१।।
स्याद्वाद बिजुरी अति चमके, शुभ पदार्थ प्रगटानी ।
दिव्यध्वनी गंभीर गरज है, श्रवण सुनत सुखदानी ।।२।।
भव्यजीव-मन भूमि मनोहर, पाप कूड़कर हानी ।
धर्म बीज तहाँ ऊगत नीको, मुक्ति महाफल ठानी ।।३।।
ऐसी अमृतझर अति शीतल, मिथ्या तपत भुजानी ।
'बुधमहाचन्द' इसी झर भीतर, मग्न सफल सो ही जानी ।।४।।

जिनवानी के सुनै सौं मिथ्यात मिटै......

जिनवानी के सुनै सौं मिथ्यात मिटै मिथ्यात मिटै समकित प्रगटै ।।टेक।।
जैसैं प्रात होत रवि ऊगत, रैन तिमिर सब तुरत फटै ।।१।।
अनादिकाल की भूलि मिटावै, अपनी निधि घट- मैं उघटै ।
त्याग विभाव सुभाव सुधारै, अनुभव करतां करम कटै ।।२।।
और काम तजि सेवो वाकौं, या बिन नाहिं अज्ञान घटै ।
'बुधजन' या भव परभव मांही, बाकी हुंडी तुरत पटै ।।३।।

मेघ घटा सम श्री जिनवानी......

मेघ घटा सम श्री जिनवानी ।
स्यात्पद चपला चमकत जामें, बरसत ज्ञान सुपानी ।।टेक।।
धरमसस्य जातैं बहु बाढ़ै, शिव आनन्द फलदानी ।।१।।
मोहन धूल दबी सब यातैं, क्रोधानल सुबुझानी ।
'भागचन्द' बुधजन केकीकुल, लखि हरखै चितज्ञानी ।।२।।

हे जिनवाणी माता तुमको......

हे जिनवाणी माता, तुमको लाखों प्रणाम ।
शिवसुखदानी माता, तुमको लाखों प्रणाम ।।टेक।।
तू वस्तुस्वरूप बतावे, अरु सकल विरोध मिटावे ।
स्याद्वाद विख्याता, तुमको लाखों प्रणाम ।।१।।
तू करे ज्ञान का मण्डन, मिथ्यात्व कुमारग खण्डन
हे तीन जगत की माता,तुमको लाखों प्रणाम ।।२।।
तू लोकालोक प्रकासे, चर-अचर पदार्थ विकासे
हे विश्व-तत्त्व की ज्ञाता,तुमको लाखों प्रणाम ।।३।।
तू स्व-पर स्वरूप सुझावे, सिद्धान्त का मर्म बतावे
तू मेटे सर्व असाता, तुमको लाखों प्रणाम ।।४।।
शुद्धातम तत्त्व दिखावे, रत्नत्रय पथ प्रगटावे
निज आनन्द अमृत दाता, तुमको लाखों प्रणाम ।।५।।
हे मात ! कृपा अब कीजे, परभाव सकल हर लीजे
'शिवराम' सदा गुण गाता, तुमको लाखों प्रणाम ।।६।।

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को......

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को ।
आपा-पर भासवे को, भानु-सी बखानी है ।।टेक।।
छहों द्रव्य जानवे को, बंध विधि भानवे को ।
स्व-पर पिछानवे को, परम प्रमानी है ।।१।।
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को ।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है ।।२।।
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को ।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है ।।३।।
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन ।
जो तेरी शरना गहे, सो पावै सुख चैन ।।४।।
जा वानी के ज्ञानतें, सूझै लोकालोक ।
सो वानी मस्तक नवों, सदा देत हों धोक ।।५।।

स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो......

स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो, तुम निज पर की पहिचान करो ।।टेक।।
सम्यक्त्व करो, मिथ्यात्व हरो, तुम भक्त नहीं भगवान बनो ।।१।।
तुम जिनवाणी का मनन करो, सत पाठ तुम्हें सिखलाती है ।
तुम नरकगति से नाहि डरो, तुम स्वर्गों की मत चाह करो ।।२।।
तुम वीतराग परिणाम करो, निज आतम का कल्याण करो ।
तुम सत्गुरू की पहिचान करो, तुम निजस्वभाव के परकासी ।।३।।
तुम अमल अखंडित सुखराशि, ज्ञायकस्वरूप निज घरवासी ।
तुम स्वय सिद्ध पूरणमासी तुम मे ही है केवल राशी ।।४।।
तुम निज स्वभाव के परकासी, तुम सद्गुरु की पहिचान करो

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में......

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में, होकर मुझ रूप समा जाओ ।
शान्त शुद्ध ध्रुव ज्ञायक प्रभु की, महिमा प्रतिक्षण दरशाओ ।।टेक।।
चैतन्य नाथ की बात सुने से, अद्भुत शाँति मिलती है ।
मानो निज वैभव प्रकट हुआ, सब आधि व्याधि टलती है ।।१।।
ज्ञायक महिमा सुनते सुनते, बस ज्ञायक मय जीवन होवे ।
निज ज्ञायक में ही रम जाऊँ, सुनने का भाव विलय होवे ।।२।।
है माँ तेरा उपकार यही, प्रभु सम प्रभु रूप दिखाया है ।
चैतन्य रूप की बोधक माँ, मैं सविनय शीश नवाया है ।।३।।

सुन जिन बैन, श्रवन सुख पायो ..

सुन जिन बैन, श्रवन सुख पायो ।।टेक।।
नस्यौ तत्त्व दुर अभिनिवेष-तम, स्याद उजास कहायो ।
चिर बिसरयो लहयो आतम वैन श्रवन सुख पायो ।।१।।
दहयो अनादि असंजम दवतैं, लहि व्रत सुधा सिरायौ ।
धीर धरी मन जीतन मैन श्रवन सुख पायौ ।।२।।
भगे विभाव अभाव सकल अब, सकल रूप चित लायौ ।
'दौल' लहयो अब अविचल जैन, श्रवन सुख पायो ।।३।।

भवदधि-तारक नवका जगमाहीं जिनवान.....

भवदधि-तारक नवका जगमाहीं जिनवान ।।टेक।।
नय प्रमान पतवारी जाके, खेवट आतम ध्यान ।।१।।
मन वच तन सुध जे भवि धारत, ते पहुंचत शिवथान ।
परत अथाह मिथ्यात भँवर ते, जे नहिं गहत अजान ।।२।।
बिन अक्षर जिनमुख तैं निकसी, परी वरनजुत कान ।
हितदायक 'बुधजन' कों गनधर, गूंथे ग्रन्थ महान ।।३।।

जिनबैन सुनत मोरी भूल भगी .....

जिनबैन सुनत मोरी भूल भगी ।।टेक।।
कर्मस्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानन सुमति जगी ।।१।।
निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष तुष मैल पगी ।
स्यादवाद-धुनि निर्मल-जलतैं, विमल भई समभाव लगी ।।२।।
संशय मोह भरमता विघटी, प्रगटी आतम सौंज सगी ।
'दौल' अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन हौंस उमगी ।।३।।

जिनवाणी मोक्ष-नसैनी है.....

जिनवाणी मोक्ष-नसैनी है ।।टेक।।
यह भवदधि से पार उतारे, परभव को सुख दानी ।
मिथ्यातिनि के मनहिं न भावे, भविजन के मन मानी ।।१।।
तत्त्व-कुतत्त्व की खबर पड़े जब, जुदे-जुदे कर मानी ।
'बाजूराय' भजो जिनवाणी, सुख दानी दु:ख हानी ।।२।।

थांकी तो वानी में हो....

थाकी तो वानी में हो, निज स्व-पर प्रकाशक ज्ञान ।।टेक।।
एकीभाव भये जड़ चेतन, तिनकी करत पिछान ।
सकल पदार्थ प्रकाशत जामें, मुकुर तुल्य अमलान ।।१।।
जग चूड़ामनि शिव भये ते ही, तिन कीनों सरधान ।
'भागचन्द' बुधजन ताही को, निशदिन करत बखान ।।२।।

सीमंधर मुख से फुलवा खिरे.....

सीमंधर मुख से फुलवा खिरे, जाकी कुन्दकुन्द गूँथे माल रे ।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।टेक।।
वाणी प्रभू मन लागे भली, जिसमें सार समय शिरताज रे ।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।१।।
गूँथा पाहुड़ अरु गूँथा पंचास्ति, गूँथा जो प्रवचनसार रे ।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।२।।
गूँथा नियमसार गूँथा रयणसार, गूँथा समय का सार रे ।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।३।।
स्याद्वादरूपी सुगंधी भरा जो, जिनजी का ओंकार नाद रे ।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।४।।
वन्दूं जिनेश्वर, वन्दूं मैं कुन्दकुन्द, वन्दूं यह ओंकार नाद रे ।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।५।।
हृदय रहो मेरे भावे रहो, मेरे ध्यान रहो, जिनबैन रे ।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।६।।
जिनेश्वरदेव की वाणी की गूँज, मेरे गूँजती रहो दिन रात रे ।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमंधर मुख से फुलवा खिरे ।।७।।

जिनवाणी जग मैय्या....

जिनवाणी जग मैय्या जनम-दुख मेट दो ।।टेक।।
बहुत दिनों से भटक रहा हूँ ,ज्ञान बिना हे मैय्या ! ।
निर्मल ज्ञान प्रदान सु कर दो, तू ही सच्ची मैय्या ।।१।।
गुणस्थानों का अनुभव हमको, हो जावै जगमैय्या ।
चढ़ैं उन्हीं पर क्रम से फिर, हम होवें कर्म खिपैया ।।२।।
मेट हमारा जन्म-मरण दुख, इतनी विनती मैय्या ।
तुम को शीश 'त्रिलोकी' नमावे तू ही सच्ची मैया ।।३।।
वस्तु एक अनेक रूप है, अनुभव सबका न्यारा ।
हर विवाद का हल हो सकता, स्याद्वाद के द्वारा ।।४।।

जिनवाणी माता दर्शन की.....

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ ।।टेक।।
प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधरजी को ध्याऊँ ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ ।।१।।
योनि लाख चौरासी माँही, घोर महादुःख पायो ।
तेरी महिमा सुनकर माता ! शरण तुम्हारी आयो ।।२।।
जानै ताकौ शरणों लीनों, अष्ट कर्म क्षय कीनों ।
जामन-मरण मेट के माता ! मोक्ष महापद दीनों ।।३।।
ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता ! ।
द्वादशांग चौदह पूरव कौ, कर दो हमको ज्ञाता ।।४।।

हमें निजधर्म पर चलना.....

हमें निज धर्म पर चलना, सिखाती रोज जिनवाणी ।
सदा शुभ आचरण करना, सिखाती रोज जिनवाणी ।।टेक।।
चौरासी लाख योनि में, भटक नर जन्म पाया है ।
निधि निज भूल नहिं पावें, सिखाती रोज जिनवाणी ।।१।।
ग्रहण करना नहीं करना, कि क्या निज क्या पराया है ।
भेद-विज्ञान इसका भी, सिखाती रोज जिनवाणी ।।२।।
धनिक निर्धन स्वजन परिजन, कि ज्ञानी या अज्ञानी हैं ।
भेद तज मार्ग सुखकारी, सिखाती रोज जिनवाणी ।।३।।
जिन्हें संसार सागर से, उतर भव पार जाना है ।
उन्हें सुख के किनारे पर, लगाती रोज जिनवाणी ।।४।।
सत्य सुख सार पा इसमें, पतित तम पार जाते हैं ।
शरण 'दोषी' यही तेरी, है तारन हार जिनवाणी ।।५।।
हमें संसार सागर में, रुलाते कर्म हैं आठों ।
करें किस भाँति इनका क्षय, सिखाती रोज जिनवाणी ।।६।।
करें जो भव्य मन निर्मल, पठन कर शीघ्र तिर जावे ।
मार्ग शिवपुर में जाने का, दिखाती रोज जिनवाणी ।।७।।

गावो कुन्द वचन अनमोल.....

गावो कुन्द वचन अनमोल ।।टेक।।

पर घर में क्यों करे वसेरा, वृथा कहै तू तेरा मेरा।
राग-द्वेष तजकर निरवेरा सिद्धस्वरूपी अपने को लख ।।
मिथ्या ग्रंथि खोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।१।।
धनी गुमानी हो मदमाता, बहिरातम हो पाप कमाता।
सिर पर काल खबर नहि लाता,अजहूँ छाँड़िभज आत्मधरम को ।।
है शाश्वत वे मोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।२।।
पाप करम कर माने साता, विषय वासना मे लिपटाता।
मिथ्यादर्शन के रंग माता ज्ञानानंद मई हो ज्ञाता ।।
सम स्वभाव रस घोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।३।।
राग भाव लख आनन्द माने, द्वेष भाव दुख मय पहिचाने।
नरभव पा हितकर सयाने वीतराग छवि नेक निरखकर ।।
घट के पट अब खोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।४।।
चिदाकार मय ब्रह्म सुहाता, विश्व प्रकाशक गुण प्रगटाता।
स्वस्थ होय लख क्यों भटकाता या घट में जगमगा रहा नित।।
देख 'नद' जय बोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।५।।

धन्य धन्य वीतराग वाणी.....

धन्य धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी ।
चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग मे कहानी ।।टेक।।
उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप ।
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग मे कहानी ।।१।।
नित्य-अनित्य अरु एक-अनेक, वस्तु कथंचित् भेद-अभेद ।
अनेकान्तरूपा बखानी, अमर तेरी जग मे कहानी ।।२।।
भाव शुभाशुभ बधस्वरूप, शुद्ध चिदानंदमय मुक्तिरूप ।
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग मे कहानी ।।३।।
चिदानद चैतन्य आनंद धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम राम ।
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी ।।४।।

जिनवाणी है चेतन हीरा जड़ी......

जिनवाणी है चेतन हीरा जड़ी, जिनवाणी है रत्नत्रय से मड़ी ।।टेक।।
सप्त तत्त्व दरशावन हारी, जिनवाणी है अद्‌भुत हीरा जड़ी ।
जिनवाणी निज-निधि को बतावै, अनुपम सुखमय गुण की भरी ।।१।।
भवसागर से पार करन को, जिनवाणी हमारी नौका बड़ी ।
जो ना सुनत है यह जिनवाणी, द्वार पै ताही के विपद खड़ी ।।२।।
जो जो सुनत है यह जिनवाणी, झड़ती है ताके सुख की झड़ी ।
जो जो सुनत है यह जिनवाणी, शान्ति मिलत ताहि वाहि घड़ी ।।३।।
वाणी-कथित निजतत्त्व जो ध्यावे, मोक्ष मिलत वाहि ताहि घड़ी ।
माता तोसौं अरज करत हूँ, काटो हमारी कर्मन की कड़ी ।।४।।

हिल मिल सुनिये जिनवाणी ....

हिल मिल सुनिये जिनवाणी ।।टेक।।

काम काज जंजाल जगत के, इनसे नहिं निवरत प्राणी
क्रोध मान माया लोभादिक, ये आतम को दुखदानी

इनको त्याग सुनो जिनवाणी, सफल तभी नरगति पानी
नर भव पाय गँवाय वृथा तुम, क्यों बनते हो अज्ञानी

गयो सिन्धु ज्यों मणि नहिं पावत, फिर न मिले नरभव प्राणी
चौरासी लाख योनि भ्रमा है; मूरख तू कर नादानी

एक बार समकित यदि पाता, मिट जाती भव भटकानी
नन्हें कहें समय मत खोवो, सदा पढ़ो तुम जिनवाणी

वर्णादि अरु रागादि परिणति ....

वर्णादि अरु रागादि परिणति, भेद बिन निजभाव को।।टेक।।
परमार्थ दर्शन-ज्ञान-सुखमय ध्रुव अचल चिदभाव को ।।१।।
दर्शाय सरस्वती देवि मेरा, किया परम उपकार है ।।२।।
निजभाव में ही थिर रहूँ, माँ वन्दना अविकार है ।।३।।

जिनवाणी को नमन करो.......

जिनवाणी को नमन करो, यह वाणी है भगवान की
इस वाणी को नमन करो, यह वाणी है कल्याण की ।।टेक।।
वन्दे जिनवरम्!. . . . . वन्दे गुरुवरम्!

स्याद्वाद की धारा बहती, अनेकान्त की माता है
मद मिथ्यात्व कषायें गलती, राग-द्वेष जल जाता है
पढ़ने से है ज्ञान जागता, पालन से मुक्ति मिलती
जड़ चेतन का ज्ञान हो इससे, कर्मों की शक्ति हिलती
इस वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की

इसके पूत सपूत अनेकों, कुन्दकुन्द जैसे ज्ञानी
खुद भी तरे अनेकों तारे, मुक्ति कला के वरदानी
महावीर की वाणी है, गुरू गौतम ने इसको धारी
सत्य धर्म का पाठ पढ़ाती, भक्तों की है हितकारी
सब मिल करके नमन करो, यह वाणी केवलज्ञान की

शुद्धातम है सिद्ध स्वरूपी, जिनवाणी बतलाती है
शुद्ध ज्ञानमय चिदानंदमय, बार-बार समझाती है
द्रव्य भाव नोकर्म न्यारे, प्रगट प्रत्यक्ष दिखाती है
स्वसंवेदन से अनुभव में, भी प्रमाणता आती है
मोह नींद से आई जगाने, भव्यजनों के काम की

इस वाणी ने सुप्त हृदय के, तार अनेकों झनकाये
इस वाणी से अंजन जैसे, जीव निरंजन शिवपुर धाये
जिनवाणी है जिनकी वाणी, जिन होने की कला सिखाये
उसी भव्य के मन भाती है, जिसकी काललब्धि आ जाये
वाग्गंगा करती मन चंगा, सुधा सिन्धु कल्याण की
.....

सारद ! तुम परसाद तैं,

सारद ! तुम परसाद तैं, आनन्द उर आया।
ज्यौं तिरसातुर जीव कौं, अमृत जल पाया।।टेक।।
नय परमान निखेप तैं, तत्वार्थ बताया।
भाजी भूलि मिथ्यात की, निज निधि दरसाया।।१।।

विधिना मोहि अनादि तैं, चहुंगति भरमाया।
ता हरिवै की विधि सबै, मुझ माहिं बताया।।२।।
गुन अनन्त मति अलप तैं, मोपै जात न गाया।
प्रचुर कृपा लखि रावरी, 'बुधजन' हरषाया।।३।।

कलि में ग्रन्थ बड़े उपगारी

कलि में ग्रन्थ बड़े उपगारी।
देव-शास्त्र-गुरु सम्यक् सरधा, तीनों जिन तैं धारी।।टेक।।
तीन बरस वसु मास पंद्र दिन, चौथा काल रहा था।
परम पूज्य महावीर स्वामी तब, शिवपुर राज लहा था।।१।।
केवलि तीन, पाँच श्रुतकेवलि, पीछैं गुरुनि विचारी।
अंग पूर्व अब न हैं, न रहेंगे, बात लिखी थिरकारी।।२।।
भविहित कारन धर्म विचारन, आचारजों बनाये।
बहुतानि तिनकी टीका कीनी, अद्भुत अरथ समाये।।३।।
केवलि-श्रुतकेवलि यहँ नाहीं, मुनिगन प्रगट न सूझे।
दोऊ केवलि आज यही हैं, इनही को मुनि बूझे।।४।।
बुद्धि प्रगट करि आप बाँचिये, पूजा वंदन कीजे।
दरब खरचि लिखवाय सुधाय, सुपंडित जन को दीजे।।५।।
पढ़ते सुनतें चरचा करतें, हैं संदेह जु कोई।
आगम माफिक ठीक करै है, देख्यो केवलि सोई।।६।।
तुच्छ बुद्धि कछु अरथ जानिकैं, मनसों विग उठाये।
अवधिज्ञानी श्रुतज्ञानी मानो, सीमंधर मिलि आये।।७।।
ये तो आचारज हैं साँचे, ये आचारज झूठे।
तिनिके ग्रन्थ पढ़ें नित बंदै, सरधा ग्रन्थ अपूठे।।८।।
साँच झूठ तुम क्यों कर जानो, झूठ जान क्यों पूजो।
खोट निकाल शुद्ध कर राखो, अवर बनाओ दूजो।।९।।
कौन सहामी बात चलावै, पूछैं आनमती तो।
ग्रन्थ लिख्यो तुम क्यों नहि मानो, जवाब कहा कहि जीतो।।१०।।
जैनी जैनग्रन्थ के निंदक, हुंडासर्पिनी जोरा।
'द्यानत' आप जानि चुप रहिये, जग में जीवन थोरा।।११।।

हे प्रभुवर! तुमने दिव्यध्वनी......

हे प्रभुवर! तुमने दिव्यध्वनी प्रगटायो ... ।।
भवसागर के मांही रुलते, तीर नहीं मैं पायो ।
पुण्य–उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पायो ।।
इस पंचम दु:ख कालमांहि मैं, दिव्यध्वनी नहिं पायो ।
दिव्यध्वनी को सार आपने, समयसार बतलायो ।।
समयसार में सार आपने, ज्ञायक रूप बतायो ।
ऐसो ज्ञायक रूप आपमें, दर्शन कर सुख पायो ।।
आत्मज्ञान दीपक को प्रगटन, भेदज्ञान समझायो ।
भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं, ऐसो आप बतायो ।।
दिव्यध्वनी के ज्ञान मांहि मैं, बोध ज्ञान है पायो।
बोध ज्ञान के नाथ मांहि मैं, आतम रूप समायो ।।
हे प्रभुवर! तुमसे दिव्यध्वनी मैं पायो ... ।।

चेतो हे! चेतन राज......

चेतो हे! चेतन राज, चेतन बोले है ।
जानो अब निज-पर काज, वीरा बोले हैं ... ।।
अपने समान सब जीव, दिव्यध्वनि बोले है ।
नहिं रच मात्र भी भेद, जिनवर बोले हैं ।।
ऊपर से भेद ही जान, गणधर बोले हैं ।
आतम अब निज पहचान, गुरुवर बोले हैं ।।
जिनवाणी सच्चा ज्ञान, अमृत घोले है ।
लख चौरासी दु:ख हान, प्रभुवर बोले हैं ।।
अब कर लो भेद-विज्ञान, हम सब डोले हैं ।
भव भ्रमण का हो हान, निज-रस जो ले हैं ।।
सिद्धातम पद ही सार, जिनागम बोले है ।
निज आतम ही इक सार, वीर प्रभु बोले हैं ।।

वीर हिमाचल तें निकसी......

वीर हिमाचल तैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है।।टेक।।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है।।१।।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनि सौ उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है।।२।।
या जग-मन्दिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिन की धुनि दीप-शिखा सम, जो नहीं होत प्रकाशन हारी।।३।।
तो किस भाँति पदारथ पाँति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि हैं, जिनबैन बड़े उपकारी।।४।।

जिनवर चरण-भक्ति वर गंगा......

जिनवर चरण-भक्ति वर गंगा, ताहि भजो भवि नित सुखदानी।।टेक।।
स्याद्वाद हिमगिरि तैं उपजी, मोक्ष-महासागरहि समानी।।१।।
ज्ञान-विरागरूप दोऊ ढाये, संयम भाव मगर हित आनी।
धर्म-ध्यान जहाँ भँवर परत है, शम-दम जामें सम-रस पानी।।२।।
जिन-संस्तवन तरंग उठत हैं, जहाँ नहीं भ्रम-कीच निशानी।
मोह-महागिरि चूर करत हैं, रत्नत्रय शुद्ध पन्थ ढलानी।।३।।
सुर-नर-मुनि-खग आदिक पक्षी, जहाँ रमत नित सम-रस ठानी।
'मानिक' चित्त निर्मल स्थान करि, फिर नहीं होत मलिन भवि प्राणी।।४।।

अज्ञानीजन ! समझत क्यों नहिं वानी...

अज्ञानीजन ! समझत क्यों नहिं वानी।।टेक।।
स्याद्वाद अंकित सुखदाय, भाखी केवलज्ञानी।।१।।
जास लखैं निरमल पद पावै, कुमति कुगति की हानी।
उदय भया जिहमें परगासी, तिहि जाना सरधानी।।२।।
जामें देव धरम गुरु वरनें, तीनौं मुकति निसानी।
निश्चय देव धरम गुरु आतम, जानत विरला प्रानी।।३।।
या जगमाहिं तुझे तारन को, कारन नाव बखानी।
'द्यानत' सो गहिये निहचै सैं, हूजे ज्यों शिवथानी।।४।।

३. गुरु भक्ति

हे कुन्द-कुन्द शिवचारी गुरुवर ....

हे कुन्द-कुन्द शिवचारी गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।
हे कुन्द-कुन्द अविकारी गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।।टेक।।
सौम्य मूर्ति निर्ग्रन्थ दिगम्बर, लेश नहीं जिनके आडम्बर ।
प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, तुमको लाखों प्रणाम ।।१।।
समयसार रचनार नमामी, शुद्धातम दातार नमामी ।
मूलसंघ के नायक गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।।२।।
विषय-कषायरम्भ नहीं हैं, ज्ञान ध्यान तप लीन सही है ।
भव का अन्त सुझाते गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।।३।।
है व्यवहार का पक्ष अनादि से, नहिं स्वभाव का लक्ष अनादि से ।
पक्षातिक्रांत दिखाते गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।।४।।
जैनधर्म के गौरव गुरुवर तुमसा ही मैं होऊँ सत्वर ।
भावलिंगमय संत तुम्ही हो, तुमको लाखों प्रणाम ।।५।।
दृष्टि में ध्रुव शुद्ध आत्मा, ज्ञान अहो अनुभवे आत्मा ।
हो रमण आतमा में ही गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।।६।।
तुमको अन्तर में ही निरखती, भक्ति हृदय में आज उछलती ।
है सर्वस्व समर्पण गुरुवर, तुमको लाखों प्रणाम ।।७।।

मैं किस दिन मुनिवर बन कर ....

मैं किस दिन मुनिवर बन कर वन वन डोलूँ रे ।
मैं सोऽह सोऽह मुख से हरदम बोलूँ रे ।।टेक।।
मैं सकल परिग्रह छोडूँ, इस दुनियाँ से मुँह मोडूँ ।
तज रागद्वेष सारे कषाय, नहिं प्राण किसी के छोलूँ ।।१।।
मैं ऐसा ध्यान लगाऊँ, सब तन की सुधि बिसराऊँ ।
मेरे तन से खाज करें हिरण आन, मैं अनुभव अमृत घोलूँ ।।२।।
मैं आतम जोति जगाऊँ, शिवराम स्वपद कब पाऊँ ।
समता सम्हार ममता निवार, निज आत्म हृदय पट खोलूँ ।।३।।

ऐसे मुनिवर देखे वन में......

ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग-द्वेष नहीं मन मे।
ग्रीषम ऋतु शिखर के ऊपर मगन रहै ध्यानन में।।टेक।।
चातुरमास तरुतल ठाडे, बूंद सहै छिन छिन में।।१।।
शीत मास दरिया के किनारे, धीरज धारे ध्यानन में।
ऐसे गुरु को मैं नित प्रति ध्याऊँ देत ढोक चरणन में।।२।।

कृपा सिन्धु तुम कुन्दकुन्द हो ....

कृपासिन्धु तुम कुन्दकुन्द हो, कुन्द प्रभा से आभावान
कामधेनू और कल्पवृक्ष हो, साधकजन के जीवन-प्राण ।।टेक।।

कलिकाल सर्वज्ञ कहाये, तीर्थंकर के तुम वरदान
परमागम का दीप जलाकर, दिखा गये अनुपम ध्रुवधाम

कुमदिनी विकसित होती है, चन्द्रप्रभा हो जहाँ जहाँ
सन्त महर्षी पुलकित होते, लख कुन्दकुन्द उद्योत जहाँ

सीमंधर स्वामी ने तुमको, दर्शन दीने दया निधान
हो समर्थ आचार्य भरत के, ज्ञानी गावें तव गुण गान

परमागम हैं पंच तुम्हारे, रूप सरस्वती के साकार
शीश झुका कर वन्दन करते, भक्त तुम्हारे बारंबार

आरति कीजै श्रीमुनिराज की . . . .

आरति कीजै श्रीमुनिराज की, अधम उधारन आतमकाज की।
जा लच्छी के सदा अभिलाषी, सो साधन करदम वत नाखी।।टेक।।
सब जग जीत लियो जिन नारी, सो साधन नागनि वत छारी।
विषयन सब जग जिय वश कीने, ते साधन विषवत तज दीने।।१।।
भुवि को राज चहत सब प्रानी, जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी।
शत्रु-मित्र दुख-सुख सम मानै, लाभ-अलाभ बराबर जानै।।२।।
छहों काय रक्षा व्रत धारें, सबको आप समान निहारे।
इह आरती पढ़े जो गावें, 'द्यानत' सुरग-मुक्ति सुख पांवें।।३।।

दुनियाँ में रहें चाहे दूर रहें . . . .

दुनियाँ में रहें चाहे दूर रहें, जो खुद में समाये रहते हैं।
सब काम जगत का किया करें, नहिं प्यार किसी से करते हैं।।टेक।।
वह चक्रवर्ती पद भोग करें, पर भोग में लीन नहीं होते।
वह जल में कमल की भांति सदा, घरबार बसाये रहते हैं।।१।।
कभी नर्क वेदना सहते है, पर मगन रहें निज आतम में।
वे स्वर्ग सम्पदा पाकर भी, रुचि उससे हटाये रहते हैं।।२।।
नहीं कर्म के कर्ता बनते हैं, स्वामित्व न पर में धरते हैं।
नही दुःख में दुखी न सुख में सुखी समभाव धराये रहते हैं।।३।।
वे सप्त भयों से रहित सदा, वे श्रद्धा से न कभी डिगते।
जिनवर नन्दन वे केलि सदा, निज में ही करते रहते हैं।।४।।
है धन्य धन्य वे निर्मोही, जिन शान्ति दशा है प्रकटाई।
शिवराम चरण मे उनके सदा, हम शीश झुकाये रहते हैं।।५।।

नाथ! ऐसा दिन कब पाऊँ . . . .

नाथ! ऐसा दिन कब पाऊँ, मै ऐसा दिन कब पाऊँ।।टेक।।
बाहयाभ्यंतर त्यागि परिग्रह, नग्न सरूप बनाऊँ।
भैक्षाशन इक बार खडा हो, पाणि पात्र में खाऊँ।।१।।
राग द्वेष छल लोभ मोह, कामादि विकार हटाऊँ।
पर परिणति को त्यागि निरंतर, स्वाभाविक चित ल्याऊँ।।२।।
शून्यागार पहार गुफा, तटिनी तट ध्यान लगाऊँ।
शीत उष्ण वर्षा की बाधा, से नहिं चित अकुलाऊँ।।३।।
तृण मणि कंचन कांच माल अहि, विष अमृत समध्याऊँ।
शत्रु मित्र निंदक वदक को, एकहि दृष्टि लखाऊँ।।४।।
गुप्ति समिति व्रत दश लक्षण, रत्नत्रय भावन भाऊँ।
कर्म नाश केवल प्रकाश, 'मक्खन' जब शिवपुर जाऊँ।।५।।

घर को छोड वन जाऊँ ....

घर को छोड वन जाऊँ, मैं वो दिन कब पाऊँ ।।टेक।।
बाहयाभ्यन्तर त्याग परिग्रह, नगन स्वरूप बनाऊँ ।
सकल विभाव मई परणति तज, स्वाभाविक चित लाऊँ ।।१।।
परवत गुफा नगर सुन्दर घर, दीपक चाँद मनाऊँ ।
भूमि सेज आकाश चंदेवा, तकिया भुजा लगाऊँ ।।२।।
तृण मणि कंचन कांच सहित अरि, विष अमृत सम ध्याऊँ ।
उपल जान मृग खाज खुजावे, ऐसा ध्यान लगाऊँ ।।३।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण त्रय, दश लक्षण वृष ध्याऊँ ।
क्षुधा तृषादिक सहूँ परीषह, बारह भावन भाऊँ ।।४।।
चार घातिया कर्म नाश के, केवलज्ञान उपाऊँ ।
घात अघाति, लऊँ शिव 'मक्खन', फेर न जग में आऊँ ।।५।।

बस भावना ही भा ले....

बस भावना ही भाले जो होना है वो होना है ।
बस आत्मा ही ध्याले, जो होना है वो होना है ....
पापात्मा ना तूं है, पुण्यात्मा ना होना है ।
शुद्धातमा ही ध्याले, परमात्मा जो होना है ।।
नहिं बालक बूढ़ो जवान, कालो गोरो ना होना है
स्त्री-मर्द नहीं तूं तो, सुखसागर का सलोना है ।।
पाप-पुण्य से रहित सदा, निज आत्मा लखोना है ।
अविनाशी चैतन्यराज तूं, जनम-मरण नहिं होना है ।।
बारबार नहिं मिले दाँव, अब मेट जन्म दु:ख रोना है ।
धरकर नग्न रूप निज ध्याले, चेतन रूप सलोना है ।।
शुद्धातम-निज आतम ध्याते, सुख ही सुख तो होना है ।
सदाकाल जो सुखसागरमय, मोक्ष परमपद होना है ....

संयोगों में ज्ञानी की परणति ....

सेयोगों में ज्ञानी की परणति नहिं कभी बदलती है
ज्ञानोदधि की लहर हृदय में, बारम्बार उछलती है।।टेक।।

उपयोग जभी अन्दर ढलता, नय पक्ष सभी मिट जाता है
ध्याता ध्यान ध्येय का भी, सारा विकल्प हट जाता है
भाव शुभाशुभ के विकल्प भी, लेश नहीं निज में होते
निर्विकल्प आत्मानुभूति में, निज के ही दर्शन होते
पर विभाव की रंच भी माया, मुझे न किंचित् छलती है।।१।।

क्रिया कॉंड के आडम्बर से, रहित अवस्था होती है
निज स्वरूप में रम जाने की, स्वयं व्यवस्था होती है
सहित विकल्प दशा में भी, निज कीहीमहिमा होती है
सच्चे देव शास्त्र गुरु की, अति पावन गरिमा होती है
अप्रमत्त की दशा प्राप्त करने को अरे मचलती है।।२।

निज चेतना तत्व ही मंगल, नमस्कार है करने योग
सब पदार्थ में उत्तम है यह, आत्म द्रव्य ही परम मनोग
उपादेय है एक मात्र, शुद्धोपयोग ही चेतन को
अभूतार्थ तो सदा हेय है, मोक्ष मार्ग में चेतन को
निज स्वभाव की धारा में, ज्ञानी की परणति चलती है।३।।

स्थिरता की कमजोरी से, यदि उपयोग बाह्य आता
पंच परम परमेष्ठी प्रभु का ही, बहुमान हृदय भाता
एक स्व संवेदन के द्वारा, सिद्ध स्वपद प्रगटाता है
इस प्रकार ज्ञानी अपना, चैतन्य नगर पा जाता है
स्वपर प्रकाशक ज्योति ज्ञान की, एकबार जब चलती है।।४।।

मुनिराज समागम दिवस आज ....

मुनिराज समागम दिवस आज यह आया ।
शुभ दिवस आज यह आया, सब ओर हर्ष आनन्द मोद है छाया ।।टेक।।

ये मुनिवर नग्न दिगम्बर हैं अनगारी, सम्यग्दर्शन व ज्ञान चरित के धारी ।।१।।
इनने स्व-पर कल्याण मार्ग अपनाया, शुभ दिवस आज यह आया ।
ये विश्वधर्म के प्रेरक जग के ज्ञाता,निज आत्मतत्त्व अध्ययन जिन्हें है भाता ।।२।।
जग वैभव को तृणवत् इनने ठुकराया, शुभ दिवस आज यह आया ।
ये ज्ञानवान् गुणवान् सरल स्वभावी, हैं समता रस में पगे बड़े मेधावी ।।३।।
इनके दर्शन कर जीव मात्र हर्षाया, शुभ दिवस आज यह आया ।
हम वचनामृत पीने की लेकर आशा, चरणों में आये शान्त करो पिपाशा ।।४।।
आगमन आपका सब के मन को भाया, शुभ दिवस आज यह आया ।
हम स्वागत करते तन मन और वचन से, और श्रद्धासुमन चढ़ाते तव चरणन में ।
गुरुवर वीरोचित मुक्तिमार्ग अपनाया, शुभ दिवस आज यह आया ।।५।।

यह तन जावै तो जावै ....

यह तन जावै तो जावै, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।टेक।।
बिना दोष दुर्जन दुख देवे, हिम्मत धार सभी सह लेवे ।
क्रोध जरा नहिं आवै, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।१।।
तेग तमंचा लाठी मारै, पकड बाँध जेलों में डालै ।
फाँसी पर लटकावै, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।२।।
टूक टूक होवे तन सारा, मरे न आतम राम हमारा ।
यह दृढ श्रद्धा आवे, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।३।।
क्षमा कवच धारे जो तन पर, लगे न गोली तीर बदन पर ।
दुश्मन ही थक जावे, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।४।।
क्रोध अग्नि संसार जलावे, क्षमा नीर से ताहि बुझावे ।
सो नर धन्य कहावे, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।५।।
क्षमा करें जग में सुख पावे, वे ही स्वर्ग मोक्ष में जावे ।
यही स्वतंत्र बनावे, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।६।।
उत्तम क्षमा समान न दूजा, करो सभी मिल इसकी पूजा ।
जो 'मक्खन' सुख पावे, मेरी उत्तम क्षमा नहिं जावै ।।७।।

जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ....

जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ।।टेक।।
भव्य ! कमल-दल को सतत ही दिनकर सम उपकार ।।१।।
मिथ्या मतिवश जीव आप ही भ्रमे न पारावार ।
दैव योग तुम वचन श्रवणते अनुभव होत अपार ।।२।।
कराता श्रद्धा अति अविकार, जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ।
नित विभाव परणति सविकारी क्रोधादिक परिवार ।।३।।
जाना तुम सम देख ! आपको आपहि ज्ञानाकार ।
जताता स्वानुभूति का द्वार, जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ।।४।।
बिना ज्ञान अज्ञान निमित बल नित्यहि मिथ्याचार ।
तुम निमित्त निज भाव शुद्ध लख प्रगटा शुद्धाचार ।।५।।
दिखाता सिद्धों-सम आकार, जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ।
धन्न धन्न अतिशय सुखकारी होता विमल-विचार ।।६।।
ज्ञान-भानु सम उदय सदाका स्वयं न किस आकार ।
नन्द का ज्ञायक रूप अपार, जयति-जय ! कुन्द-कुन्द अवतार ।।७।।

हे गुरुवर ! शाश्वत सुख-दर्शक ....

हे गुरुवर ! शाश्वत सुख-दर्शक, रह नग्न स्वरूप तुम्हारा है ।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है ।।टेक।।
जब जग विषयों मे रच-पच कर, गाफिल निद्रा मे सोता हो ।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कटक बोता हो ।।१।।
हो अर्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों ।
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो ।।२।।
करते तप शैल नदी तट पर, तरुतल वर्षा की झडियो मे ।
समतारस पान किया करते, सुख-दु:ख दोनों की घड़ियो में ।।३।।
अन्तर-ज्वाला हरती वाणी, मानों झडती हो फुलझड़ियाँ ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़े, खिल जावे अन्तर की कलियाँ ।।४।।
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दी जग की निधियाँ ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ ।।५।।

आचार्य श्री धरसेन जो......

आचार्य श्री धरसेन जो, न ग्रन्थ लिखाते ।
हम जैसे बुद्धि हीन, तत्त्व कैसे लहाते ।।टेक।।
अपने अलौकिक ज्ञान से, सब भेद जानकर ।
बुलवाये दो मुनिराज, की महिमा नगर खबर ।।
गर वे नहिं मुनिराज, युगल ऐसे बुलाते ।।१।।
आने से पहले स्वप्न में, ही योग्य जानकर ।
दो मन्त्र सिद्धि द्वारा फिर, परखा प्रधान कर ।।
उत्तीर्ण होकर योग्यता, गर वे न दिखाते ।।२।।
पश्चात् पढ़ाया उन्हे, निज शिष्य मानकर ।
उनने भी ग्रन्थ लिखा, गुरु उपकार मानकर ।।
करुणा निधान मुनि नहीं, गर ग्रन्थ रचाते ।।३।।
श्री पुष्पदन्त सूरि, प्रथम खण्ड बनाया ।
अभिप्राय जानने को, भूतबलि पै पठाया ।।
यदि वे नहिं उस ग्रन्थ का, प्रारम्भ कराते ।।४।।
उनने प्रसन्न होय, शेष ग्रन्थ रचाया ।
श्री ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को, पूर्ण कराया ।।
गर वे नहिं इस ग्रन्थ को, सम्पूर्ण कराते ।।५।।
ग्रन्थाधिराज की हुई, थी आज ही पूजा ।
इस काल में इससे बड़ा, उपकार न दूजा ।।
करुणा निधान गुरु अगर, ऐसा न कराते ।।६।।

हूँ कब देखूँ वे मुनिराई हो......

हूँ कब देखूं वे मुनिराई हो।।टेक।।
तिल तुष मात्र न परिग्रह जिनकैं, परमातम लौं लाई हो ।।१।।
निज स्वारथ के सब ही बांधव, वे परमारथ भाई हो ।।२।।
सब विधि लायक शिवमग दायक तारन-तरन सदाई हो ।।३।।

सम आराम विहारी साधुजन.....

सम आराम विहारी साधुजन, सम आराम विहारी ।।टेक।।
एक कल्पतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी ।।१।।
एक कण्ठविच सर्प नाखिया, क्रोध दर्पजुत भारी ।
राखत एक वृत्ति दोउन में, सब ही के उपगारी ।।२।।
व्याघ्रबाल करि सहित नन्दिनी, व्याल नकुल की नारी ।
तिनके चरन-कमल आश्रय तैं, अरिता सकल निवारी ।।३।।
अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताकौ धाम अपारी ।
काम धरा विच गढ़ी सो चिरतें, आतमनिधि अविकारी ।।४।।
खनत ताहि लैकर कर में जे, तीक्ष्ण बुद्धि कुदारी ।
निज शुद्धोपयोगरस चाखत, पर-ममता न लगारी ।।५।।
निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी ।
'भागचन्द' ऐसे श्रीपति प्रति, फिर-फिर ढोक हमारी ।।६।।

संत साधु बन के विचरूं.....

संत साधु बन के विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी ।
चल पड़ूँ मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी ।।टेक।।
हाथ में पीछी कमण्डल, ध्यान आतम राम का ।
छोड़कर घरबार दीक्षा, की घड़ी कब आयेगी ।।१।।
आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से ।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ।।२।।
पांच समिति तीन गुप्ति, बाइस परिषह भी सहूँ ।
भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ।।३।।
बाहय उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिंतन करूँ ।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी ।।४।।
भव भ्रमण का नाश होवे, इस दुःखी संसार से ।
विचरूँ मैं निज आत्मा में, वह घड़ी कब आयेगी ।।५।।

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै .....

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै ।।टेक।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निधि, धरत हरत भ्रमचोरनै ।।१।।
यथाजात मुद्राजुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै ।
तृन कञ्चन अरि स्वजन गिनत सम, निंदन और निहोरनै ।।२।।
भवसुख चाह सकल तनि बल सजि, करत द्विविध तप घोरनै ।
परम विराग भाव पवितैं नित, चूरत करम कठोरनै ।।३।।
छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह झकोरनै ।
जग-तप-हर भवि कुमुद निशाकर मोदन 'दौल' चकोरनै ।।४।।

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी .....

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी ।।टेक।।
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी ।।१।।
कंचन कांच बराबर जिनकै, ज्यौं रिपु त्यौं हितकारी ।
महल मसान मरन अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ।।२।।
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी ।
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ।।३।।
जोरि जुगल कर 'भूधर' विनवै, तिन पद धोक हमारी ।
भाग उदय दरसन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ।।४।।

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना .....

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना ।।टेक।।
तन व्यय वांछित प्रापति मानो, पुण्य उदय दुःख जाना ।।१।।
एक विहारी सकल ईशता, त्याग महोत्सव माना ।
सब सुख परिहार सार सुख, जानि रागमय भाना ।।२।।
चित स्वभाव को चिन्त्य प्रान निज, विमल ज्ञान-दृग साना ।
'दौल' कौन सुख जान लह्यो तिन, करो शांतिरस पाना ।।३।।

म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया.....

म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सब मिल दर्शन कर लो
बार-बार आना मुश्किल है, भक्ति भाव उर भर लो
हाँ, भक्ति भाव उर भर लो ।।टेक।।
हाथ कमडल काठ को, पीछी पख मयूर
विषय आशा आरम्भ सब, परिग्रह से है दूर
श्री वीतराग-विज्ञानी का कोइ ज्ञान हिये विच धर लो ।।१।।
एक बार कर पात्र मे, अतराय मल टाल
अल्पहार ले हो खडे, नीरस सरस सम्हाल
ऐसे मुनिमारग उत्तमधारी, तिनके चरण पकड लो ।।२।।
चार गति दुख से डरी, आत्म स्वरूप को ध्याय
पुण्य पाप से दूर हो, ज्ञान गुफा मे आय
'सौभाग्य' तरण-तारण मुनिवर के, तारण चरण पकड लो ।।३।।

आचार्य कुन्द कुन्द जो भारत में.....

आचार्य कुन्द कुन्द जो भारत मे न आते ।
अध्यात्म समयसार कहो कौन सुनाते ।।टेक।।
रुचि करके कौन देता आत्मख्याति समयसार ।
ऐसे अनेक ग्रन्थ भेदज्ञान के भडार ।।
उनके बिना हृदय मे शान्ति कौन दिलाते ।।१।।
जलती कषाय अग्नि सहज भाव जलाती ।
कर्मों के महाबन्ध को आत्मा से कराती ।।
शान्ति का सहज प्याला कहो कौन पिलाते ।।२।।
सम्यक्त्व बिना मोह ने भवबन में घुमाया ।
सम्यक्त्व बिना आत्मा को उसने रुलाया ।।
सम्यक्त्व आत्मा की निधि कौन बताते ।
अध्यात्म सुधा सार कहो कौन पिलाते ।।३।।
हैं जगत के सम्बन्ध कोई पार न पाया ।
हैं सब अनित्य, नित्य एक भी नहीं पाया ।।
होता न सगा आप जिसे अपना बनाते ।।४।।

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै, सो फेर न भव में आवै
संशय-विभ्रम-मोह विवर्जित, स्व-पर स्वरूप लखावै ।।टेक।।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्मकलंक मिटावै ।।१।।
भव-तन-भोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै ।
मोह-विकार निवार निजातम, अनुभव मे चित लावै ।।२।।
त्रस-थावर बध त्याग सदा, परमाद दशा छिटकावै ।
रागादिक वश झूठ न भाखै, तृण हु न अदत्त गहावै ।।३।।
बाहिर नारि त्यागि अन्तर, चिदब्रह्म सुलीन रहावै ।
परमाकिंचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसंग बहावै ।।४।।
पञ्च समिति त्रय गुप्ति पाल, व्यवहार-चरनमग धावै ।
निश्चय सकल कषायरहित ह्वै, शुद्धातम थिर थावै ।।५।।
कुकुम पंक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै ।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्म शुक्ल को ध्यावै ।।६।।
जाके सुख समाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै ।
'दौल' तासपद होय दास सो, अविचल ऋद्धि लहावै ।।७।।

हे परम दिगम्बर यति, महागुण व्रती

हे परम दिगम्बर यति, महागुण व्रती, करो निस्तारा।
नहिं तुम बिन हितु हमारा ।।टेक।।
तुम बीस आठ गुण धारी हो, जग जीव मात्र हितकारी हो ;
बावीस परीषह जीत धरम रखवारा, नहिं तुम बिन हितू हमारा ।।१।।
तुम आतम ज्ञानी ध्यानी हो, प्रभु वीतराग विज्ञानी हो ।
है रत्नत्रय गुण मण्डित हृदय तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितु हमारा ।।२।।
तुम क्षमा शान्ति समता सागर, हो विश्व पूज्य नर रत्नाकर ।
है हित मित सत् उपदेश तुम्हारा प्यारा, नहिं तुम बिन हितु हमारा ।।३।।
तुम धर्ममूर्ति हो समदर्शी, हो भव्य जीव मन आकर्षी ।
है निर्विकार निर्दोष स्वरूप तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितु हमारा ।।४।।
है यही अवस्था एक सार, जो पहुँचाती है मोक्ष द्वार ।
'सौभाग्य' आपसा बाना होय हमारा, नहिं तुम बिन हितु हमारा ।।५।।

हे कुन्दकुन्द आचार्य कह गये.....

हे कुन्दकुन्द आचार्य कह गये, जो निज आतम ध्यायेगा।
पर से ममता छोड़ेगा, निश्चय भव से तर जावेगा।।टेक।।
क्रियाकाण्ड में धर्म नहीं है, पर से धर्म नहीं होगा।
निज स्वभाव में रमे बिना नहिं कुछ भी धरम कहीं होगा।।
शुद्ध अखण्ड चिदानन्द ज्ञायक, धर्म वस्तु में पावेगा।।१।।
निज स्वभाव के साधन से ही, सिद्ध प्रभु बन पावेगा।
राग भाव शुभ अशुभ सभी से, जग में गोते खावेगा।।
मुक्ति चाहने वाला तो निज से निज गुण प्रगटावेगा।।२।।
जीव मात्र ऐसा चाहते हैं, दुख मिट जावे सुख आवे।
करते रहते हैं उपाय जो, अपने अपने मन भावें।।
राग द्वेष पर भाव तजेगा, वह सच्चा सुख पावेगा।।३।।
पर पदार्थ नहिं खोटा चोखा, नहिं सुख दुख देने वाला।
इष्ट अनिष्ट मान्यता से अज्ञानी भटके मतवाला।।
भेद ज्ञान निज पर विवेक से शुद्ध चिदानन्द पावेगा।
पर से ममता छोड़ भंवर फिर शुद्धातम को पावेगा।।४।।

परम दिगम्बर मुनिवर देखे.....

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है
आनन्द उल्लासित होता है हो सम्यग्दर्शन होता है।।टेक।।
वास जिनका वन उपवन में, गिरि शिखर के नदी तटे।
वास जिनका चित्त गुफा में, आतम आनन्द में रमे।।१।।
कंचन कामिनी के त्यागी, महा तपस्वी ज्ञानी ध्यानी।
काया की माया के त्यागी, तीन रतन गुण भंडारी।।२।।
परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमूँ।
शान्त मूर्ति सौम्य मुद्रा, आनन्द धारा में रमूँ।।३।।
चाह नहीं है राज्य की, चाह नहीं रमणी तणी।
चाह उर में एक यही है, शिव रमणी वरवा तणी।।४।।
भेद ज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं।
क्षण क्षण में अन्तर्मुख हो, सिद्धों से बातें करते हैं।।५।

ते गुरु मेरे मन बसो.....

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज ।
आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज ।।टेक।।
मोह महारिपु जानि कैं, छांड़्यो सब घरबार ।
होय दिगम्बर बन बसे, आतम शुद्ध विचार ।।१।।
रोग उरग-विल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान ।
कदलीतरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान ।।२।।
रत्नत्रय निधि उर धरैं, अरु निरग्रंथ त्रिकाल ।
मार्‍यो कामखवीस को, स्वामी परमदयाल ।।३।।
पंच महाव्रत आदरैं, पांचों समिति समेत ।
तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पदहेत ।।४।।
धर्म धरैं दशलाछनी, भावैं भावना सार ।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भँडार ।।५।।
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर ।
शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ।।६।।
पावस रैन डरावनी, बरसैं जलधर धार ।
तरुतल निवसैं तब यती, बाजै झंझा व्यार ।।७।।
शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय ।
ताल तरंगनिके तटैं, ठाड़े ध्यान लगाय ।।८।।
इह विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों काल मँझार ।
लागे सहज सरूप में, तन सौं ममत निवार ।। ९ ।।
पूरव भोग न चितवैं, आगम वांछै नाहिं ।
चहुंगति के दुख सौं डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं ।।१०।।
रंग महल में पौढ ते, कोमल सेज बिछाय ।
ते पच्छिम निशि भूमि में, सोवें संवरिकाय ।।११।।
गज चढ़ि चलते गरव सौं, सेना सजि चतुरंग ।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग ।।१२।।
वे गुरु चरण जहा धरैं, जग मैं तीरथ जेह ।
सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' मांगै एह ।।१३।।

कबधौं मिलैं मोहि श्री मुनिवर ......

कबधौं मिलैं मोहि श्री मुनिवर, करि हैं भवदधि पारा हो ।।टेक।।
भोग उदास जोग जिन लीनों, छांड़ि परिग्रह भारा हो ।
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो, विषय कषाय निवारा हो ।।१।।
कञ्चन काच बराबर जिनके, निन्दक बन्दक सारा हो ।
दुर्धर तप तपि सम्यक् निजघर, मन-वच-तनकर धारा हो ।।२।।
ग्रीषम गिरि हिम सरिता तीरै, पावस तरुतर ठारा हो ।
करूणाभीन चीन त्रसधारक, ईर्यापन्थ समारा हो ।।३।।
मार-मार ब्रत धार शील दृढ़, मोह महामल टारा हो ।
मास छमास उपास वासवन, प्रासुक करत अहारा हो ।।४।।
आरत-रौद्र लेश नहिं जिनके, धर्म शुकल चित धारा हो ।
ध्यानारूढ़ गूढ़ निज आतम, शुध उपयोग विचारा हो ।।५।।
आप तरहिं औरन को तारहिं, भवजलसिन्धु अपारा हो ।
'दौलत' ऐसे जैन-जतिन को, नित प्रति धोक हमारा हो ।।६।।

मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा......

मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा ऐसी मुनिवर की ।
निशदिन ध्याऊं, गाऊं मगल महिमा आतम सुखकर की ।।टेक।
निज आत्म प्रतीति जो करते हैं, वे मोह तिमिर को हरते हैं ।
शुद्धात्म स्वरूप विचरते हैं, मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा" ।।१।।
बाहर में जंगल वास रहे, अन्तर शुद्धात्म प्रकाश रहे ।
संवेदन प्रचुर विलास रहे, मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा... ।।२।।
वैराग्य ज्ञान आधार रहे, कषाय विषय परिहार रहे ।
नव रस मय शांति विहार रहे, मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा... ।।३।।
परिणति विभाव विराम रहे, उपयोग थिर निज ठाम रहे ।
निज सहज रूप विश्राम रहे, मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा..... ।।४।।
उपयोग शुभाशुभ थिर न कदा, शुद्धोपयोग थिर रहे सदा ।
'निर्मल' निज आत्म भज सबसे जुदा, मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा ।।५।।

मुनि बन आयेजी बना......

मुनि बन आये जी बना ।
शिव बनरी ब्याहन कौं उमगे, मोहित भविक जना ।।टेक।।
रत्नत्रय सिर सेहरा बांधै, सजि संवर बसना ।
संग बराती द्वादश भावन, अरु दश धर्म पना ।।१।।
सुमति नारी मिलि मंगल गावत अजपा गीत घना ।
राग-दोष की अतिशबाजी, छूटत अगनि-कना ।।२।।
दुविधि कर्म का दान बटत है, तोषित लोकमना ।
शुक्लध्यान की अगनि जला करि, होमैं कर्मघना ।।३।।
शुभ बेल्यां शिव बनरि बरी मुनि, अद्भुत हरष बना ।
निज मंदिर में निश्चल राजत, 'बुधजन' त्याग घना ।।४।।

ऐसे जैनी मुनि महाराज......

ऐसे जैनी मुनि महाराज, सदा उर मो बसौ ।।टेक।।
जिन समस्त परद्रव्यनि माहीं, अहबुद्धि तजि दीनी ।
गुन अनन्त ज्ञानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी ।।१।।
कर्म शुभाशुभ बन्ध उदय में, हर्ष-विषाद न राखै ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, भाव सुधारस चाखै ।।२।।
पर की इच्छा तजि निजबल सजि, पूरब कर्म खिरावै ।
सकलकर्म तै भिन्न-अवस्था, सुखमय लखि चित चावैं ।।३।।
उदासीन शुद्धोपयोग रत, सबके दृष्टाज्ञाता ।
बाहिजरूप नगन समताकर, 'भागचन्द' सुखदाता ।।४।।

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं......

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं ।।टेक।।
आप तरैं अरु पर को तारैं, निष्प्रेही निर्मल हैं ।
तिलतुष मात्र सग नहि जाकै, ज्ञान-ध्यान-गुण-बल हैं ।।१।।
शात दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दिर तुल्य अचल हैं ।
'भागचन्द' तिनको नित चाहैं, ज्यों कमलनि को अलि हैं ।।२।।

धनि मुनि निज आतम हित कीना.....

धनि मुनि निज आतम हित कीना
भव असार तन अशुचि विषय विष, जान महाव्रत लीना ।।टेक।।
एक विहारी परीग्रह छारी, परिसह सहत अरीना ।
पूरव तन तपसाधन मान न लाज गना परवीना ।।१।।
शून्य सदन गिर गहन गुफा में, पद्मासन आसीना ।
परभावन तैं भिन्न आपपद, ध्यावत मोह विहीना ।।२।।
स्व-पर भेद जिनकी बुधि निज में, पागी वाहि लगीना ।
'दौल' तासपद वारिज रज से, किन अघ करे न छीना ।।३।।

जिन राग-दोष त्यागा वह सतगुरु.....

जिन राग-दोष त्यागा, वह सतगुरु हमारा।।टेक।।
तज राजऋद्ध तृणवत, निज काज सम्भारा।।१।।
रहता है वह वनखण्ड में, धरि ध्यान कुठारा।
जिन मोह महा तरु को, जड़मूल उखारा।।२।।
सर्वांग तज परिग्रह, दिक् अम्बर धारा।
अनन्त ज्ञान गुन समुद्र, चारित्र भण्डारा।।३।।
शुक्लाग्नि को प्रजाल के, बसु कानन जारा।
ऐसे गुरु को 'दौल' है, नमोऽस्तु हमारा।।४।।

धन-धन जैनी साधु अबाधित.....

धन-धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञान विलासी हो ।।टेक।।
दर्शन-बोधमयी निजमूरति, जिनको अपनी भासी हो ।
त्यागी अन्य समस्त वस्तु मे, अहंबुद्धि दुःखदासी हो ।।१।।
जिन अशुभोपयोग की परणति, सत्तासहित विनाशी हो ।
होय कदाच शुभोपयोग तो, तहं भी रहत उदासी हो ।।२।।
छेदत जे अनादि दुःखदायक, दुविधि बन्ध की फाँसी हो ।
मोह-क्षोभ-रहित जिन परणति, विमल मयंक कला-सी हो ।।३।।
विषय-चाह-दव-दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो ।
'भागचन्द' ज्ञानानन्दी पद, साधत सदा हुलासी हो ।।४।।

धन्य मुनीश्वर आतम हित में......

धन्य मुनीश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार, ।
कि तुमने छोडा सब घरबार ।।टेक।।
काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भारी ।
पञ्च महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के बने भंडारी ।।
धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत असार ।।१।।
राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर विरोध हृदय से भागे ।
परमातम के हो अनुरागे, वैरी कर्म पलायन भागे ।।
सत सन्देश सुना भविजन का, करते बेड़ा पार ।।२।।
होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते ।
निजपद के आनंद में झूलते, उपशम रस की धार बरसते ।।
मुद्रा सौम्य निरख कर मस्तक, नमता बारम्बार ।।३।।

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ......

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ ।।टेक।।
नग्न दिगम्बर मुद्रा धरिके, कब निज आतम ध्याऊँ ।
ऐसी लब्धि होय कब मोकूँ, जो निजवाँछित पाऊँ ।।१।।
कब गृहत्याग होऊँ बनवासी, परम पुरुष लौ लाऊँ ।
रहूँ अडोल जोड़ पद्मासन, कर्म कलंक खिपाऊँ ।।२।।
केवलज्ञान प्रगट करि अपनो, लोकालोक लखाऊँ ।
जन्म-जरा-दुःख देत तिलांजलि, हो कब सिद्ध कहाऊँ ।।३।।
सुख अनन्त बिलसूँ तिहि थानक, काल अनन्त गमाऊँ ।
'मानसिंह' महिमा निज प्रगटे, बहुरि न भव में आऊँ ।।४।।

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे......

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे, वीतराग गुनधारी वे ।।टेक।।
स्वानुभूति रमनी संग क्रीड़ें, ज्ञान सम्पदा भारी वे ।।१।।
ध्यान पिंजरा में जिन रोकौ, चित खग चंचलचारी वे ।।२।।
तिनके चरन सरोरुह ध्यावै, 'भागचन्द' अघटारी वे ।।३।।

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे……

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे, आतमरूप अबाधित ज्ञानी ।।टेक।।
रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी ।
दहन-दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहनता की विधि ठानी ।।१।।
वरणादिक विकार पुद्गल के इनमें नहिं चैतन्य निशानी ।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ।।२।।
मैं सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी ।
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत पर-परनति हितमानी ।।३।।
'भागचन्द' निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी ।
नित अकलक अबंक शंक बिन, निर्मल पंक बिना जिमि पानी ।।४।।

श्रीमुनि राजत समता संग……

श्रीमुनि राजत समता सङ्ग, कायोत्सर्ग समाहित अग ।।टेक।।
करतैं नहिं कछु कारज तातै, आलम्बित भुज कीन अभग ।
गमन काज कछु हू नहिं तातै, गति तजि छाके निजरस रग ।।१।।
लोचनतैं लखिवौ कछु नाही, तातैं नासादृग अचलग ।
सुनिवे जोग रह्यो कछु नाहीं, तातैं प्राप्त इकन्त सुचग ।।२।।
तह मध्यान्ह माहि निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतग ।
कैधौ ज्ञान पवनबल प्रज्वलित, ध्यानानल सौ उछलि फुलिग ।।३।।
चित्त निराकुल अतुल उठत जह, परमानन्द पियूष तरग ।
'भागचन्द' ऐसे श्रीगुरुपद, वन्दत मिलत स्वपद उत्तग ।।४।।

शान्ति वरन मुनिराई वर लखि……

शान्ति वरन मुनिराई वर लखि ।।टेक।।
उत्तर गुनगन महित (मूल गुन सुभग) बरात सुहाई ।
तप रथ पै आरूढ अनूपम, धरम सुमंगल दाई ।।१।।
शिवरमनी को पानि ग्रहण करि, ज्ञानानन्द उपाई ।
'भागचन्द' ऐसे वनरा को, हाथ जोर सिर नाई ।।२।।

परमगुरु बरसत ज्ञान झरी......

परमगुरु बरसत ज्ञान झरी ।।टेक।।
हरषि-हरषि बहु गरजि-गरजि कै, मिथ्या तपन हरी ।।१।।
सरधा भूमि सुहावनि लागै, संशय बेल हरी ।
भविजन मन सरवर भरि उमड़े, समुझि पवन सियरी ।।२।।
स्यादवाद मत बिजली चमके, परमत शिखर परी ।
चातक मोर साधु श्रावक के, हृदय सुभक्ति भरी ।।३।।
जप तप परमानन्द बढ़्यो है, सुसमय नींव धरी ।
'द्यानत' पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी ।।४।।

धनि ते साधु रहत वनमाहीं......

धनि ते साधु रहत वनमाहीं ।
शत्रु-मित्र सुख-दुःख सम जानैं, दिरसन देखत पाप पलाहीं ।।टेक।।
अट्ठाईस मूलगुण धारै, मन वच काय चपलता नाहीं ।
ग्रीषम शैल शिखा हिम तटिनी, पावस बरखा अधिक सहाहीं ।।१।।
क्रोध मान छल लोभ न जानैं, राग-दोष नाहीं उनपाहीं ।
अमल अखंडित चिद्गुण मंडित,ब्रह्मज्ञान में लीन रहाहीं ।।२।।
तेई साधु लहैं केवल पद, आठ काठ दह शिवपुरी जाहीं ।
'द्यानत' भवि तिनके गुण गावैं, पावैं शिवसुख दुःख नसाहीं ।।३।।

गुरु समान दाता नहिं कोई......

गुरु समान दाता नहिं कोई ।।टेक।।
भानु प्रकाश न नाशत जाको, सो अंधियारा डारै खोई ।।१।।
मेघ समान सबन पै बरसै, कछु इच्छा जाके नहिं होई ।
नरक पशू गति आग मांहि तैं, सुरग मुकत सुख थापै सोई ।।२।।
तीन लोक मन्दिर में जानौ, दीपकसम परकाशक लोई ।
दीप तलैं अंधियार भर्यो है, अन्तर बाहिर विमल है जोई ।।३।।
तारन-तरन जिहाज सुगुरु हैं, सब कुटुम्ब डोवै जगतोई ।
'द्यानत' निशिदिन निरमल मन में, राखो गुरु-पद पंकज दोई ।।४।।

नित उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ...

नित उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ, परम दिगम्बर साधु,
महाव्रत धारी ...... धारी ...... महाव्रत धारी ।।टेक।।
राग-द्वेष नहिं लेश जिन्हों के, मन में है.... मन में हैं ।
कनक कामिनी मोह-काम नहीं, तन में है...... तन में हैं ।।
परिग्रह रहित निरारम्भी, ज्ञानी वा ध्यानी तपसी ।
नमो हितकारी.... कारी.... नमो हितकारी ।।१।।
शीतकाल सरिता के तट पर, जो रहते .. जो रहते ।
ग्रीष्मऋतु गिरिराज शिखर चढ, अघ दहते.... अघ दहते ।
तरुतल रहकर वर्षा में, विचलित, न होते लख भय ।
वन अंधियारी... भारी वन अंधियारी ।।२।।
कंचन कांच मसान महल सम, जिनके है..... जिनके है ।
अरि अपमान मान मित्र, सम, जिनके है ... जिनके है ।।
समदर्शी समता धारी, नग्न दिगम्बर मुनिवर ।
भव जलतारी...... तारी भव जल तारी ।।३।।
ऐसे परम तपोनिधि जहाँ जहाँ, जाते हैं.... जाते है ।
परम शान्ति सुख लाभ जीव सब, पाते है... पाते है ।।
भव-भव में 'सौभाग्य' मिले, गुरुपद पूजूँ ध्याऊँ ।
वरूँ शिवनारी..... नारी वरूँ शिवनारी ।।४।।

सुन ज्ञानी प्राणी, श्रीगुरु सीख .....

सुन ज्ञानी प्राणी, श्रीगुरु सीख सयानी ।।टेक।
नरभव पाय विषय मति सेवो, ये दुरगति अगवानी ।।१।।
यह भव कुल यह तेरी महिमा, फिर समझी जिनवाणी ।
इस अवसर में यह चपलाई, कौन समझ उर आनी ।।२।।
चन्दन काठ कनक के भाजन, भरि गंगा का पानी ।
तिल खलि रांधत मंदमती जो, तुझ क्या रीस बिरानी ।।३।।
'भूधर' जो कथनी सो करनी, यह बुधि है सुखदानी ।
ज्यों मशालची आप न देखै, सो मति करै कहानी ।।४।।

४. भगवान आत्मा

जब एक रतन अनमोल है ......

जब एक रतन अनमोल है तो, रत्नाकर फिर कैसा होगा
जिसकी चर्चा ही है सुन्दर, तो वो कितना सुन्दर होगा
कहते अनुपम रसखान है वो, कब स्वाद चखूँ वह क्षण होगा ।।टेक।।
जिसके दीवाने हैं ज्ञानी, हर धुन में वही सवार रहे
बस एक पक्ष और एक लक्ष, हर स्वांस उसी के लिये बहे
जिसको पाकर सब कुछ पाया, उससे भी बढ़कर क्या होगा
जो वाणी के भी पार कहा, मन भी थक कर के रह जाये
इन्द्रियगोचर तो दूर, अतीन्द्रिय के विकल्प में न आये
अनुभवगोचर कुछ नाम नहीं,गुमनाम भी क्या अद्‌भुत होगा
सब अंग पढ़े नौ पूर्व रटे, पर उसका स्वाद नहीं आये
तिर्यंच गति के अनपढ़ भी, ले स्वाद सफल भव कर जाये
जड़ पुद्‌गल तो अनजान स्वयं, ज्ञानार्जन कैसे कर देगा
जिसकी महिमा प्रभु की वाणी, गाती मनमोहक लहराये
ध्रुवधाम गुणों के रत्नाकर, सब हैं परमेश्वर फरमाये
तू माने या ना भी माने, परमात्मपना छल न होगा
कवि क्या मुनि त्यागी हुए थकित,गणधर तक पार नहीं पाये
अनुभूति में तो दर्शन होते, जो होनहार वो लख पाये
बस एक लगन भर हो सच्ची, तुझको निश्चित दर्शन होगा
व्रत प्रतिमा लो उपवास करो, या जंगल में डेरा डारो
या करो पाठ पूजा वंदन, इस तन को खूब सुखा डारो
ज्ञायक तो आनंद खान सहज, जानन में निज दर्शन होगा

मुझे देखना आतमदेव कैसा है . . . .

मुझे देखना आतमदेव कैसा है? देव कैसा है,क्या करता है? ।
वही देवाधि-देव,वही भगवान जो, वही परमेश्वर कैसा है? ।।टेक।।
जाने सभी विश्व,झलके सभी जहां, दर्पण समान देव कैसा है? ।
न्यारा है विश्व से,न्यारा है देहसे,आनंद से एकमेक कैसा है? ।।१।।
जन्मे मरे नहीं,राजा व रंक नहीं, सागर आनंद का कैसा है? ।
आँखों दीखे नहीं,कानों सुने नहीं, ज्ञान में समाया वह कैसा है? ।।२।।

मैं ज्ञायक हूँ मैं ज्ञायक हूँ . . . .

मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, मैं परमानन्द विधायक हूँ ।
निज में ही मंगल रूप सदा, अतीन्द्रिय सुख का नायक हूँ ।।टेक।।
जीवत्व-प्रभुत्व, विभुत्व सहित, कर्तृत्व और भोक्तृत्व रहित ।
अनबद्ध-स्पृष्ट अनन्य सदा, मैं निज-पर का प्रगटायक हूँ ।।१।।
निज पर्यायें भी सहज धरूँ, पर रूप नहीं किंचित होता ।
पर का परिणमन स्वयं ही है, पर कार्य हेतु नहिं लायक हूँ ।।२।।
मै देव नहीं, तिर्यञ्च नहीं, नारक भी नहीं मनुष्य नहीं ।
हूँ नित्य निरंजन देव सदा, रागादि दाह का दाहक हूँ ।।३।।
नहिं कोई शत्रु जगत में है, अरु मित्र नहिं कोई मेरा ।
मैं परद्रव्यों सें भिन्न तथा, काया से रहित अकायक हूँ ।।४।।
मै निराबाध लोकोत्तम हूँ, अनुपम शीतल चित् शक्तिमयी ।
है यद्यपि बल अनन्त मुझ में, पर पर को मैं असहायक हूँ ।।५।।
नहिं कोई सुन्दर शरण मुझे, है व्यर्थ भटकना बाहर में ।
नहिं कोई मुझे मुक्ति दाता, मैं निज को मुक्ति प्रदायक हूँ ।।६।।

भगवान आत्मा आनंदघन है.....

भगवान आत्मा, आनदघन है, चेतन उस पर, दृष्टी कर,
शांत स्वरूप को, लक्ष में ले, हो जाएँगे सब, सकट हर ....
कर्म तुझमें नहीं, राग तुझमें नही,—ऐसा जिनवर ने बतलाया ।
तेरे दोषों से ही बंधन है, — यह पूज्य गुरू ने फरमाया ।
अपने दोषों को दूर करे तो जाये शाश्वत सुख के घर ।।
मैं वस्तुस्वरूप को भूला था, पर-आश्रय में धर्म माना था ।
चेतन तो पर का ज्ञाता है, यह ज्ञानस्वभाव न जाना था ।
पर का अकर्ता, यद्यपि ज्ञाता, — ऐसी सम्यक् श्रद्धा कर ।।
यदि कर्म विकार करायें तुझे, तो कर्माधीन तू हो जाये ।
— ऐसी स्थिति में सुन चेतन! तुझे शाश्वत सुख ना मिल पाये ।
तू चेतन कर्माधीन नहीं, — यह जिनशासन की है मोहर ....

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ,.....

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ।।टेक।।

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गन्ध नहीं ।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ।।१।।
मैं रंग-राग से भिन्न भेद से, भी मैं भिन्न निराला हूँ ।
मैं हूँ अखन्ड चैतन्य पिण्ड, निज रस में रमने वाला हूँ ।।२।।
मैं ही मेरा कर्त्ता धर्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं ।
मैं मुझमें रमने वाला हूँ, पर मैं मेरा विश्राम नहीं ।।३।।
मैं शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक, पर परणति से अप्रभावी हूँ ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ।।४।।

आपा प्रभु जाना मैं जाना.....

आपा प्रभु जाना मैं जाना।।टेक।।

परमेसुर यह मैं इस सेवक, ऐसो भर्म पलाना।।१।।
जो परमेसुर सो मम मूरति, जो मम सो भगवाना।
मरमी होय सोइ तो जानै, जानै नाहीं आना।।२।।
जाकौ ध्यान धरत हैं मुनिगन, पावत हैं निरवाना।
अर्हत् सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, आतमरूप बखाना।।३।।
जो निगोद में सो मुझ माहीं, सोई है शिवथाना।
'द्यानत' निहचै रञ्च फेर नहिं, जानै सो मतिवाना।।४।।

आतम जानो रे भाई.....

आतम जानो रे भाई ! ।।टेक।।

जैसी उज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत ।
काया-करमनसौं जुदी रे, सबको करै उदोत ।।१।।
शयनदशा जागृतदशा रे, दोनों विकलप रूप ।
निरविकलप शुद्धातमा रे, चिदानन्द चिद्रूप ।।२।।
तन वच सेती भिन्न कर रे, मनसों निज लव लाय ।
आप-आप जब अनुभवै रे, तहां न मन-वच-काय ।।३।।
छहौं दरब नव तत्त्व तैं रे, न्यारो आतम राम ।
'द्यानत' जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिवधाम ।।४।।

देवालय में देव नहीं है ......

देवालय में देव नहीं है, मन मंदिर में देव है
अन्तर्मुख हो देख स्वयं तू ,महादेव स्वयमेव है ।।टेक।।
पूर्ण अनादि अनन्त द्रव्य तू है अनन्त गुण का स्वामी
दृग सुख ज्ञान वीर्य का अधिपति परम पूज्य शिव अभिरामी
चेतयिता चैतन्य चिदंकित चिन्मय त्रिभुवन में नामी
सहज सिद्ध सर्वोत्कृष्ट तू सर्व सिद्धियों का स्वामी
फिर भी पर में खोज रहा है तेरी उल्टी टेव है
एक बार पुरुषार्थ जगाकर निज में निज के दर्शन कर
समकित की धारा से धोकर निज स्वरूप अवलंबन कर
शुद्ध ज्ञानगंगा जल पीकर निज में ही अवगाहन कर
सम्यक्चारित्र की तरणी चढ़ निज का ही अभिवादन कर
सिद्ध स्वपद प्रगटेगा निश्चित जो कि अडोल अभेद है
राग द्वेष आस्रव भावों से अब बच-बच कर चलना है
जितने बंध हुए हैं अब तक उनको तप से दलना है
ऋद्धि सिद्धियों में न उलझना यह सब भव की छलना है
तुझको तो आत्मानुभूति कर निज स्वरूप में ढलना है
तू शाश्वत भगवान त्रिकाली तू ही श्रेष्ठ सुदेव है

करौं आरती आतम देवा ....

करौ आरती आतम देवा, गुण-परजाय अनंत अभेवा ।।टेक।।
जामे सब जग जो जगमाही, बसत जगत में जगसम नाही ।।१।।
ब्रम्हा विष्णु महेश्वर ध्यावै, साधु सकल जिहँ को गुण गावै ।।२।।
बिन जाने जिय चिर भव डोले, जिहँ जाने ते शिवपट खोले ।।३।।
व्रती-अविरती विध व्योहारा, सो तिहुँकाल करमसों न्यारा ।।४।।
गुरुशिखउभयवचनकरि कहिये, वचनातीतदशा ते लहिये ।।५।।
स्व-पर भेद को खेद उछेदा, आप आप में आप निवेदा ।।६।।
सो परमातम शिव-सुख दाता,होहि 'विहारीदास' विख्याता ।।७।।

मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक समयसार ....

मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक, समयसार निर्मल, स्वयं ही प्रभू हूँ, स्वयं ही विभु हूँ ।।टेक।।
जहाँ ज्ञान दर्शन सुख वीर्य प्रभुता, स्वच्छत्व विभुता प्रकाशादि अनन्तों ।
समय मात्र में शक्तियाँ हैं उछलतीं, सहज सुख सरोवर मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक ।।१।।
जीवत्व मेरा है स्वाधीन शाश्वत, पराधीन नाही जन्मता न मरता ।
अक्षय अगुरुलघु वैभव है मेरा, मुझ मे सदा से मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक ।।२।।
नहीं पर से लेना नहीं कुछ भी देना, नहीं कुछ कराना नहीं कुछ भी करना ।
हूँ निर्बन्ध पर से सम्बन्ध किंचित्, सहज शान्तिमय हूँ मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक ।।३।।
सदा स्व से अस्ति तथा पर से नास्ति, एक ही समय में अस्ति और नास्ति ।
कथंचित् अवक्तव्य अनुपम चिदात्मा, सहज ज्ञानगोचर मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक ।।४।।
निजरूप निज को निज से लखा प्रभु, निज के लिए और निज में से ही निज को ।
निज भाव ही अधिकरण है मनोहर, जरूरत न पर की मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक ।।५।।
सहज आज छूटे विकल्प सु झूठे, अनुभूति आनन्दमयी आज पाई ।
कहाँ तक कहूँ अब विकल्पो से बस हो, रम जाऊँ निज में मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक ।।६।।

सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी ....

सहजानन्दी शुद्ध स्वभावी, अविनाशी मैं आत्मस्वरूप ।
ज्ञानानन्दी पूर्ण निराकुल, सदा प्रकाशित मेरा रूप ।।टेक।।
स्व-पर प्रकाशी ज्ञान हमारा, चिदानन्द घन प्राण हमारा ।
स्वयं ज्योति सुखधाम हमारा, रहे अटल यह ध्यान हमारा ।।१।।
देह मरे से मैं नहिं मरता, अजर अमर हूँ आत्मस्वरूप ।
देव हमारे श्री अरहन्त, गुरु हमारे निग्रन्थ सन्त ।।२।।
निज की शरणा लेकर हम भी, प्रकट कर परमातम रूप ।
सप्त तत्व का निर्णय कर ले, स्वपर भेदविज्ञान सु करले ।।३।।
निज स्वभाव दृष्टि में धर ले, राग-द्वेष सब ही परिहर लें ।
बस अभेद में तन्मय होवें, भूले सब ही भेद विरूप ।।४।।

मेरा सांई तौ मोमैं नाहीं न्यारा,.....

मेरा सांई तौ मोमैं नाहीं न्यारा, जानैं सो जाननहारा।।टेक।।
पहले खेद सह्यौ बिन जानैं, अब सुख अपरंपारा ।
अनंत-चतुष्टय धारक ज्ञायक, गुन परजै द्रब सारा ।।१।।
जैसा राजत गंधकुटी में, तैसा मुझमें म्हारा ।
हित अनहित मम पर विकलप तैं, करम बंध भये भारा ।।२।।
ताहि उदय गति गति सुख-दुख में, भाव किये दुखकारा ।
काल लब्धि जिन आगम सेती, संशय भरम विदारा ।।३।।
'बुधजन' जान करावन करता, हौंहि एक हमारा

या घटमें परमात्मा चिन्मूरति भइया.....

या घटमें परमात्मा चिन्मूरति भइया ।
ताहि विलोकि सुदृष्टिसों पंडित परखैया ।।टक।।
ज्ञानस्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया ।
तिहूं लोकमे प्रगट है, जाकी ठकुरैया ।।
आप तरै तारें परहिं, जैसें जल नइया ।
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया ।।
देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै बसइया ।
त्रिभुवन मुकुट चहै सदा, चेतौ चितवइया ।।

देखो भाई ! आतम देव विराजै .....

देखो भाई ! आतम देव विराजै।।टेक।।
इस ही हूठ हाथ देवल में, केवल रूपी राजै ।।१।।
अमल उदास जोतिमय जाकी, मुद्रा मंजुल छाजै ।
मुनि जन पूजत अचल अविनाशी, गुण बरनत बुधि लाजै ।।२।।
पर संजोग अमल प्रतिभासत, निज गुण मूल न त्याजै ।
जैसे फटिक पाखान हेत सों, स्याम अरु दुति साजै ।।३।।
सोऽहं पद ममता सों ध्यावत, घट ही में प्रभु पाजैं ।
'भूधर' निकट निवास जासु को, गुरु बिन भरम न भाजै ।।४।।

नर से नारायण बनने का.....

नर से नारायण बनने का मार्ग यही सुखकारी ।टेक।।

महा शक्ति का स्रोत स्वयं तुम, इस रहस्य को जानो ।
विश्व-विराट तुम्हीं हो अपना अन्तर्बल पहिचानो ।
महावीर ने कहा स्वयं को, यदि जान जाओगे ।
जिसके लिये भटकते हो, अपने में ही पाओगे ।।
अमृत घट विडम्बना का, क्यों बनें विनीत भिखारी ।।१।।
अहंकार का अंधकार ही मन को दुख देता है ।
आत्मस्वरूपी दीप्तिमान, छबि को यह ढक लेता है ।।
लक्ष्य 'क्षितिज' को समझा तो, भौतिक अज्ञान बढ़ेगा ।
इसमें चरम लक्ष्य पाने का रूप नहीं निखरेगा ।।
हर चरमोत्कर्ष का, अधिकारी है हर संसारी ।।२।।
लक्ष्य स्वयं ही पाने का, जब आत्म-विवेक जगेगा ।
आत्मा का वास्तविक रूप प्रतिबिम्बित तभी मिलेगा ।।
कितना ही जग छानो, सात्विक जीवन यही टिकेगा ।
मृग मरीचिका में उलझा तो, भव भव में भटकेगा ।।
यहां नहीं है तर्क हीन, अनुदार इजारेदारी ।।३।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित जिनवर पथ दर्शाते हैं ।
इसमें प्रकृति बन्ध कर्मास्रव पास नहीं आते है ।।
अन्यायी प्रतिपक्षी का खोटा सिक्का न चलेगा ।
ऐसा असफल जीवन, गीले ईंधन सा सुलगेगा ।।
दया अहिंसा धार्मिकता आत्मोन्नति मे सहकारी ।।४।।

अब हम आतम को पहचाना.....

अब हम आतम को पहचाना ।।टेक।।

जैसा सिद्धक्षेत्र में राजत, तैसा घट में जाना ।।१।।
देहादिक परद्रव्य न मेरे, मेरा चेतन बाना ।।२।।
'द्यानत' जो जानै सो स्याना, नहिं जानें सो दीवाना ।।३।।

जिसे खोजता फिरता है......

जिसे खोजता फिरता है तू, शिखर सम्मेद व काशी ।
तेरे ही अदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।टेक।।
अपनी भूल न समझी इससे जनम-मरण दुख पाता, ।
स्वर्ग नरक तिर्यच गती में भव भव गोते खाता ।।
बन बन फिरता जिसके खातिर बन साधु संन्यासी ।
तेरे ही अदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।१।।
जाति-धर्म के बन्धन में बँधकर पुरुषार्थ गँवाया ।
या फिर माया के चक्कर में अपने को विसराया ।
लेकिन कभी न सोचा मैं ही सिद्धशिला का वासी ।
मेरे ही अदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।२।।
अपना समझ लिया जिस तन को भक्षाभक्ष खिलाता ।
वह भी तेरे साथ न जाता, माटी में मिल जाता ।
फिर क्यो इसको समझ रहा है अपना जीवन साथी ।
तेरे ही अदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।३।।
निज का 'दर्शन' कर ले तो सब बिगड़ा काम बनेगा ।
तेरे 'ज्ञान' माहि जग का प्रतिबिम्ब स्वयं झलकेगा ।
तब होगा 'चारित्र' आप ही निर्विकार अविनाशी ।
तेरे ही अंदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।४।।
अपने को पहिचान जाग उठ, अब क्यों देर लगाता ।
तुझको तेरे ही अंदर का तारणहार बुलाता ।
'चेतन' नर तन मिला काट ले जन्म-मरण की फाँसी ।
तू ही आत्मानन्द बावरे अजर अमर अविनाशी ।।५।।

देखो जिसे कहता वही.......

देखो जिसे कहता वही बस एक ही यह बात है ।।टेक।।
मठ मन्दिरों या तीर्थ में रहता जगत का नाथ है ।।१।।
पर देह देवल में जिन्हें देते दरस भगवान हैं ।।२।।
वे लाखों में दो चार ही ऐसे पुरुष मतिमान हैं ।।३।।

निजघर नाहिं पिछान्या रे......

निजघर नाहिं पिछान्या रे ।।टेक।।

मोह उदय होने तैं मिथ्या भर्म भुलाना रे ।।१।।
तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।
पुद्‌गल जड़ में राचि भयो तू मूर्ख प्रधाना रे ।।२।।
तन धन जोवन पुत्र बधू आदिक निज माना रे ।
यह सब जाय रहन के नाहीं समझ सयाना रे ।।३।।
बालपना लड़कन संग जोवन प्रिया जवाना रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म भुलाना रे ।।४।।
गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
'बुध महाचन्द' विचारिकै निजपद नित्य रमाना रे ।।५।।

जानत क्यों नहिं रे ......

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतमज्ञानी।।टेक।।

राग-द्वेष पुद्‌गल की सम्पति, निहचै शुद्ध निशानी ।।१।।
जाय नरक पशु नर सुरगति में, यह परजाय विरानी ।
सिद्धस्वरूप सदा अविनाशी, मानत बिरले प्रानी ।।२।।
कियौ न काहू हरै न कोई, गुरु शिख कौन कहानी ।
जनम-मरन मलरहित विमल है, कीच बिना जिमि पानी ।।३।।
सार पदारथ है तिहुं जग में, नहिं क्रोधी नहिं मानी ।
'दौलत' सो घटमाहिं विराजे, लखि हजे शिवथानी ।।४।।

मैं देखा आतमरामा......

मैं देखा आतमरामा ।।टेक।।

रूप फरस रस गंध तैं न्यारा, दरस-ज्ञान-गुनधामा ।
नित्य निरंजन जाकै नाहीं क्रोध लोभ मद कामा ।।१।।
भूख-प्यास सुख-दुख नहिं जाकैं, नाहिं वन पुर गामा ।
नहिं साहिब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ।।२।।
भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्‌गल का जामा ।
'बुधजन' संगति जिनगुरु की तैं, मैं पाया मुझ ठामा ।।३।।

जो एक शुद्ध विकारवर्जित......

जो एक शुद्ध विकारवर्जित, अचल परम पदार्थ है ।
जो एक ज्ञायकभाव निर्मल, नित्य निज परमार्थ है ।।टेक।
जिसके दरश व जानने, का नाम दर्शन ज्ञान है ।
हो नमन उस परमार्थ को, जिसमें चरण ही ध्यान है ।।१।।
निज आत्मा को जानकर, पहिचानकर जमकर अभी ।
जो बन गये परमात्मा, पर्याय में भी वे सभी ।।२।।
वे साध्य है, आराध्य है, आराधना के सार हैं ।
हो नमन उन जिनदेव को, जो भवजलधि के पार हैं ।।३।।
भवचक्र से जो भव्यजन को, सदा पार उतारती ।
जगजालमय एकान्त को, जो रही सदा नकारती ।।४।।
निजतत्त्व को पाकर भविक, जिसकी उतारे आरती ।
नयचक्रमय उपलब्ध नित, यह नित्यबोधक भारती ।।५।।
नयचक्र के सचार मे, जो चतुर हैं, प्रतिबुद्ध हैं ।
भवचक्र के सहार मे, जो प्रतिसमय सन्नद्ध हैं ।।६।।
निज आत्मा की साधना मे, निरत तन मन नगन है ।
भव्यजन के शरण जिनके, चरण उनको नमन है ।।७।।

चेतन ! अब मोहि दर्शन दीजे......

चेतन! अब मोहि दर्शन दीजे ।
तुम दर्शन शिव-सुख पामीजे, तुम दर्शन भव खीजे ।।टेक।।
तुम कारन संयम तप किरिया, कहो, कहां लौं कीजे ।
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी, अन्तरचित्त न भीजे ।।१।।
क्रिया मूढ़मति कहे जन कोई, ज्ञान और को प्यारो ।
मिलत भावरस दोउ न भाखें, तू दोनों तें न्यारो ।।२।।
सब में है और सब में नाहीं, पूरन रूप अकेलो ।
आप स्वभावे वे किम रमतो, तूँ गुरु अरु तूं चेलो ।।३।।
अकल अलख तू प्रभु सब रूपी, तू अपनी गति जाने ।
अगमरूप आगम अनुसारें, सेवक सुजस बखाने ।।४।।

तू स्वरूप जाने बिन दुःखी.....

तू स्वरूप जाने बिन दुःखी, तेरी शक्ति न हलकी वे ।।टेक।।
रागादिक वर्णादिक रचना, सोहै सब पुद्गल की वे ।।१।।
अष्ट गुनातम तेरी मूरति, सो केवल में झलकी वे ।
जगी अनादि कालिमा तेरे, दुस्त्यज मोहन मल की वे ।।२।।
मोह नसैं भासत है मूरत, पंक नसैं ज्यों जल की वे ।
'भागचन्द' सो मिलत ज्ञानसों, स्फूर्ति अखंड स्वबल की वे ।।३।।

नहिं गोरो नहिं कारो चेतन.....

नहिं गोरो नहिं कारो चेतन, अपनो रूप निहारो ।
दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत, सकल करम तें न्यारो ।।टेक।।
जाके बिन पहिचान जगत में, सहचो महा दुख भारो ।
जाके लखे उदय हो तत्क्षण, केवलज्ञान उजारो ।।१।।
कर्मजनित पर्याय पायके, कीनों तहां पसारो ।
आपा-पर को रूप न जान्यो, तातैं भव उरझारो ।।२।।
अब निज में निज कूं अवलोकूं, जो हो भव सुलझारो ।
'जगतराम' सब विधि सुखसागर, पद पाऊँ अविकारो ।।३।।

दुनियाँ में सबसे न्यारा, यह आत्मा.....

दुनियाँ मे सबसे न्यारा, यह आत्मा हमारा ।
सब देखन जाननहारा, यह आत्मा हमारा ।।टेक।।
यह जले नही अग्नि में, भीगे न कभी पानी में ।
सूखे न पवन के द्वारा, यह आत्मा हमारा ।।१।।
शस्त्रों से कटे न काटा, नहिं तोड़ सके कोई भाटा ।
मरता न मरी का मारा, यह आत्मा हमारा ।।२।।
माँ बाप सुता सुत नारी, झूँठे झगड़े संसारी ।
नहिं कोई देत सहारा, यह आत्मा हमारा ।।३।।
मत फँसे मोह ममता में, 'मक्खन' आजा आपा में ।
तन धन कुछ नहीं तुम्हारा, यह आत्मा हमारा ।।४।।

करो मन! आतम वन में केल.....

करो मन ! आतम वन में केल ।।टेक।।

होय सफल नरभव यह दुर्लभ, हो शिवरमणीमेल ।
भवबाधा मिट जाय क्षिनक में, छूटे कर्मनजेल ।।१।।
निजानन्द पावें अविनाशी, मिटि है सकल दलेल ।
निजआतम संग राचो हरदम, हो 'सुखसागर' खेल ।।२।।

अरे हम आतमराम हैं.....

अरे हम आतमराम हैं ।।टेक।।

चेतन ज्योति स्वरूप निरंजन, यों तो हजारो नाम हैं ।।१।।
न हम गोरे श्वेत वरण के, न हम कारे राम है ।
न हम खट्टे न हम मीठे, हम समरस परिणाम हैं ।।२।।
गन्ध न शब्द न हल्के भारी, न हम चिकने चाम हैं ।
न हम देव पशु नर नारक, षण्ड पुरुष नहीं वाम है ।।३।।
क्षत्रिय विप्र न वैश्य न शूद्र, हम निर्भय निष्काम हैं ।
काशी न मथुरा तीर्थ हमारा, हम परमानन्द धाम हैं ।।४।।
न हम रागी, न हम द्वेषी, दोषरहित गुणधाम है ।
है परमातम सिद्ध चिदातम, हम जिनवर 'शिवराम' हैं ।।५।।

अरे मन ! आतम को पहिचान.....

अरे मन ! आतम को पहिचान, जो चाहत निज कल्यान ।।टेक।।
मिल जुल संग रहत पुद्‌गल के, ज्यों तिल तेल मिलान ।
पर है आतम भिन्न पुद्‌गल से, निश्चय नय परमान ।।१।।
इन्द्रिन रहित अमूरत आतम, ज्ञानमयी गुण खान ।
अजर अमर अरु अलख लखै नहिं, आँख नाक मुँह कान ।।२।।
तन सम्बन्धी सुख दुख जाको, करत लाभ नहिं हान ।
रोग शोक नहिं व्यापत जाको, हर्ष विषाद न आन ।।३।।
अन्तरात्मा भाव धार कर, जो पावे निर्वान ।
ज्ञानदीपकी 'ज्योति' जगा लख, आतम अमर सुजान ।।४।।

रे जिय! भजो आतम देव ......

रे जिय! भजो आतम देव लहो शिवपद एव ।।टेक।।
असंख्यात प्रदेश जाके, ज्ञान दरस अनन्त
सुख अनन्त अनन्त वीरज, शुद्ध सिद्ध महन्त ।।१।।
अमल अचल अतुल अनाकुल, अमन अवच अदेह ।
अजर अमर अखय अभय प्रभु, रहित विकलप नेह ।।२।।
क्रोध मद छल लोभ न्यारो, बंध मोक्षविहीन ।
राग दोष विमोह नाही, चेतना गुणलीन ।।३।।
वर्ण रस सुरगंध सपरस, नाहि जामें होय ।
लिंग मारगना नही, गुणथान नाहीं कोय ।।४।।
ज्ञान दर्शन चरन रूपी, भेद सो व्योहार ।
करम करना क्रिया निश्चय, सो अभेद विचार ।।५।।
आप जाने आप करके, आप माही आप ।
यही ब्योरा मिट गया तब, कहा पुन्य रू पाप ।।६।।
है कहैं है नही नाही, स्यादवाद प्रमान ।
शुद्ध अनुभव समय 'द्यानत'. करौ अमृत पान ।।७।।

निजानन्द रूप निरखन को ....

निजानन्द रूप निरखन को, मैं संवर चित में ध्याऊँगा ।
जो आस्रव पाप पुण्य रूपी, न उनमें चित्त लगाऊँगा ।।टेक।।

कभी क्रोधी, कभी मानी, कभी विषयों में रंजा हूँ
विषय विष सम लखा कर मैं, सब आपद को भगाऊँगा

निजातम तत्व है अनुपम, उसी में है जो अनुभूति
वही सत् धाम है सुन्दर, उसी में भव नशाऊँगा

परम सत् धाम निज में है, क्यों बाहर ढूँढता मूरख
स्वपद सुखपद का है दाता, सभी परपद हटाऊँगा

करम पिंजरे को अब तोड़ूँ, मैं देखूँ ज्ञान का मंदिर
वही आनन्द सागर है, वहीं डुबकी लगाऊँगा

बड़ा अचंभा लगता जो तू.......

बड़ा अचंभा लगता जो तू अपने से अनजान है।
पर्यायों के पार देख ले आप स्वयं भगवान हैं।।टेक।।

मन्दिर तीरथ जिनेन्द्र जिनागम उसकी खोज बताते हैं
जप तप संयमशील साधना में उसको ही तो ध्याते है
जब तक उसका पता न पाया दुनिया में भरमाते हैं
चारो गतियों के दुख पाकर फिर निगोद में जाते हैं
पर्यायों को अपना माना यह तेरा अज्ञान है

तू अनन्त गुण का धारी है अजर अमर सत अविनासी
शुद्ध बुद्ध तू नित्य निरंजन मुक्ति सदन का है वासी
तुझमें सुख साम्राज्य भरा क्यों मीन रहे जल में प्यासी
अपने को पहचान न पाया ये है भूल तेरी खासी
तू अचित्य शक्ति का धारी तू वैभव की खान है

तीनों कर्म नहीं तेरे में यह तो जड़ की माया है
तू चेतन है ज्ञानस्वरूपी क्यों इनमें भरमाया है
सुख की सरिता है स्वभाव में जिनवर ने बतलाया है
जिसने अन्तर में खोजा है उसने प्रभु को पाया है
जिनवाणी माँ जगा रही है क्यो व्यर्थ बना नादान है

नव तत्वों में रहकर जिसने अपना रूप नही छोड़ा
आतम एक रूप रहता है नहीं अधिक ना ही थोडा
ये पर्याये क्षणभंगुर हैं इनका तेरा क्या जोड़ा
शुद्ध बुद्ध बन जाता जिसने पर्यायो से मुख मोडा
द्रव्यदृष्टि अपना कर प्राणी बन जाता भगवान है

मैं एक शुद्ध ज्ञाता ....

मै एक शुद्ध ज्ञाता, निरमल स्वभाव राता।।टेक।।
दृग ज्ञान चरण धारी, थिर चेतना हमारी।
तिहुँ काल पर सौं न्यारा, निरद्वंद निर विकारा।।१।।
आनंद कंद चंदा,द्यानत सदा सुखारा।
अब चिदानंद प्यारा, हम आप मे निहारा।।२।।

शुद्धातम शुद्धातम अनुपम है शुद्धातम ....

शुद्धातम शुद्धातम, अनुपम है शुद्धातम ।
जयवन्तो शुद्धातम, शुद्धातम शुद्धातम ।।टेक।।

षट्कारक से भिन्न शुद्ध है, सदा अरूपी एक बुद्ध है ।
सहज स्वयं में पूर्ण पिछाना, अद्भुत महिमावंत सुजाना ।।१।।
अरस अरूपी अस्पर्शी है, अनिर्दिष्टसंस्थान सही है ।
गन्ध शब्द से रहित सु जाना, ज्ञानमूर्ति अव्यक्त पिछाना ।।२।।
अबद्ध-स्पृष्ट अनन्य सु पाया, असंयुक्त अविशेष लखाया ।
नियत एक अनुभव में आया, द्वादशांग का सार बताया ।।३।।
भावान्तरों से न्यारा जाना, परमपारिणामिक पहिचाना ।
पर निरपेक्ष सदा ध्रुव प्यारा नित्य निरंजन देव हमारा ।।४।।
समयसार कारण परमातम, बिन्मूरति चिन्मूरति आतम ।
ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय यही है, एकमात्र आदेय यही है ।।५।।
अद्भुत भाव आज मैं पाया, दिव्य तत्वदृष्टि में आया ।
करना कुछ भी नहीं दिखाता, सहज सुखसागर लहराता ।।६।।
अद्भुत से भी अद्भुत प्यारा, चिद्चिन्तामणि प्रभू हमारा ।
अब भवत्रास न मुझे सतावे, एकरूप अनुभव में आवे ।।७।।

ज्ञानी अपने को पहिचानो ....

ज्ञानी अपने को पहिचानो ।
तू ध्रुव चेतन, देह क्षणिक जड़, भेद ज्ञान कर जानो ।।टेक।।
आतम कब पीता खाता है, जड़ से उसका क्या नाता है ।
वह केवल दृष्टा ज्ञाता है, एकम एक मत मानो ।।१।।
ज्ञान ज्ञेय से सदा भिन्न है, क्यों प्रमुदित क्यों हुआ खिन्न है ।
कौन देवता, कौन जिन्न है, सब पुदगल को बानो ।।२।।
जितने भी पदार्थ हैं प्यारे, द्रव्य दृष्टि से अगर विचारे ।
सब स्वतन्त्र हैं, न्यारे-न्यारे, क्या खोनो, क्या मानो ।।३।।
पर में निज की स्वयं सृष्टि से, भीग रहा मिथ्यात्व दृष्टि से ।
चेत, समय है भेद-दृष्टि से, निज-पर रूप लखानो ।।४।।

ऐसा ही प्रभु मैं भी हूँ.........

ऐसा ही प्रभु मैं भी हूँ, ये प्रतिबिम्ब सु मेरा है।
भली भाँति मैंने पहिचाना, ऐसा रूप सु मेरा है ।।टेक।।
ज्ञान शरीरी अशरीरी प्रभु, सब कर्मों से न्यारा है।
निष्क्रिय परम प्रभु ध्रुव ज्ञायक, अहो प्रत्यक्ष निहारा है ।।१।।
जैसे प्रभु सिद्धालय राजे, वही स्वरूप सु मेरा है।
रागादि दोषो से न्यारा, पूर्ण ज्ञानमय राज रहा ।।२।।
असम्बद्ध सब परभावो से, चेतन वैभव छाज रहा।
बिन्मूरति चिन्मूरति अनुपम, ज्ञायकभाव सु मेरा है ।।३।।
दर्शन ज्ञान अनन्त विराजे, वीर्य अनन्त उछलता है।
सुख सागर अनन्त लहरावे, ओर छोर नही दिखता है ।।४।।
परम पारिणमिक अविकारी, ध्रुव स्वरूप ही मेरा है।
ध्रुवदृष्टि प्रगटी अब मेरे, ध्रुव में ही स्थिरता हो ।।५।।
ज्ञेयो मे उपयोग न जावे, ज्ञायक मे ही रमता हो।
परम स्वच्छ स्थिर आनन्दमय, शुद्ध स्वरूप ही मेरा है ।।६।।

गर आतम ज्ञान हुआ नहिं तो......

गर आतम ज्ञान हुआ नहि तो, ससार-चक्र मे घूमोगे।
जिनने जाना है आतम को, वे साधू हैं, ना भूलोगे... ।।
जिनवर ही है बस एक शरण, परमातम को ना भूलोगे।
शरीरादि तुम नही हुए, आतम ही हो, ना भूलोगे ।।
आतम परमातम है भाई, सत्यारथ को ना भूलोगे।
आतम में आतम को जानो, फिर जन्म-मरण ना झूलोगे ।।
आतम ही है सुख का दाता, परमातम मे फिर झूलोगे।
जिसने शुद्धातम को ध्याया, परमातम हैं ना भूलोगे ।।
यह है अनादि से सत्य एक, इसको तुम कभी ना भूलोगे।
शुद्धातम में ही रम–जम कर, सिद्धातम पद में झूलोगे ।।

प्रानी आतम रूप अनूप है......

प्रानी ! आतम रूप अनूप है, पर तैं भिन्न त्रिकाल ।
यह सब कर्म उपाधि है, राग-दोष भ्रम जाल ।।टेक।।
कहा भयो काई लगी, आतम दरपन माँहि ।
ऊपरली ऊपर रहै, अन्तर पैठी नाँहि ।।१।।
भूलि जेवरी अहि मुन्यो, डूठ लख्यो नररूप ।
त्यों ही पर निज मानिया, वह जड़ तू चिद्रूप ।।२।।
जीव कनक तन मैल के, भिन्न भिन्न परदेश ।
माहै माहैं सध है, मिलै नही लवलेश ।।३।।
घन करमन आच्छादयो, ज्ञानभान परकाश ।
है ज्यो का त्यों शास्वता, रचक होय ना नाश ।।४।।
लाली झलकै फटिक मे, फटिक न लाली होय ।
पर सगति परभाव है, शुद्ध स्वरूप न कोय ।।५।।
त्रस-थावर नर-नारकी, देव आदि बहु भेद ।
निश्चय एक स्वरूप है, ज्यो पट सहज सुफेद ।।६।।
गुण ज्ञानादि अनन्त है, परजय सकति अनत ।
'द्यानत' अनुभव कीजिये याको यह सिद्धन्त ।।७।।

भैया! सो आतम जानो रे ....

भैया! सो आतम जानो रे ।।टेक।।
स्वच्छ स्वभावी आरसी ज्यों, तैसी आतम जोत ।
जदपि भास सब होत है रे, तदपि लेप नहिं होत ।।१।।
ज्ञान दशा अज्ञान दशा रे, दोनों विकलपरूप ।
निरविकलप इक आतमा रे ज्ञायक घन चिद्रूप ।।२।।
तन वच सेती भिन्न कर रे, मन निमित्त चित आन ।
आप आपको ज्ञायक मेरे, रहो न मन को थान ।।३।।
दान शील व्रत भावना रे, शुभ करनी भरमार ।
नंद ब्रम्ह इक ज्ञायक रस रे, चेत चेत भव पार ।।४।।

अब हम अमर भये न मरेंगे.....

अब हम अमर भये न मरेंगे, हमने आतमराम पिछाना ।।टेक।।
जल में गलत ना जलत अग्नि में, असि से कटत न विष से हाना ।
चीर फाड, ना पेरत कोल्हू, लगत न अग्नी वात निशाना ।।१।।
दामिन परत न हरत वज्र गिर, विषधर डस न सके इक जाना ।
सिंह व्याघ्र गज ग्राह आदि पशु, मार सके कोइ दैत्य न दाना ।।२।।
आदि न अन्त अनादिनिधन यह, नहि जन्मा नहि मरत सयाना ।
पाय पाय पर्याय कर्मवश, जीवन मरण मान दुख ठाना ।।३।।
यह तन नशत और तन पावत, और नशत पावत अरु नाना ।
ज्यों बहुरूप धरे बहुरूपी, त्यो बहुस्वाग धरे मनमाना ।।४।।
ज्यों तिल तेल दूध मे घृत, त्यो तन में आतम-राम समाना ।
देखत एक एक ही समुझत, कहत एक ही मनुज अजाना ।।५।।
पर पुद्गल अरु पर यह आतम, नहीं एक दो तत्त्व प्रधाना ।
पुद्गल मरत जरत अरु विनसत, आतम अजर अमर गुणवाना ।।६।।
अमररूप लख अमर भये हम, समझ भेद जो भेद बखाना ।
ज्योति जगी श्रुति की घट अन्तर, 'ज्योति' निरन्तर उर हर्षाना ।।७।।

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम.....

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आतम राम ।।टेक।।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मै हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग वितान ।।१।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिकारी निपट अजान ।।२।।
सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग-रूष दुःख की खान ।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेशनिदान ।।३।।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम , विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्याग पहुँचूँ निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम ।।४।।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम ज्ञायकभाव लखूँ अभिराम ।।५।।

मेरो शरण समयसार.....

मेरो शरण समयसार दूसरो न कोई ।
जा प्रसाद कार्य समयसार सिद्ध होई ।।टेक।।
अविनाशी ब्रह्मरूप, अविचल अज चित स्वरूप ।
शुद्ध बुद्ध स्वतः सिद्ध, जो प्रभु मैं सोई ।।१।।
प्रकट रूप का आधार, निश्चयतः निराधार ।
ये ही गुरु ये ही शिष्य, भक्त प्रभु दोई ।।२।।
समयसार नाहिं जाने, बाहच ज्ञान बहुत जाने ।
भव भव चेतन भटके, सुखी नाहिं कोई ।।३।।
एक समयसार जाने, और कुछ नाहिं जाने ।
समयसार रूप होय, परम सुखी होई ।।४।।
रूप मेरा समयसार, देव गुरु समयसार ।
शास्त्र कहे समयसार, सार यही होई ।।५।।
सहजानन्द सहज ज्ञान, निज परिणति का निधान ।
जिन चीन्हा उन परणति, निर्विकल्प जोई ।।६।।
सुनो समजो समयसार, गावो चिन्तो समयसार ।
श्रद्धो ध्यावो समयसार, समयसार होई ।।७।।

आतम रूप अनुपम अद्भुत.....

आतम रूप अनुपम अद्भुत, याहि लखैं भव-सिन्धु तरो ।।टेक।।
अल्पकाल में भरत चक्रधर, निज आतम को ध्याय खरो ।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे, ततछिन पायौ लोकशिरो ।।१।।
या बिन समुझे द्रव्यलिंगि मुनि, उग्र तपन कर भार भरो ।
नवग्रीवक पर्यन्त जाय चिर, फेर भवार्णव माहिं परो ।।२।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, येहि जगत में सार नरो ।
पूरब शिव को गये जाहि अब, फिर जैहैं यह नियत करो ।।३।।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है, ये ही जिनवानी उचरो ।
'दौल' ध्याय अपने आतम को, मुक्तिरमा तव वेग वरो ।।४।।

देखा जब अपने अन्दर में कुछ.....

देखा जब अपने अन्दर में कुछ, और नहीं भगवान हूँ मैं।
पर्यय ही दीन हीन पामर, अन्दर में वैभववान हूँ मै।।टेक।।
चैतन्य प्राण से जीवित नित, इन्द्रिय बल श्वाशोच्छवास नही।
हूँ आयु रहित नित अजर-अमर, सच्चिदानंद गुणधाम हूँ मैं।।१।।
आधीन नहीं संयोगों के, पर्यायों से अप्रभावी हूँ।
स्वाधीन अखण्ड प्रतापी हूँ, निज से ही प्रभुतावान हूँ मैं।।२।।
सामान्य-विशेषों सहित विश्व, प्रत्यक्ष झलक जावे क्षण में।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी आदिक, सम्यक निधियों की खान हूँ मैं।।३।।
स्वधर्मों में व्यापी विभु हूँ, और धर्म अनन्तोमय धर्मी।
नित निज स्वरूप की रचना से, सामर्थ्य से वीरजवान हूँ मैं।।४।।
तृप्ती आनन्दमयी प्रकटी, देखा जब अन्तर नाथ को मैं।
नहीं रही कामना अब कोई, बस निर्विकार निष्काम हूँ मैं।।५।।
मेरा वैभव शाश्वत अक्षुण, पर से आदान प्रदान नहीं।
त्यागोपदान शून्य निष्क्रिय, और अगुरुलघु शिवधाम हूँ मैं।।६।।

वीतराग निज रूप ना ध्याया ....

वीतरागता रूप बनाकर वीतराग निज रूप ना ध्याया।
ब्राह्य क्रिया में ही तन्मय रह, चेतन ऊपर दृष्टि ना लाया ।।टेक।।
राज काज घर बार छोड भी, जत्र-मंत्र मे ही भरमाया.
पंचेन्द्रिय की ही सम्हाल की, निज स्वरूप ही ना ध्याया।।१।।
पर में मैं कुछ कर सकता हूँ, मिथ्या भ्रम में ही भरमाया।
पर में मैं कुछ कर सकता नहिं, सम्यक् श्रद्धा उर नहिं लाया।।२।।
धर्म-राग में रचा पचा पर, निज के उपर दृष्टि ना लाया ।
बार बार सुर आदि देह लहि, पंच परावर्तन भटकाया ।।३।।
शुद्ध स्वरूप स्वतत्र ना ध्याया, आकुलता में काल गंवाया ।
अब तो ज्ञायक रूप सम्हालूँ, रे मन यह क्यूँ समझ न पाया ।।४।।
चेतन खुद में चेत जरा तू, खुद खुद को पहिचान न पाया ।
मैं तो ज्ञायक रूप सदा ही, जिनवाणी ने सार बताया ।।५।।

दर्शन नहिं ज्ञान चरित्र . . . .

दर्शन नहिं ज्ञान चरित्र, ये सब व्यवहार पसारा
चिन्मय अभेद ध्रुव अनुपम, बस ज्ञायक रूप हमारा
ज्ञायक ही एक सहारा, ज्ञायक ही है तारन हारा
निज ज्ञायक के आश्रय से ही, पावे भव सिन्धु किनारा ।।टेक।।
इन भेदों के द्वारा तो, आत्मा को समझा जाता ।
पर भेद ग्रहण करने से, निर्भेद हाथ नहिं आता ।।
ये आत्मा में ही रहते, पर आत्मा इनसे न्यारा ।
है अतद्भाव दोनों में, गुण गुणी रूप अविकारा ।।१।।
सज्ञा दोनों की न्यारी, संख्या भी अलग अलग है ।
दोनो के भिन्न है लक्षण, प्रयोजन भी पृथक-पृथक हैं ।।
ज्ञानादिक गुण हैं अनंता पर्यायों का नहीं पारा ।
गर्भित है सभी विशेषा, फिर भी विशेष से न्यारा ।।२।।
शुद्धनय का विषयभूत जो, संकल्प-विकल्प न कोई ।
परभाव भिन्न आपूर्णम् आद्यन्त विमुक्त सो होई ।।
है धन्य-धन्य वे ज्ञानी जिनने ये तत्व निहारा ।
सम्पूर्ण विकार मिटाकर निज सुख पाया अविकारा ।।३।।
ज्यों मिश्री ग्रहण किये से, मिठास स्वय ही आवे ।
सामान्य आत्म आश्रय से, रत्नत्रय खुद प्रगटावे ।।
बस ज्ञान इसी को जाना, श्रद्धा ये ही स्वीकारा ।
चरित्र इसमें स्थिरता, ये ही शिवपंथ सुखकारा ।।४।।
अतएव भावना भाता, भेदों में न अटकाऊँ ।
नव-तत्व की सन्तति टूटे, बस एक आत्मा ध्याऊँ ।।
श्रद्धा तो एक रूप हो, अनुभव इक रूप सु सारा ।
इक रूप आत्म में थिर होऊँ, बस एक ही ध्येय हमारा ।।५।।

निरविकलप जोति प्रकाश रही . . . .

निरविकलप जोति प्रकाश रही ।।टेक।।
ना घट अन्तर ना घट बाहिर, वचननि सौं किनहू न कही ।

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारण तरण ....

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारण तरण चेतन प्यारे
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे, तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे ।।टेक।।
ज्ञान से ज्ञान में ज्ञान ही हो, कल्पनाओं का एकदम विलय हो
भ्रान्ति का नाश हो, शान्ति का वास हो ब्रह्म प्यारे
सर्व गतियों में रह उनसे न्यारे, सर्व भावो में रह उनसे न्यारे
सर्वगत आत्मगत, रत नांही विरत, ब्रह्म प्यारे
सिद्धि जिनने भी अबतक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई
मेरे संकट हरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे
देह कर्मादि सब जग से न्यारे, गुण पर्याय भेदों से पारे
नित्य अन्तः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल ब्रह्म प्यारे
आप में आप ही श्रेय तू है, सर्व श्रेयों में नित्य श्रेय तू है
सहजानन्दी प्रभो, अन्तरयामी विभु, ब्रह्म प्यारे

तुम्हारी शान को लख कर......

तुम्हारी शान को लख कर, निजातम ज्योति जगती है ।
तुम्हें जो नयन भर देखे, गति दुर्गति की टलती है ... ।।
नहिं कोई देव है तुमसा, जो भक्तों को खुदा कर दे ।
जो ध्यावे आपको भगवन, वो परमातम परम पद ले ।।
जगत में रागीा द्वेषी क्रोधी, मानी हैं बहुत देव ।
ना तुमसा कोई है गा और ना होगा कोई भी देव ।।
ना रागी हो, ना द्वेषी हो, ना क्रोधी हो, ना मानी हो ।
निजातम में लगी है लौ तुम्ही कैवल्य ज्ञानी हो ।।
तुम्हें जो ध्यायेगा बन्दा, उसे जग में नहिं दुख हो ।
तुम्हें जो पायेगा बन्दा, निजातम पान का सुख हो ।।
हे भगवन! आज तो सौभाग्य मेरे तुमसा प्रभु पाया ।
शरण में आ गया हूँ मैं, लहूँ अब सिद्ध–सी काया ... ।।

वर्ते वर्ते रे श्रद्धान ध्रुव धाम का ....

वर्ते वर्ते रे श्रद्धान ध्रुव धाम का ।
होवे होवे रे थिर ध्यान ध्रुव धाम का ।।टेक।।
ध्रुव ज्ञायक ही देव मम, ध्रुव ज्ञायक ऋषिराज ।
धर्मी ध्रुव ज्ञायक अहो, हुई प्रतीति आज ।।१।।
ध्रुव ज्ञायक ही रूप मम, ध्रुव ज्ञायक ही साध्य ।
कार्यशून्य चैतन्यमय, ध्रुव ज्ञायक आराध्य ।।२।।
महातत्व हूँ एक ही, ध्रुव ज्ञायक अविकार ।
परम ब्रम्ह शाश्वत प्रभो, ध्रुव ही जग में सार ।।३।।
पर्याय और सुभेद की, बात दूर रह जाय ।
ध्रुव सम्बन्धी विकल्प भी, लगते हैं दुःखदाय ।।४।।
बहिर्मुखी उपयोग अब, लाता है अन्तराय ।
धन्य धन्य तब जानिये, ध्रुव ही माँहि समाँय ।।५।।
होने योग्य ही हो सहज, मुझे न कुछ स्वीकार ।
नित्य निरंजन देव ध्रुव, सदा काल अविकार ।।६।।
ध्रुव ही जीवन मंत्र है, ध्रुव ही है सर्वस्व ।
परमपरिणामिक अहो, ध्रुवमय ही मम विश्व ।।७।।

देखो भाई! देव निरंजन राजै ....

देखो भाई! देव निरंजन राजै ।
तीन काल में छबी एक ही, ज्ञायक मय गुण साजै ।।टेक।।
अर्हत सिद्ध सूरि गुरू मुनिवर, पंच नाम इक धारै ।
दरसन-ज्ञान-चरण की मूरति, संशय तिमिर विदारे ।।१।।
ज्ञान विभूति देख आतम की, संत निरंतर गावै ।
केवलज्ञान निधी निजघर की, बाहिर क्यों भरमावे ।।२।।
नंदब्रह्म और नहिं छाड़ैं, मगन भये गुण गावे ।
ज्ञानकला दश दिश में फैली, क्यों इत-उत भरमावै ।।३।।

मगन रहु रे मन! शुद्धातम में....

मगन रहु रे मन! शुद्धातम में ।।टेक।।

राग द्वेष पर को उत्पात, निहचै शुद्ध चेतना जात ।
विधि निषेध को खेद निवारि, आप-आप मे आप निहारि ।।१।।
बंध मोक्ष विकलप करि दूर, आनन्द कन्द चिदातम सूर ।
दरसन ज्ञान चरन समुदाय, 'द्यानत' ये ही मोक्ष उपाय ।।२।।

हे आतमा ! देखी दुति तोरी रे.....

हे आतमा ! देखी दुति तोरी रे ।।टेक।।

निज को ज्ञान लोक को ज्ञाता, शक्ति नही थोरी रे ।
जैसी जोति सिद्ध जिनवर में, तैसी ही मोरी रे ।।१।।
जड नहिं हुवो फिरै जड के वसि, जड की रुचि जोरी रे ।
जग के काजि करन जग टहलै, 'बुधजन' मति भोरी रे ।।२।।

आतम रूप निहारा सुद्धनय....

आतम रूप निहारा सुद्धनय आतम रूप निहारा हो ।।टेक।।

जाकी बिन पहिचानि जगत मे पाया दु:ख अपारा हो ।।१।।
बध मोक्ष बिन एक नियत है निर्विशेष निरधारा हो ।
पर तें भिन्न अभिन्न अनोपम ज्ञायक चित्त हमारा हो ।।२।।
भेदज्ञान रवि घट परकासत मिथ्या तिमिर निवारा हो ।
'मानिक 'बलिहारी तिनकी जिन निज घट माहि सम्हारा हो ।।३।।

जान लियो मैं जान लियो....

जान लियो मैं जान लियो, आपा प्रभु मैं जान लियो ।।टेक।।
परमेश्वर मे सेवक को भ्रम, एक छिनक में दूर कियो ।।१।।
परमेश्वर की मूरत मे ही, ज्ञानसिन्धुमय पेख लियो ।
मरमी होय परख सो जानें, औरन को है सुन्न हियो ।।२।।
याहि जान मुनि ज्ञानध्यान बल, छिन में शिवपद सिद्ध कियो ।
अरहंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, एक आत्म उपदेश कियो ।।३।।
जो निगोद मे सो अपने मे, शिवथानक सोई लखियो ।
'नन्दब्रह्म' यह रञ्च फेर नहिं, बुधजन योग्य जो गहियो ।।४।।

अब मेरे चेतन अनुभव आयो...

अब मेरे चेतन अनुभव आयो, और कछु न सुहायो ।
पर से ममता छूटन लागी, स्व रस सुखानद भायो ।।टेक।।
पर में आपो मान सदा ही, भोगन में लिपटायो ।
जड़ की सेवा युग-युग कीनी, जीवन व्यर्थ गमायो ।।१।।
मिथ्या भ्रम तम भागन लागे, ज्ञान प्रकाश सुहायो ।
वस्तुस्वरूप समझ मैं आयो, झूठो ही भरमायो ।।२।।
ज्ञाता दृष्टा स्वभाव तुम्हारो, सत् गुरू यों समझायो ।
पर में कर्ता बुद्धि हटे अब, स्व मे स्व सुख पायो ।।३।।
जो कुछ होना होता वह है, को परिणमन रुकायो ।
राग द्वेष ममता माया मे, नाहक ही भरमायो ।।४।।
ज्ञान उदधि सुख अमृत पूरण, कैसी प्यास सतायो ।
स्व की ओर निहार 'भवर' अब, सुखसागर लहरायो ।।५।।

ये शाश्वत सुख का प्याला.....

ये शाश्वत सुख का प्याला, कोई पियेगा अनुभव वाला ।।टेक।।
मैं अखण्ड चित् पिण्ड शुद्ध हूँ, गुण अनन्त घन पिण्ड बुद्ध हूँ ।
ध्रुव की फेरो माला, कोई पियेगा अनुभव वाला ।।१।।
मगलमय है मंगलकारी, सत् चित् आनंद का है धारी ।
ध्रुव का हो उजियारा, कोई पियेगा अनुभव वाला ।।२।।
ध्रुव का रस तो ज्ञानी पावे, जन्म मरण के दुःख मिटावे ।
ध्रुव का धाम निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ।।३।।
ध्रुव की धूनि मुनि रमावें, ध्रुव के आनंद में रम जावे ।
ध्रुव का स्वाद निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ।।४।।
ध्रुव का शरणा जो कोई आवे, मोह शत्रु को मार भगावे ।
ध्रुव का पंथ निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ।।५।।
ध्रुव के रस में हम रम जावें, अपूर्व अवसर कब यह पावें ।
ध्रुव का जो मतवाला, वो पियेगा अनुभव वाला ।।६।।

अब हम आतम को पहिचान्यौ.....

अब हम आतम को पहिचान्यौ ।।टेक।।
जब ही सेती मोह सुभट बल, छिनक एक में भान्यौ ।।१।।
राग विरोध विभाव भजे झर, ममता भाव फ्लौंन्यौ ।
दरशन ज्ञान चरन में चेतन, भेद रहित परवान्यौ ।।२।।
जिहि देखैं हम अवर न देख्यो, देख्यो सो सरधान्यौ ।
ताकौ कहो कहैं कैसे करि, जा जानै जिम जान्यौ ।।३।।
पूरब भाव सुपनवत देखे, अपनो अनुभव तान्यौ ।
'द्यानत' ता अनुभव स्वादत ही, जनम सफल करि मान्यौ ।।४।।

आतम अनुभव करना रे, भाई.....

आतम अनुभव करना रे, भाई।।टेक।।
और जगत की थोती बाते, तिनके बीच न परना रे।
काल अनन्ते दिन यो बीते, एकौ काज न सरना रे।।१।।
अनुभव कारन श्री जिनवानी, ताही को उर धरना रे।
या बिन कोउ हितू ना जग मे, छिन इक नाहि विसरना रे ।।२।।
आतम अनुभव तै शिवसुख हो, फेर नही जहाँ मरना रे ।
और बात सब बन्ध करत है या रति बन्ध कतरना रे ।।३।।
पर परिणति ते परवश पर है, ताते फिर दुख भरना रे ।
'चम्पा' याते पर-परिणति तजि, निज रचि काज सुधरना रे ।।४।।

रे भाई! आतम अनुभव कीजै.....

रे भाई! आतम अनुभव कीजै
या सम सुहित न साधन दूजौ, ज्ञान द्रगन लखि लीजै ।।टेक।।
पुदगल जीव अनादि संजोगी, जो तिल तेल पतीजै ।
होत जुदौ तौ मिलौ कहां हैं, खलि सब प्रति दिठि दीजै ।।१।।
जीव चेतनामय अविनाशी, पुदगल जड मिलि छीजै ।
रागादिक परिनमन भूलि निज गये साम्य रंग भीजै ।।२।।
निरउपाधि सरवारथ पूरन, आनन्द उदधि मुनीजै ।
'छत्त' तास गुन रस स्वाद तें, उदभव सुखरस पीजै ।।३।।

सुख तो मात्र स्वरूप दशा में ....

सुख तो मात्र स्वरूप दशा में, बाकी सब तकरार है
अस्थिर, अध्रुव, आकुलता का सागर यह संसार है ।।टेक।।

जन्म, मरण, वृद्धावस्था से बचा कौन सा मीर है
राजा हो या रंक, बँध रहे, कर्मों की जंजीर है
डांस और मच्छर खा जाते, भूख-प्यास की पीर है
हाड़ माँस से बना हुआ, दोषों से युक्त शरीर है,
कभी पेट में पीड़ा होती, होता कभी बुखार है ।।१।।

इच्छित वस्तु चले जाने पर, इधर हो रहा शोक है
पा अनिष्ट संयोग उधर, तिमिराछन्न सारा लोक है
कभी पूजता पीर, कभी स्याने को देता धोक है
इसने मेरा काम बनाया, उसके कारण रोक है
पर संयोगी भाव मान निज, क्यों पड़ा मझधार है ।।२।।

पर का वैभव देख तड़पता, मन में रखता डाह जी
इसको पाऊँ, उसको खाऊँ, सदा भोग की चाह जी
बलवानों से भय, दुर्बल पर क्रोध काम की दाह जी
मान, लोभ, माया में उलझा, नहीं दीखती राह जी
विषयों में आसक्त किसी से द्वेष किसी से प्यार है ।।३।।

भाई! आतम अनुभव करना रे......

भाई! आतम अनुभव करना रे ।।टेक।।
जबलौं भेद-ज्ञान नहिं उपजै, जनम-मरन दुःख भरना रे ।।१।।
आगम पढ़ नवतत्व बखानै, व्रत तप संजम धरना रे ।
आतम-ज्ञान बिना नहिं कारज, जोनी संकट परना रे ।।२।।
सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्यातम के हरना रे ।
कहा करै ते अन्ध पुरुष को, जिन्हैं उपजना मरना रे ।।३।।
'द्यानत' जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे ।
सोऽहं ये दो अक्षर जप कै, भव-जल पार उतरना रे ।।४।।

५. सम्यग्दर्शन

प्राण मेरे तरसते हैं......

प्राण मेरे तरसते हैं कब मुझे समकित मिलेगा ?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।टेक।।
अरे काल अनादि से मै धर्म सुनता आ रहा हूँ,
किन्तु फिर भी आस्रवो के जाल बुनता जा रहा हूँ ।
दिव्यध्वनि के शब्द मेरे कर्ण में तो गूँजते है,
किन्तु मेरे हृदय मे आकर नही क्यो कूजते है ।
पुण्य बेला आयगी कब मन कमल यह कब खिलेगा ?
कब स्वयं से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।१।।
यह न सोचा आत्मा तो ज्ञान का सागर स्वय है,
शुद्ध ज्ञाता विमल दृष्टा गुण अनन्त अतुल नियम है ।
कर्म रज से यह मलिन है किन्तु कचन सम खरा है,
जगत में सुख खोजता जब सुख स्वय मे ही भरा है ।
कर्म रिपु का नाश करने कब निज स्थल मे चलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा? ।।२।।
लिप्त है व्यवहार मे नित नहीं निश्चय दृष्टि इसकी,
बढ रही कर्माभिनय से नित्य प्रति ही सृष्टि इसकी ।
इस प्रकार अनन्त भव घर घर भटकता जा रहा है,
शुभ-अशुभ के बन्धनो मे ही अटकता आ रहा है ।
नष्ट कब मिथ्यात्व होगा ज्ञान कब उर में मिलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।३।।
निर्जरा सवर न समझा आस्रवों मे धर्म माना,
रही मिथ्यादृष्टि मेरी धर्म का ना मर्म जाना ।
पुण्य से ही मोक्ष होगा यही अब तक मानता था,
राग पर से कर रहा था स्व-पर भेद न जानता था ।
दूर होगी भूल कब यह ज्ञानदीपक कब जलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा? ।।४।।

बिना समकित आत्मा का रे नहीं उद्धार होगा,
बिना समकित धर्म से तो मूढ़ निष्फल प्यार होगा ।
कर्म बन्धन तोडने की शक्ति मुझमें ही भरी है,
पर कुमति ने बुद्धि सारी, मोह माया से हरी है ।।
कब सुमति का ध्यान होगा दीप समकित कब जलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा? ।।५।।
यदि न चेता मन अभी भी फिर न यह अवसर मिलेगा,
भ्रमण गति-गति का करेगा सदा भव-भव मे रुलेगा ।
आज फिर नरभव मिला है और जिनवाणी मिली है,
जाग रे मन, चेत रे मन, नींव जडता की हिली है ।।
तत्व का श्रद्धान कर ले रत्न समकित झिलमिलेगा ?
कब स्वयं से प्रीति होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।६।।

.....

अब मेरे समकित सावन आयो

अब मेरे समकित सावन आयो
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ।।टेक।।
अनुभव दामिनि दमकन लागी सुरति घटा घन छायो।
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सुहागिनि भायो।।१।।
गुरु धुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो।
साधक भाव अकुरित उठे बहु, जित तित हरष सवायो।।२।।
भूल धूल कहिं भूल न सूझत, समरस जल भर लायो।
'भूधर' को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो।।३।।

.....

समकित बिन फल नहीं पावोगे

समकित बिन फल नहीं पावोगे, नही पावोगे पछितावोगे ।।टेक।।
चाहे निर्जन तप करिए, बिन समता दुख दाहोगे ।।१।।
मिथ्या मारग निश दिन सेवो, कैसे मुक्ती पावोगे ।
पत्थर-नाव समन्दर गहरा, कैसे पार लंघावोगे ।।२।।
झूठे देव गुरु तज दीजे, नहीं आखिर पछतावोगे ।
'न्यामत' स्यादवाद मन लावो, यासें मुक्ती पावोगे ।।३।।

धनि ते प्रानी, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान.....

धनि ते प्रानी जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान ।।टेक।।
रहित सप्त भय तत्त्वारथ में, चित्त न संशय आन ।
कर्म-कर्मफल की नहि इच्छा, पर में धरत न ग्लानि ।।१।।
सकल भाव मे मूढ़दृष्टि तजि, करत साम्यरस पान ।
आतम धर्म बढावैं वा, पर-दोष न उचरैं वान ।।२।।
निज स्वभाव वा, जैन-धर्म में, निज-पर थिरता दान ।
रत्नत्रय महिमा प्रगटावैं, प्रीति स्वरूप महान ।।३।।
ये वसु अंगसहित निर्मल यह, समकित निज गुन जान ।
'भागचन्द' शिवमहल चढ़न को, अचल प्रथम सोपान ।।४।।

धिक! धिक! जीवन समकित बिना.....

धिक्! धिक्! जीवन समकित बिना ।।टेक।।
दान शील व्रत तप श्रुत पूजा, आतम हेत न एक गिना ।।१।।
ज्यो बिनु कन्त कामिनी शोभा, अंबुज बिनु सरवर सूना ।
जैसे बिना एकड़े बिन्दी, त्यों समकित बिन सरव गुना ।।२।।
जैसे भूप बिना सब सेना, नींव बिना मन्दिर चुनना ।
जैसे चन्द बिहूनी रजनी, इन्हें आदि जानो निपुना ।।३।।
देव जिनेन्द्र, साधु गुरु करुना, धर्मराग व्योहार भना ।
निहचै देव धरम गुरु आतम, द्यानत गहि मन वचन तना ।।४।।

जगत में सम्यक् उत्तम भाई !.....

जगत में सम्यक् उत्तम ।।टेक।।
सम्यक् सहित प्रधान नरक में, धिक् शठ सुरगति पाई ।।१।।
श्रावकव्रत मुनिव्रत जे पालैं, ममता बुद्धि अधिकाई ।
तिनतैं अधिक असंजम चारी, जिन आतम लव आई ।।२।।
पञ्च परावर्तन तैं कीनै, बहुत बार दुःखदाई ।
लख चौरासी स्वांग धरि नाच्यौ, ज्ञानकला नहिं आई ।।३।।
सम्यक् बिन तिहुँ जग दुःखदाई, जहं भावै तहं जाई ।
'द्यानत' सम्यक् आतम अनुभव, सद्गुरु सीख बताई ।।४।।

समकित नींव नहीं डाली चेतन.......

समकित नींव नहीं डाली चेतन, चारित्र महल बनेगा कैसे ।
ज्ञान ध्यान का नहीं है गारा, मन स्थिर चित्त होगा कैसे ।।टेक।।

स्वानुभूतिनारी नहीं ब्याही कुलवन्ति गुणखान शिरोमणि
सहज स्वभावी पुत्र चतुष्टय, गुण अमलान मिलेगा कैसे

एक भाव से कभी न देखा, अनन्त गुण परिवार अनोखा
खंड-खंड में उलझ रहे हो, अखंडता तो मिलेगी कैसे

राग की आग लगी निजघर में, तुम देखो अपने अन्तर में
समता जल संचित नहीं कीना, राग की आग बुझेगी कैसे

दुख को सुखकर मान रहे हो, हलाहल विष पीय रहे हो
मिथ्या मत का चढ़ा जहर तो, अमृतरस छलकेगा कैसे

अनुभव रस को कभी न चाखा, एक बार अंतर नहीं झाँका
इसकारण से मिला न अब तक, ज्ञानसुधा को पाओगे कैसे

करुणा निज की कभी न आई, पर की नित ही दया कराई
श्रद्धा के अंकुर नहीं आये, चारित्र फल तो पकेगा कैसे

जिनके हृदय सम्यक्त ना ....

जिनके हृदय सम्यक्त ना, करणी करी तो क्या करी ।।टेक।।
षट्खंड को स्वामी भयो, ब्रम्हान्ड में नामी भयो ।
दिये दान चार प्रकार के, दीक्षा धरी तो क्या धरी ।।१।।
तिल तुष परीग्रह तज दिये, जिन व्रत्त तप संयम लिये ।
पाली दया षट्काय की, रक्षा करी तो क्या करी ।।२।।
आतम रहा बहिरात्मा, जाना न अंतर आत्मा ।
आतम अनातम ना लखा, भिक्षा करी तो क्या करी ।।३।।
कलपों किया उपदेश कों, छुड़वा दिये दुरभेष कों ।
पहुँचा दिये भवि मोक्ष कों, शिक्षा करी तो क्या करी ।।४।।
गुरु मुनि करंड विषैं कहैं, दृग सुख शुभ उपदेश लहि ।
बिन मूल तरुवर फूल फल, इच्छा करी तो क्या करी ।।५।।

प्रानी समकित ही शिवपंथा.....

प्रानी समकित ही शिवपंथा, या बिन निष्फल सब ग्रंथा ।।टेक।।
जा बिन बाहय-क्रिया तप कोटिक. सकल वृथा है रथा ।।१।।
हयजुतरथ भी सारथ बिन जिमि, चलत नहीं ऋजु पथा ।।२।।
'भागचन्द' सरधानी नर भये, शिव लछमी के कथा ।।३।।

यही इक धर्ममूल है मीता !.....

यही इक धर्ममूल है मीता ! निज समकित सार सहीता ।।टक।।
समकित सहित नरकपद वासा, खासा बुधजन गीता ।
तहंतें निकसि होय तीर्थंकर, सुरगन जजत सुप्रीता ।।१।।
स्वर्गवास हू नीको नाही, बिन समकित अविनीता ।
तहते चय एकेन्द्री उपजत, भ्रमत सदा भयभीता ।।२।।
खेत बहुत जोते हु बीज बिन, रहत धान्य सों रीता ।
सिद्धि न लहत कोटि तप हू ते, वृथा कलेश सहीता ।।३।।
समकित अतुल अखण्ड, सुधारस जिन पुरुषन ने पीता ।
'भागचन्द' ते अजर-अमर भये, तिनही ने जग जीता ।।४।।

आपको जब तक कि दिल में ....

आपको जब तक कि दिल मे, ध्यान से जाना नही ।
मोक्ष की मंजिल तलक, होगा कभी जाना नही ।।टेक।।
आप ही मारग सरल, औ आप ही चलता जहाँ ।
वह चला जाता शिवालय, इस बिना पाना नही ।।१।।
कर तपस्या तन सुखा, उद्यम किया बहुवार भी ।
पर हुआ निज ध्यान की, अग्नि का सुलगाना नहीं ।।२।।
आप ही सुख कूप है, शिव भूप है अनुरूप है ।
ज्ञान दर्शन वीर्य मय, यह भेद पहिचाना नहीं ।।३।।
कर्म कृत रचना कषायो की न मेरा धर्म यह ।
वीतरागी धर्मधारी है, वह कहीं छाना नही ।।४।।
अब तो अपने रूप को, निज रूप मे देखा करूँ ।
सुख-उदधि निज में बसा है, दूर से लाना नहीं ।।५।।

समकित ना लही जी यातैं ....

समकित ना लही जी यातैं रुलो चतुर्गति माहिं ।।टेक।।
त्रस थावर की करुणा पाली, जीव न एक विराधो ।
तीन काल सामाइक साधी, सुध उपयोग न साधो ।।१।।
सांच बोलवा को व्रत लीनो, चोरी को परित्यागी ।
याको फल सुर्गादिक होसी, अन्तर्दृष्टि न जागी ।।२।।
निज-पर तिरिया को त्यागन कर, ब्रह्मचर्य व्रत लीनो ।
व्यवहारादिक मांहि मगन ह्वै, निज कारज नहिं कीनो ।।३।।
बाहिज को सब छाँड परिग्रह, द्रव्य लिंग धर लीनो ।
'देवीदास' कहै या विधि तौ, बहुत वार हम कीनो ।।४।।

जगत में सुखिया सरधावान ....

जगत में सुखिया सरधावान ।
जगत विभूति भूति सम जानत, ठानत भेद-विज्ञान ।।टेक।।
इष्ट-अनिष्ट बुद्धि तज पर में, करत साम्य रस पान ।
शाति सुधा उछलत है जिनके, लोक शिखर अविसान ।।१।।
रक दशा में गिनत आपको, जिनवर सिद्ध समान ।
करम चमू के दलन हेत कर, जिन आज्ञा किरपान ।।२।।
जिनवरजी के हे लघु भ्राता, जग ज्ञाता निज जान ।
कुमग विहाय लगे शिवपथ में, जिन आज्ञा परमान ।।३।।
बाहिज चिन्ह प्रगट कुछु नाहीं, प्रशमादिक पहिचान ।
मानिक तिनके गुण गावत हैं, ते पावत अमलान ।।४।।

सत्य पन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर......

सत्यपन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर, अन्य जगत सब मिथ्या है ।
धर्म निजातम ज्ञान है भाई, ज्ञान बिना सब मिथ्या है ... ।।
ज्ञान निजातम रूप है भाई, बाह्य क्रिया ही मिथ्या है ।
बाह्यक्रिया बिन ज्ञान सधे ना, सद्ज्ञान उदय, जग मिथ्या है ।।
इस मिथ्यात्व गये बिन भाई, सुख का होना मिथ्या है ।
सच्चे जिनवर साधू बनना, धर्म ज्ञान ही सच्चा है ... ।।

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहे रीति .....

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहे, रीति लगत है अटापटी ।।टेक।।
बाहिर नारककृत दु:ख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी ।
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस, परणति तैं नित हटाहटी ।।१।।
ज्ञान-विराग शक्ति तैं विधि-फल, भोगत पै विधि घटाघटी ।
सदन-निवासी तदपि उदासी, तातै आस्रव छटाछटी ।।२।।
जे भवहेतु अबुध के ते तस, करत बन्ध की झटाझटी ।
नारक पशु तिय षट् विकलत्रय, प्रकृतिन की ह्वै कटाकटी ।।३।।
संयम धर न सकै पै संयम, धारन की उर चटाचटी ।
तासु सुयश गुन की 'दौलत' के, लगी रहै नित रटारटी ।।४।।

जग में श्रद्धानी जीव 'जीवन मुकत' हैंगे .....

जग में श्रद्धानी जीव 'जीवन मुकत' हैंगे ।।टेक।।
देव गुरु सांचे मानैं, सांचो धर्म हिये आनै ।
ग्रन्थ ते ही साचे जानैं, जे जिन उकत हैंगे ।।१।।
जीवन की दया पालैं झूठ तजि चोरी टालैं ।
पर-नारी भालैं नैन, जिनके लुकत हैंगे ।।२।।
जीय मैं सन्तोष धारैं, हियैं समता विचारैं ।
आगे को न बन्ध पारै, पाछेसो चुकत हैंगे ।।३।।
बाहिज क्रिया आराधैं, अन्दर सरूप साधैं ।
'भूधर' ते मुक्त लाधैं, कहूँ न रुकत हैंगे ।।४।।

शुद्ध चिद्रूप के गुणगान .....

शुद्ध चिद्रूप के गुणगान को ही गावोजी ।
शुद्ध चिद्रूप के ही ज्ञान मे लग जावोजी ....
लख चौरासी मे बहु भटके हो भाईजी ।
नहीं मिला चिद्रूप ज्ञान ही भाईजी ।।
निज चिद्रूप को श्रद्धान में ही लावोजी ।
शुद्ध चिद्रूप के ही ध्यान में लग जावोजी ।।
अरु अचल परमपद सिद्धातम पद पावोजी...

६. सम्यग्ज्ञान

भेदज्ञान की गिरी बीजुरी......

भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृंग रे।
जड़ पुद्गल से भिन्न आत्मा देखा भव्य उतंग रे।।टेक।।
चिन्मय चेतन शुद्ध आत्मा जड़ पुद्गल यह देह रे।
अंतर्मुख होते ही बरसा निज परणति मेह रे।।
झनन झनन निज वीणा बाजी निज के बजे मृदंग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृंग रे।।१।।
ज्ञात हुआ क्यों था अनादि से चेतन पर का भृत्य रे।
भेद ज्ञान के अवलबन बिन किया जगत में नृत्य रे।।
निज को पर का कर्त्ता माना, सभी ढ़ंग बेढ़ग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृङ्ग रे।।२।।
भेदज्ञान के बिना न मिलता मिथ्या भ्रम का अन्त रे।
भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं जीव अनन्तानन्त रे।।
तीन लोक के ऊपर सिद्धशिला पर शुद्ध स्वरंग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।।३।।
शाश्वत सुख अनन्त का दाता भेदज्ञान विज्ञान रे।
इसके द्वारा एक दिवस मिल जाता पद निर्वाण रे।।
अष्ट कर्म अरि नष्ट करो ले भेदज्ञान की खंग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृंग रे।।४।।
भेदज्ञान की दामिनि दमकी हुआ प्रकाश प्रचंड रे।
राग भिन्न है ज्ञान भिन्न है चेतन द्रव्य अखंड रे।।
निज परणति अनुभूति प्राप्त कर हृदय हुआ अति दंग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृंग रे।।५।।
रूप, गंध, रस स्पर्श रहित है तू स्वतन्त्र निष्काम रे।
अजर अमर अविकल अविनाशी अविरल सुख का धाम रे।।
चिदानन्द चैतन्य अनाकुल पूर्ण ज्ञान निज संग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृंग रे।।६।।

कर लो आतमज्ञान परमातम बन जइयो......

कर लो आतमज्ञान परमातम बन जइयो ।
कर लो भेद विज्ञान ज्ञानी बन जइयो ।।टेक।।
जग झूठा और रिश्ते झूठे, रिश्ते झूठे नाते झूठे ।
साँचो है आतमराम परमातम बन जइयो ।।१।।
कुन्दकुन्द आचार्य देव ने, आतम तत्त्व बताया है ।
शुद्धातम को जान, परमातम बन जइयो ।।२।।
देह भिन्न है आत्म भिन्न है, ज्ञान भिन्न है राग भिन्न है ।
ज्ञायक को पहचान, परमातम बन जइयो ।।३।।
कुन्दकुन्द के ही प्रताप से, ध्रुव की धूम मची है रे ।
धर लो ध्रुव का ध्यान, परमातम बन जइयो ।।४।।

ग्यान बिना दुख पाया रे भाई......

ग्यान बिना दुख पाया रे, भाई ।।टेक।
भौ दस आठउ श्वास श्वास मैं, साधारन लपटाया रे ।।१।।
काल अनन्त यहां तोहि बीते, जब भई मंद कषाया रे ।
तब तू निकसि निगोद सिंधु तैं, थावर होय न सारा रे ।।२।।
क्रम क्रम निकसि भयौ विकलत्रय, सो दुख जात न गाया रे ।
भूख प्यास परवस सही पशुगति, बार अनेक बिकाया रे ।।३।।
नरक माँहि छेदन भेदन बहु, पुतरी अगनि जलाया रे ।
सीत तपत दुरगंध रोग दुख, जानै श्री जिनराया रे ।।४।।
भ्रमत भ्रमत संसार महावन, कबहुँ देव कहाया रे ।
लखि पर विभव सहयौ दुख भारी, मरन समै बिललाया रे ।।५।।
पाप नरक पशु पुन्य सुरग वसि, काल अनन्त गमाया रे ।
पाप पुन्य जब भए बराबर, तब कहुँ नर भौ जाया रे ।।६।।
नीच भयौ फिरि गरभ पड्यौ, फिरि जनमत काल सताया रे ।
तरुन पनौ तू धरम न चेतौ, तन धन सुत लौ लाया रे ।।७।।
दरव लिंग धरि धरि मरि मरि तू, फिर फिर जग भज आया रे ।
'द्यानत' सरधाजुत गहि मुनिव्रत, अमर होय तजि काया रे ।।८।।

शीतल स्वभाव की सरिता में.......

शीतल स्वभाव की सरिता में ज्ञानी की डुबकी लगती है
दिन दूनी और रात चौगुनी समता कान्ति दमकती है
भूल स्वयं के वैभव को यह प्राणी गति-गति जाता है
सुख की गंध न पाता फिर भी मृगसम दौड़ लगाता है
तृष्णा दाह निरन्तर दहती सेवन विषय सुहाता है
सन्निपात का रोगी सा दुख पाकर भी मुसकाता है
सपने-सी माया दुनिया की ज्ञानी को कभी न छलती है ।।१।।

गुरु को करुणा आती तुझ पर समझाते हैं गुणसागर सुन
तू जिन स्वरूप तू ब्रह्म रूप पर भूल गया है अपनी धुन
तू ज्ञायक सब जग जाहिर है तू रत्नाकर सुख का निधान
तू समयसार तू नियमसार तेरा तो प्रवचन भी महान
प्रभु की वाणी तेरी महिमा गाती मनमोहक लगती है
आनंद झरना झरता क्षण-क्षण क्यों तुझे ललक नहीं होती है ।।२।।

अस्ती की मस्ती में ज्ञानी तो सदा सर्वथा रहते हैं
जीवन जीने की कला जगत को मुफ्त बताते रहते हैं
शान्ति सुधारस के झरने झरते वचनामृत खिरते हैं
सारी थकान जिनवर विधान से क्षण भर में हर लेते हैं
श्रद्धा मोती मिल जाने पर मुक्ती बातों में होती है
चरित्र पुष्प भी खिल जाता अरु सहज सुगंधी होती है ।।३।।

ज्ञानी ही ज्ञायक को समझो जिसमें आनंद भण्डार भरा
परिपूर्ण शुद्ध निरपेक्ष तत्व परद्रव्यों से जो भिन्न खरा
जो है अबद्ध अस्पर्शित प्रभु अविशेष अनन्य सु ध्रुव तारा
चिन्तामणि पारस कल्पतरु से बढ़कर जो अनुपम न्यारा
कौतूहल वश भी जो निरखे कुंजी मुक्ति की मिलती है ।।४।।

ज्ञान बिन थान न पावौगे......

ज्ञान बिन थान न पावौगे, गति गति फिरौगे अजान
गुरु उपदेश लहचौ नहिं उर में, गहचौ नहीं सरधान।।टेक।।

विषयभोग में राचि रहे करि, आरति रौद्र कुध्यान।
आन-आन लखि आन भये तुम, परनति करि लई आन।।१।।
निपट कठिन मानुष भव पायौ, और मिले गुनवान।
अब 'बुधजन' जिनमत को धारौ, करि आपा पहिचान।।२।।

संयोगों में ज्ञानी की परिणति ......

संयोगों में ज्ञानी की परिणति नहीं कभी बदलती है ।
ज्ञानोदधि की लहर हृदय में बारम्बार उछलती है ।।टेक।।

जब अंतर उपयोग ढले नय पक्ष सभी मिट जाता है
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय का भी सारा विकल्प हट जाता है
भाव शुभाशुभ के विकल्प भी लेश नहीं निज में होते
निर्विकल्प आत्मानुभूति में निज के ही दर्शन होते
पर विभाव की रंच मात्र भी माया इसे न छलती है ।।१।।

क्रियाकांड के आडंबर से रहित अवस्था होती है
निज स्वरूप में रम जाने की स्वयं व्यवस्था होती है
ज्ञानी को सविकल्प दशा मे भी निज महिमा होती है
सच्चे देव शास्त्र गुरु की भी पावन गरिमा होती है
अप्रमत्त की दशा प्राप्त करने को अरे मचलती है ।।२।।

निज चैतन्य तत्व ही मंगल नमस्कार करने के योग्य
सर्व पदार्थों में उत्तम है आत्म तत्व ही महा मनोग्य
उपादेय है एक मात्र शुद्धोपयोग इस चेतन को
अभूतार्थ तो सदा हेय है मोक्षमार्ग में चेतन को
निज स्वभाव की धारा में ज्ञानी की तरणी चलती है ।।३।।

अस्थिरता के कारण जब भी उपयोग अरे बाहर जाता
पंच परम परमेष्ठी प्रभु का ही बहुमान हृदय आता
इसप्रकार ज्ञायक अपना चैतन्य नगर पा जाता है
एक स्व संवेदन के द्वारा सिद्ध स्वपद प्रगटाता है
स्वपर प्रकाशक ज्ञान ज्योति की एक बार जब जलती है ।।४।।

सो ज्ञाता मेरे मन माना.....

सो ज्ञाता मेरे मन माना, जिन निज-निज पर-पर जाना ।।टेक।।
छहों दरव तैं भिन्न जान कै, नव तत्वनि तैं आना ।
ताकों देखैं ताकों जानैं, ताही के रस साना ।।१।।
कर्म शुभाशुभ जो आवत हैं, सो तो पर पहिचाना ।
तीन भवन को राज न चाहै, यद्यपि गांठ दरब बहु ना ।।२।।
अखय अनन्ती सम्पति विलसै, भव तन भोग मगन ना ।
'द्यानत' ता ऊपर बलिहारी, सोई 'जीवन-मुकत' भना ।।३।।

भाई ! ज्ञानी सोई कहिए.....

भाई ! ज्ञानी सोई कहिये ।।टेक।।
करम उदय सुख-दुःख भोगे तैं, राग विरोध न लहिये ।।१।।
कोऊ ज्ञान क्रिया तैं कोई, शिवमारग बतलावै ।
नय निहचै व्यवहार साधिकै, दोऊ चित्त रिझावै ।।२।।
कोऊ कहै जीव छिनभंगुर, कोई नित्य बखानै ।
परजय दरवित नय परमानै, दोऊ समता आनै ।।३।।
कोई कहै उदय है सोई, कोई उद्यम बोलै ।
'द्यानत' स्यादवाद सु तुला मे, दोनो बाते तौलैं ।।४।।

जानत क्यों नहिं रे.....

जानत क्यों नहिं रे, हे नर ! आतम ज्ञानी ।।टेक।।
राग-दोष पुद्गल की संगति, निहचै शुद्ध निशानी ।।१।।
जाय नरक पशु नर खर गति में, ये परजाय विरानी ।
सिद्धस्वरूप सदा अविनाशी, जानत बिरला प्रानी ।।२।।
कियो न काहू हरै न कोई, गुरु-सिख कौन कहानी ।
जनम-मरन मलरहित अमल है, कीच बिना ज्यों पानी ।।३।।
सार पदारथ है तिहुँ जग में, नहिं क्रोधी नहिं मानी ।
'द्यानत' सो घटमाहिं विराजै, लख हूजै शिवथानी ।।४।।

रे जिय कौन सयाने कीना.....

रे जिय कौन सयाने कीना, पुद्गल कै रस भीना।।टेक।।
तुम चेतन ये जड जु विचारा, काम भया अतिहीना।।१।।
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक, मूरति रहित प्रवीना।
ये सपरस रस गंध वरन मय, छिनक थूल छिन हीना।।२।।
स्व-पर विवेक विचार बिना सठ, धरि धरि जनम उगीना।
'जगतराम' प्रभु सुमरि सयानैं, और जु कछू कमीना।।३।।

जिन स्व-पर हिताहित चीना.....

जिन स्व-पर हिताहित चीना, तिनका ही साचा जीना ।।टेक।।
जिन बुध-छैनी पैनी तैं, जड़ रूप निराला कीना।
पर तैं विरचि आपसे राचे, सकल विभाव विहीना।।१।।
पुन्य पाप विधि बंध उदय में, प्रमुदित होत न दीना।
सम्यग्दर्शन -ज्ञान- चरन निज भाव सुधारस भीना।।२।।
विषयचाह तजि निज वीरज सजि करत पूर्वविधि छीना।
'भागचन्द' साधक ह्वै साधन, साध्य स्वपद स्वाधीना।।३।।

भाई! ज्ञान का राह.....

भाई! ज्ञान का राह सुहेला रे ।।टेक।।
दरव न चहिये, देह न दहिये, जोग भोग न नवेला रे।।१।।
लड़ना नाहीं, मरना नाहीं, करना बेला तेला रे।
पढ़ना नाहीं, गढ़ना नाहीं, नाचन गावन मेला रे।।२।।
न्हाना नाहीं, खाना नाहीं, नाहिं कमाना धेला रे।
चलना नाहीं, जलना नाहीं, गलना नाहीं देला रे।।३।।
जो चित चाहै, सो नित दाहै, चाह दूर करि खेला रे।
'द्यानत' यामें कौन कठिनता, बे-परवाह अकेला रे।।४।।

चाल म्हारा भायला तू ....

चाल म्हारा भायला, तू निजपुर में आज रे ।
सीमंधर का दर्शन करके, सफल करो अवतार रे ।।टेक।।

राग भिन्न है ज्ञान भिन्न है, चेतन द्रव्य अखण्ड रे
जड़ पुद्गल से भिन्न आत्मा, जड़ पुद्गल यह देह रे

भेदज्ञान से सिद्ध हुए हैं, जीव अनन्तानन्त रे
भेदज्ञान के बिना न होता, मिथ्याभ्रम का अन्त रे

दूर क्षण क्षण बीती जीवन घड़ियाँ समय गुजरता जाता रे
एक मोह महल में फँसकर तूने, वीर नाम न जाना रे

झलक तू ले ले चेतन, तेरे अन्दर रहता रे
नहीं वो पास है तेरे, अद्भुत शक्ति वाला रे

सोच समझ कर देख ले चेतन, तेरा रूप निराला रे
पुण्य-उदय अब आया तेरा, सद्गुरु दर्शन पाया रे

कर लो आतमज्ञान, कर लो भेद-विज्ञान ....

करलो आतमज्ञान, करलो भेद-विज्ञान ।
आत्म स्वभाव में तू जमना, फिर न ये नरतन धरना ।।टेक।।

पुण्य उदय से यह भव पाया, फिर भी विषयन में ललचाया
विषय तजो निजहित करना, फिर न ये नरतन धरना

मैं त्रिकाल नहीं पर का स्वामी, सदा भिन्न चेतन जगनामी
निज शाश्वत सुख को वरना, फिर न ये नरतन धरना

कार्य विकल्पों से नहीं होता, मूर्ख व्यर्थ ही बोझा ढोता
निर्विकल्प निजरूप लखना, फिर न ये नरतन धरना

अक्षय पूर्ण स्वयं निज आतम, निर्विकल्प शाश्वत परमातम
ऐसी श्रद्धा अब करना, फिर न ये नरतन धरना

प्रभुवर अब कुछ भी नहीं चाहूँ, निज स्वभाव में ही रम जाऊँ
ज्ञाता-दृष्टा अब रहना, फिर न ये नरतन धरना

रागादिक विकार पुद्गल जड़ ....

रागादिक विकार पुद्गल जड़, ज्ञान चेतनारूप है ।
जब तक है अज्ञान तभी तक, दिखता एक स्वरूप है ।।टेक।।

भेद ज्ञान होते ही दोनों भिन्न दृष्टि में आते हैं
भेद ज्ञान होते ही अन्तर के कपाट खुल जाते हैं
भेद ज्ञान होते ही निज परिणाम विमल हो जाते हैं
भेद ज्ञान होते ही कर्तापन के भाव नशाते हैं
परभावों से भिन्न सुहाता निर्मल सिद्ध स्वरूप है

दो द्रव्यों को एक जानकर सदा दुखी होता आया
पर द्रव्यों से प्रीति पालकर लेश न जग में सुख पाया
चौदह राजु उतंग लोक में तू अब तक भ्रमता आया
बिना भेद विज्ञान विभावों के बन्धन न तुड़ा पाया
जिनकुल जिनश्रुत पाकर भी बना अरे विद्रूप है

आस्रव रहित परम संवर भावों से होता परमानन्द
शुद्ध ज्ञान धर्म आतम के आश्रय से होता है आनन्द
धारावाही ज्ञान पूर्ण निर्झर से झरता ज्ञानानंद
अचल अटल शुद्धात्म तत्व से होता दूर सभी दुख द्वंद
परम ज्योतिमय परम शक्तिमय परम स्वभाव अनूप है

ज्ञान एक है अतुल अनादि अनंत आप ही सिद्ध है
सप्तभयों से रहित सदा यह सम्यक् दृष्टि प्रसिद्ध है
जब तक मिथ्यादृष्टि तभी तक परभावों से विद्ध है
सिद्धसमान सदा होकर भी रहता अरे असिद्ध है
भेद ज्ञान करने से होगा तू त्रिभुवन का भूप है

पानी में मीन पियासी......

पानी में मीन पियासी, मोहे रह रह आवे हाँसी रे।।टेक।।
ज्ञान बिना भव बन में भटक्यो, कित जमुना कित काशी रे ।।१।।
जैसे हिरण नाभि किस्तूरी, वन वन फिरत उदासी रे ।।२।।
'भूधर' भरम जाल को त्यागो, मिट जाये जम की फांसी रे ।।३।।

ज्ञान दुर्लभ है दुनिया में ....

ज्ञान दुर्लभ है दुनिया में धरम सबसे अमोलक है।
यही भगवान ने भाषा, धरम सबसे अमोलक है।।टेक।।
रखो तन अपना धन देकर, बचाओ लाज तन देकर।
धरम पर वार दो सबको, धरम सबसे अमोलक है।।१।।
धरम के सामने सब हेय, राज अरु पाट दुनिया का।
धरम ही सार है जग में, धरम सबसे अमोलक है।।२।।
धरम के वास्ते सीता, किया प्रवेश अगनि में।
राज तज राम वन पहुँचे, धरम सबसे अमोलक है।।३।।
धरम के वास्ते गर जान, भी जाए तो दे दीजे।
समझ लीजे यकीं कीजे, धरम सबसे अमोलक है।।४।।

जगत में ज्ञान की महिमा न्यारी ....

जगत में ज्ञान की महिमा न्यारी।।टेक।।
ज्ञान बिना करनी सब थोथी, जैसे खर पर लादी पोथी
ज्ञान सकल दुःख हारी,जगत में ज्ञान की महिमा न्यारी
ज्ञान बिना नर पशु सम जानो, पूँछ सींग बिन बैल बखानो
ज्ञान बिना है अनारी,जगत में ज्ञान की महिमा न्यारी
भूप हरै नहिं चोर चुरावे, खर्च करे दिन-दिन बढ़ जावे
ज्ञान खजाना भारी,जगत में ज्ञान की महिमा न्यारी
ज्ञान सुधारस अति सुखदाई, इसको पीवो पिलाओ भाई
ज्ञान ही शिव-सुखकारी,जगत में ज्ञान की महिमा न्यारी

बरसत ज्ञान सुनीर हो......

बरसत ज्ञान सुनीर हो, श्री जिनमुख घन सौं।।टेक।
शीतल होत सुबुद्धि मेदिनी, मिटत भवातप पीर।
स्यादवाद नय दामिनि दमकै, होत निनाद गम्भीर।।१।।
करुना नदी बहै चहुँदिशितैं, भरी सो दोई तीर।
'भागचन्द' अनुभव मंदिर को, तजत न संत सुधीर।।२।।

ज्ञानी जीवन के भय होय न या परकार.....

ज्ञानी जीवन के भय होय न या परकार ।।टेक।।
इहभव परभव अन्य न मेरो, ज्ञानलोक मम सार।
मै वेदक इक ज्ञानभाव को, नहिं पर वेदनहार।।१।।
निज सुभाव को नाश न तातैं, चहिये नहि रखवार।
परमगुप्त निजरूप सहज ही, पर का तहँ न संचार।।२।।
चित स्वभाव निज प्रान तास को, कोई नहीं हरतार।
मैं चितपिंड अखंड न तातै, अकस्मात भयभार।।३।।
होय नि:शक स्वरूप अनुभव, जिनके यह निरधार।
मै सो मै, पर सो मैं नाही, 'भागचन्द' भ्रम डार।।४।।

जान जान अब रे, हे नर आतमज्ञानी.....

जान जान अब रे, हे नर आतमज्ञानी ।।टेक।।
राग द्वेष पुद्गल की परिणति, तू तो सिद्ध समानी ।।१।।
चार गति पुद्गल की रचना, तातें कही विरानी ।
सिद्धस्वरूपी जगतविलोकी, विरले के मन आनी ।।२।।
आपरूप आपहिं परमाने, गुरुशिष कथा कहानी ।
जनम- मरण किसका है भाई, कीचरहित है पानी ।।३।।
सार वस्तु तिहुँ काल जगत में, नहिं क्रोधी नहि मानी ।
'नन्दब्रह्म' घट माहि विलोके, सिद्धरूप शिवरानी ।।४।।

ज्ञानी! थारी रीति रौ अचंभौ मोनैं आवै.....

ज्ञानी! थारी रीति रौ अचंभौ मोनैं आवै ।।टेक।।
भूलि सकति निज-परवश ह्वै क्यौं, जनम-जनम दुख पावै ।।१।।
क्रोध लोभ मद माया करि करि, आपौ आप फँसावे ।
फल भोगन की बेर होय तब, भोगत क्यौं पिछतावै ।।२।।
पाप काज करि धन कौं चाहे, धर्म विषै में बतावै ।
'बुधजन' नीति अनीति बनाई, साँचौ सौ बतरावै ।।३।।

ज्ञानी जीव निवार भरमतम......

ज्ञानी जीव निवार भरमतम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसै ।।टेक।।
सुत तिय बन्धु धनादि प्रगट पर, ये मुझतें हैं भिन्न प्रदेशी ।
इनकी परणति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवै वैसै ।।१।।
देह अचेतन चेतन मैं इन, परणति होय एकसी कैसै ।
पूरन-गलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसै ।।२।।
पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट, न वृथा रागरुष द्वन्द भयेसैं ।
नसै ज्ञान निज फंसैं बंध में, मुक्त होय समभाव लयेसैं ।।३।।
विषय-चाह दवदाह नसैं नहिं, बिन निज सुधासिन्धु में पैसैं ।
अब जिनबैन सुने श्रवन तैं, मिटे विभाव करूँ विधि तैसैं ।।४।।
ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहित हेत विलम्ब करेसैं ।
पछताओ बहु होय सयाने, चेतन 'दौल' छुटो भव भयसैं ।।५।।

जगत में आत्मपावन को......

जगत मे आत्मपावन को, समझना काम भारी है।।टेक।।
वही ज्ञानी है जिसने आतम, निधि अनुपम सम्हारी है।।१।।
उन्हें हरवक्त भेदज्ञान की, परम रचना सुहाती है।
कि जिससे आप में आपी, छटा उठती करारी है।।२।।
करोड़ो भाव दिन पर दिन, जो आते है चले जाते।
जो है इक शुध उपयोगी, उसी की शान प्यारी है।।३।।
न भवसागर से है मतलब, न कुछ करना न कुछ धरना।
करो अनुभव सु आतम का, यही शिक्षा सुखारी है।।४।।

मुझे ज्ञानशुचिता सुहाई हुई है......

मुझे ज्ञानशुचिता सुहाई हुई है, परम शान्तता दिल में भाई हुई है ।।टेक।
जहां ज्ञान सम्यक् नहीं खेद कोई, निजानन्द परता जमाई हुई है ।।१।।
नहीं रागद्वेषौ, नहीं मोह कोई, परम-ब्रह्म-रुचिता बढ़ाई हुई है ।।२।।
जगत नाटयशाला नटन जो कि करता वहीं शुद्धता नित्य छाई हुई है ।।३।।
करूँ ध्यान हरदम उसीका खुशी हो, स्व सुखसिन्धु में प्रीति लाई हुई है ।।४।।

निश्चय व्यवहार सुमेल जान......

निश्चय व्यवहार सुमेल जान, आतम लख लीजेजी ।
स्व-पर का भेद यथार्थ जान, निज में जम लीजेजी ।।

भटके हैं हम पक्षों में ही, नहिं सत्य लखा क्योंजी ।
आतम-परमातम बन जावे, जो सत्य लखे निजजी ।।

यह ही हैं जिन अध्यात्म सार, निज में ही रमलोजी ।
रमते-रमते, जमते-जमते, निज में ही जमलोजी ।।

छूटे सब दुःख संसार सदा को, अब निज भजलोजी ।
नहिं बार-बार हो जन्म-मरण, परमातम भजलोजी ।।

शुभ हो अथवा अशुभ कामना ......

शुभ हो अथवा अशुभ कामना , आकुलता की बोरी है।
सतगुरु बारबार समझाते, राग बंध की डोरी है।।टेक।।
हाथी ईख घास दोनों को, एकमेक कर खाता है।
स्वाद कहाँ मीठे फीके का, सबको साथ चबाता है।।
राग और चैतन्य एक-सा, जिसको अनुभव आता है।
उनको कैसे मिले आत्मा, वह संसार कमाता है।।
भेदज्ञान के बिना त्याग बेकार, तपस्या कोरी है।।१।।
जैसे दर्पण में प्रतिबिंबित, होते हाथ-पाँव सारे,।
किन्तु एक अंश न उसका, घुसता दर्पण मे प्यारे।।
वैसे ही जो ज्ञेय ज्ञायक में, झलक रहे मीठे-खारे,।
अपनी-अपनी जगह पड़े हैं, सब के सब न्यारे-न्यारे।।
है स्वतंत्र परिणमन कौन का, बिस्तर किसकी बोरी है।।२।।
जल में नाव रहे क्या खतरा, नहीं डूबने पायेगा।
किन्तु नाँव में जल यदि आया, सबको साथ डुबायेगा।।
जो जग से निर्लिप्त उसे क्या, शंका कौन नचायेगा।
जिसके मन में बसा हुआ, संसार वही अकुलायेगा।।
पर का आलम्बन दुखदाई, क्या हिंसा क्या चोरी है।।३।।

आतम-स्वरूप सार को,.....

आतम-स्वरूप सार को, जाने वही ज्ञानी
है मोक्षपन्थ रूप वही, मोक्ष विज्ञानी ।।टेक।।
है यह अनेक धर्मरूप, गुण मई आतम ।
एकान्त नय ना देख सके, आत्म सुज्ञानी ।।१।।
कोई कहे वह शुद्ध है, कोई कहे अशुद्ध ।
है शुद्ध भी अशुद्ध भी, यह जैन की वानी ।।२।।
है कर्म-बन्ध इसलिये, अशुद्ध यह आतम ।
स्वभाव से है शुद्ध यही बात प्रमानी ।।३।।
कोई कहे है नित्य, कोई, कहे है अनित्य कोई ।
यह नाशरहित गुणमई है नित्य सुज्ञानी ।।४।।
पर्याय पलटता रहे, हो मैल से उजला ।
परिणाम मई तत्त्व में, अनित्यता मानी ।।५।।
करता है निजस्वभाव का, पर का नहीं करता ।
भोगता है स्वस्वभाव का, यह बात सुहानी ।।६।।
है मोह ने अज्ञान में, इसको फँसा डाला ।
सुज्ञान-भाव धारते हो, आतम महानी ।।७।।
भवदधि से निकलने का, यही मार्ग निराला ।
पाता है 'सुख उदधि' को, न जिसका कोई सानी ।।८।।

सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम अकारथ.....

सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम अकारथ जाय ।।टेक।।
अपने सुख में मगन रहत नहिं, पर की लेत बलाय।
सीख सुगुरु की एक न मानै, भवभव मैं दुख पाय।।१।।
ज्यौं कपि आप काठ लीला करि, प्रान तजै बिललाय।
ज्यौं निज मुख करि जाल मकरिया, आप मरै उलझाय।।२।।
कठिन कमायो सब धन ज्वारी, छिन में देत गमाय।
जैसे रतन पाय के भोंदू, बिलखे आप गमाय।।३।।
देव-शास्त्र-गुरु को निहचै करि, मिथ्यामत मति ध्याय।
सुरपति बांछा राखत याकी, ऐसी नर परजाय।।४।।

स्वसंवेदन सुज्ञानी जो......

स्वसंवेदन सुज्ञानी जो, वही आनन्द पाता है
न पर का आसरा करता, सदा निजरूप ध्याता है ।।टेक।।
न विषयों की कोई चिन्ता, उसे बेजार करती है ।
लखा विषरूप है जिसको, वह क्यों कर याद आता है ।।१।।
कषायों की लहरें न हैं, जिसके जल को लहराती ।
जो निश्चल मेरुसदृश है, पवन घन ना हिलाता है ।।२।।
जो चिन्ता है वही दुख है, जो इच्छा है वही दुख है ।
है जिसने अपनी निधि देखी, नहीं फिकरों में जाता है ।।३।।
है तन से गरचे व्यवहारी, मगर मन से रहे निश्चल ।
वही सत ध्यान का कन है, जो कर्मों को जलाता है ।।४।।
सुधा की बूँद लेकर वह, इक सागर बनाता है ।
इसी का नाम 'सुखोदधि' है, उसी में डूब जाता है ।।५।।

ज्ञान को क्या पटके पर माँहि......

ज्ञान को क्या पटके पर माँहि ...... ।
पटकत हो गये काल अनन्तों, भव दुःख मरण लहाय ।।
लख चौरासी दुःख में भइया, सारा जग असहाय ।
राज–सम्पदा छोड़ जगत में, आतम आतम ध्याय ।।
पर को तो इतना ध्याया की, तीन लोक भरमाया ।
जैसी करनी वैसी भरनी, तीन लोक का न्याय ।।
पर से राग-द्वेष तज दीजे, निज आतम को ध्याय ।
मिटे जगत मिथ्यात्व हृदय से, चिनमूरत दर्शाय ।।
चिन्मूरत सुख पाने पर तो, फिर जग नाँहि सुहाय ।
चिन्मूरत ही सार जगत में, जिनवर नाथ कहाय ।।
जिनवर स्वामी बनूँ आप–सा, निज महिमा दर्शाय ।
नमूँ आपको बार-बार मैं, निजानन्द मिल जाय ... ।।

७. सम्यक्चारित्र

जो इच्छा का दमन न हो तो.....

जो इच्छा का दमन न हो तो, चारित्र से शिवगमन नहीं रे ।।टेक।।
अन्नत्याग से मुक्ति होय तो, मृग तृष्णावश जान दई रे ।।१।।
बिन बोले तैं मौनी हो तो, बगुला बैठो मौन गही रे ।
नाम जपे निज नाथ मिलैं तो, तोता निशदिन रटत वही रे ।।२।।
वस्त्रत्याग अरु वन-निवास तैं, जो होवे सो साधु कही रे ।
तो पशु-वस्त्र कभी नहीं पहनत, वन में आयुष बीत गई रे ।।३।।
काया कृश कर कृत नहिं होवे जो इच्छा नहिं दमन भई रे ।
'भोमराज' जो ताहि दमत है, सो पावे है मोक्ष मही रे ।।४।।

अन्तर त्याग बिना बाहिज का.....

अन्तर त्याग बिना बाहिज का, त्याग सुहित साधक नहिं क्यो ही ।
वाहिज त्याग होत अन्तर में, त्याग होय नहिं होय सु योंही ।।टेक।।
जो विधि लाभ उदै बिन बाहिज, साधन करते काज न सीझे ।
बाहिज कारन ते कारज की, उतपति होय न होय लखी जै ।।१।।
देखन जानन तें साधन बिन, सुहित सधे नहिं खेद लहीजै ।
अंध लुंज जो देखत जानत, गमन बिना नहिं सुथल सहीजै ।।२।।
यो साधन बिन साध्य अलभ लखि, साधन विषैं प्रीति कित कीजै ।
'छत्तर' थोथे गाल बजाये, पेट भरे नहिं रसना भीजै ।।३।।

ऐसा ध्यान लगावो.....

ऐसा ध्यान लगावो भव्य जासौं, सुरग-मुक्ति फल पावोजी ।।टेक।।
जामैं बंध परै नाहि आगैं, पिछले बंध हटावोजी ।।१।।
इष्ट-अनिष्ट कल्पना छोड़ो, सुख-दुख एक हि भावोजी ।
परवस्तुनि सों ममत निवारो, निज आतम लौ ल्यावोजी ।।२।।
मलिन देह की संगति छूटै, जामन-मरन मिटावोजी ।
शुद्ध चिदानंद 'बुधजन' ह्वै कै, शिवपुर वास बसावोजी ।।३।।

आतम अनुभव कीजे हो......

आतम अनुभव कीजे हो ।।टेक।।
जनम जरा अरु मरन नाशकै, अनंत काल लौं जीजै हो ।।१।।
देव-धरम-गुरु की सरधा करि, कुगुरु आदि तज दीजै हो ।
छहीं दरब नव तत्त्व परख कै, चेतन सार गहीजै हो ।।२।।
दरब-करम नोकरम भिन्न करि, सूक्षम दृष्टि धरीजै हो ।
भावकरम तैं भिन्न जानि कै, बुधि विलास न मरीजै हो ।।३।।
आप-आप जानै सो अनुभव, 'द्यानत' शिव का दीजै हो ।
और उपाय बन्यो नहिं बनि है, करै सो दक्ष कहीजै हो ।।४।।

जब निज आतम अनुभव आवै......

जब निज आतम अनुभव आवै, और कछु ना सुहावे ।।टेक।।
रस नीरस हो जात ततच्छिन, अक्ष विषय नहीं भावै ।।१।।
गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गल प्रीति नसावै ।
राग दोष युग चपल पक्ष जुत, मन पक्षी मर जावै ।।२।।
ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै ।
'भागचन्द' ऐसे अनुभव को, हाथ जोरि सिर नावै ।।३।।

इक जोगी असन बनावे......

इक जोगी असन बनावे, तस् भखत असन अघ नसन होत ।।टेक।।
ज्ञान-सुधारस जल भर लावे, चूल्हा-शील जलावे।
कर्म-काष्ठ को चुग-चुग जारे, ध्यान-अगनि प्रजलावे।।१।।
अनुभव-भाजन निजगुण-तन्दुल, समता-क्षीर मिलावे।
सोऽहं मिष्ट निशंकित व्यंजन, समकित-छौंक लगावे।।२।।
स्याद्वाद सतभंग मसाले, गिनती पार न पावे।
निश्चयनय का चमचा फेरे, विरद भावना भावे।।३।।
आप बनावे आप ही खावे, खावत नाहिं अघावे।
तदपि मुक्ति पद-पंकज सेवे, 'नयनानन्द' शिर नावे।।४।।

रे जिय! काहे क्रोध करै......

रे जिय! काहे क्रोध करै।।टेक।।
देख के अविवेक प्रानी, क्यों न विवेक धरै ।।१।।
जिसे जैसी उदय आवै, सो क्रिया आचरै ।
सहज तू अपनो बिगारै,जाय दुर्गम परै ।।२।।
होय संगति गुन सबनि को, सरब जग उच्चरै ।
तुम भले कर भले सबको, बुरे लखि मति जरै ।।३।।
वैद्य परविष हर सकत नहीं, आप भखि को मरै ।
बहु कषाय निगोद-वासा, 'द्यानत' क्षमा धरै ।।४।।

मन ! मेरे राग भाव निवार......

मन ! मेरे राग भाव निवार।।टेक।।
राग चिक्कनतैं लगत है, कर्मधूलि अपार ।।१।।
राग आस्रव मूल है, वैराग्य संवर धार ।
जिन न जान्यो भेद यह, वह गयो नरभव हार ।।२।।
दान पूजा शील जप तप, भाव विविध प्रकार ।
राग बिन शिव सुख करत हैं, राग तैं संसार ।।३।।
वीतराग कहा कियो,यह बात प्रगट निहार ।
सोई करसुखहेत 'द्यानत' शुद्ध अनुभव सार ।।४।।

शिवपुर की डगर समरससौं भरी ......

शिवपुर की डगर समरससौं भरी, सो विषय विरसरचि चिरबिसरी ।।
सम्यक् दरश-बोध-व्रतन त्रय भव दुःखदावानल मेघझरी ।
ताहि न पाय तपाय देह बहु, जनम-मरन करि विपति भरी ।।
कालपाय जिनधुनि सुनि मैं जन, ताहि लहूँ सोई धन्य घरी ।
ते जन धनि या माँहि चरत नित, तिन कीरति सुरपति उचरी ।।
विषयचाह भवराह त्याग अब, 'दौल' हरी रजरहसि अरी ।।

जगत् में कोई नहीं रे मेरा.....

जगत् में कोई नहीं रे मेरा
सब संशय को टाल देख लो, आप शुद्ध डेरा।।टेक।।
क्यों शरीर में आपा लखकर, होत कर्म चेरा।
वृथा मोह में फँसकर, करता है मेरा तेरा।।१।।
है व्यवहार असत्य स्वप्न सम, नश्वर उलझेरा।
कर निश्चय का ध्यान कि, जिससे होवे सुलझेरा।।२।।
जीव जीव सब एक सारखे, शुद्ध ज्ञान ढेरा।
नहीं मित्र नहि अरी जगत में, है खूबहि हेरा।।३।।
बैठ आप मे आपो भज लो, वही देव तेरा।
'सुखसागर' पावेगा क्षण मे, होत न जग फेरा।।४।।

आकुलता दुखदाई, तजो भवि.....

आकुलता दुखदाई, तजो भवि ।।टेक।।
अनरथ मूल पाप की जननी, मोहराय की जाई हो।।१।।
आकुलता करि रावण प्रतिहरि, पायो नर्क अघाई हो।
श्रेणिक भूप धारि आकुलता, दुर्गति गमन कराई हो।।२।।
आकुलता करि पांडव नरपति, देश देश भटकाई हो।
चक्री भरत धारि आकुलता, मान भंग दुख पाई हो।।३।।
आकुलता करि कोटीध्वज हू, दुखी होई विललाई हो।
आकुल बिना पुरुष निर्धन हू, सुखिया प्रगट लखाई हो।।४।।
पूजा आदि सर्व कारज मै विघन करण बुधिगाई हो।
मानिक आकुलता बिन मुनिवर, निर आकुल बुधि पाई हो।।५।।

यदि भला किसी का कर न सको.....

यदि भला किसी का कर न सको, तो बुरा किसी का मत करना।
अमृत ना पिलाने को घर मे, तो जहर पिलाने से डरना।।टेक।।
यदि सत्य मधुर न बोल सको, तो झूठ कटुक भी मत बोलो।
यदि मौन रखो सबसे अच्छा, कम से कम विष तो न घोलो।।
बोलो तो पहले तुम बोलो, वचन सुहित बोला करना।।१।।

यदि घर न किसी का बना सको, तो झोपड़ियां न जला देना ।
यदि मरहम पट्टी कर न सको, तो खार नमक न लगा देना ।।
यदि दीपक बनकर जल न सको, तो अन्धकार भी मत करना ।।२।।
यदि फूल नहीं बन सकते हो, तो कांटे बन न बिखर जाना ।
मानव बनकर सहला न सको, तो दिल भी किसी का न दुखाना ।।
यदि देव नहीं बन सकते हो, तो दानव बनकर मत मरना ।।३।।
मुनि पुष्प अगर भगवान नहीं, तो कम से कम इन्सान बनो ।
किन्तु न कभी शैतान बनो, और कभी न तुम हैवान बनो ।।
यदि सदाचार अपना न सको, तो पापों में पग मत धरना ।।४।।

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा ।।टेक।।
कीट पशु का तन जब पाया, तब तू रहचा निकामा ।
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौं न भजै प्रभु नामा ।।१।।
सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊं नरजामा ।
ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत बिनकामा ।।२।।
धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखि भामा ।
काल अचानक झपट खायगा, परे रहैंगे ठामा ।।३।।
अपने स्वामी के पदपंकज, करो हिये विसरामा ।
मैंटि कपट भ्रम अपना 'बुधजन', ज्यौं पावो शिवधामा ।।४।।

करो कल्याण आतम का

करो कल्याण आतम का, भरोसा है न इक पल का ।।टेक।।
ये काया काच की शीशी, फूल मत देखकर इसको ।
छिनक मे फूट जावेगी, कि जैसे बुद-बुदा जल का ।।१।।
यह धनदौलत मकां मदिर, जो तू अपना बताता है ।
कभी हरगिज नही तेरे, छोड जजाल सब जग का ।।२।।
स्वजन सुत मात पितु दारा, सबै परिवार अरु ब्रदर ।
खड़े सब देखते होगे, कूच होगा जभी दम का ।।३।।
बडी अटवी यह जगरूपी, फँसो मत देखकर इसको ।
कहे 'चुन्नी' समझ दिल मे, सितारा ज्ञान का चमका ।।४।।

मुझे है स्वामी उस बल ....

मुझे हैं स्वामी उस बल की दरकार।
जिस बल को पाकर के स्वामी, आप हुये भव पार।।टेक।।
अड़ी खड़ी हों अमिट अड़चनें, आडी अटल अपार।
तो भी कभी निराश निगोडी, फटक न पावे द्वार।।१।।
सारा ही संसार करें, यदि मुझसे दुर्व्यवहार।
हटे न तो भी सत्य मार्ग से, श्रद्धा किसी प्रकार।।२।।
धन वैभव की जिस आँधी से अस्थिर सब संसार।
उससे भी ना जरा डिग पाऊँ मन बन जाये पहार।।३।।
असफलता की चोटों से नहिं मन में पड़े दरार।
अधिक-अधिक उत्साहित होऊँ, मानू कभी न हार।।४।।
दुख दरिद्र रोगादिक से, तन होवे बेकार।
तो भी कभी निरुद्यम हो नहिं बैठूँ जगदाधार।।५।।
देवांगना खड़ी हों सन्मुख, करती अंग विकार।
सेठ सुदर्शनसा मैं होऊँ, लगे न कभी अतिचार।।६।।
जिसके आगे तन-बल धन-बल, तृणवत तुच्छ असार।
पाऊँ प्रभु आत्मबल ऐसा, महामहिम सुखकार।।७।।

जीव स्वतंत्र है कोई बंधन नहीं.......

जीव स्वतंत्र है कोई बंधन नहीं, इसका पुद्गल मे आना गजब हो गया ।।
आपको भूल बैठा जरा लोभ में, पर मे दृष्टि लगाना गजब हो गया ।
राज वैभव मिला इन्द्री सुख भी मिला, तुझको तत्व समझना गजब हो गया ।।
दुर्लभ मानुष जन्म पाके हे आत्मन, तुझको ज्ञानी कहाना गजब हो गया ।
आत्म शक्ति बराबर है हर जीव में, सच्चे ज्ञान का होना गजब हो गया ।।
मिथ्याभाव को लेकर स्वर्ग गया, वहाँ माला मुरझाना गजब हो गया ।
चारों गति में गया सुख कहीं न मिला, सम्यग्दर्शन का पाना गजब हो गया ।।
अपने मंडल में भक्ति का भाव जगा, सच्चे देव गुरु का समागम मिला ।
मेरे आतम में आनन्द की लहरें उठीं, सच्चे दर्शन का पाना सुगम हो गया ।।

तुम राग द्वेष से हटकर ....

तुम राग द्वेष से हटकर, समता रस को अपनाओ।
अरिहन्त परम उपकारी, उनके गुण निश दिन गाओ।।टेक।।
क्यों विषयों में रच पच कर, रह नरभव व्यर्थ गंवाते।
दुर्लभ चिन्तामणि को तुम, कौड़ी के भाव बिकवाते।
तुम धर्म मार्ग पर चलकर, निज जीवन सफल बनाओ।।१।।
पापों से मन को हटाकर, सातों व्यसनों को त्यागो।
मोह-नींद त्याग कर भाई, कर्त्तव्य हेतु अब जागो।
व्रत संयम धारण कर, तुम मोक्षमार्ग अपनाओ।।२।।
प्रभु की वाणी सुनने से, स्व-पर विवेक जगता है।
मिथ्यात्व कालिमा हटकर, सम्यक्त्व सूर्य उगता है।
इसकी किरणों से अपना तुम आतम शुद्ध बनाओ।।३।।

ओ भाया ! थारी बावली जवानी ....

ओ भाया थारी बावली जवानी चाली रे।
भगवान भजन तूँ कद करसी, थारी गर्दन हाली रे ।।टेक।।

लाख चौरासी जीवा झूठा में, मुश्किल नर तन पायो रे।
तूँ जीवन न खेल समझकर, विरथा कियो गवायो रे।
आयो मुठ्ठी बाँध पसार, जासो हाथ खाली रे।।

झूठ कपट से जोड़-जोड़ धन कोड़ा भरी तिजोड़ी रे।
धरम कमाई करो न दमड़ी, कोरी मूँछ मरोड़ी रे।
है मिथ्या अभिमान आँख की, थोथी लाली रे।।

कंचन काया काम न आसी, थारा मोती नाती रे।
आतमराम अकेले जासी, कोई न संगी साथी रे।
जन्तर मन्तर धन लश्कर से, मौत टले न टाली रे।।

आपा पर को भेद समझ ले, खोल हिया की आँख रे।
वीतराग जिन दर्शन तजकर, अड़ि अड़ि मत झांक रे।
पद पूजा सौभाग्य कर ली शिव रमणी ले थारी रे।।

कहाँ-कहाँ तक भटक चुके हो.......

कहाँ-कहाँ तक भटक चुके हो कौन-कौन से गाँव में ।
अब तो आकर बैठो 'भाई' रत्नत्रय की नाव में ।।टेक।।

नर्कों की सुधि भूल गये क्या, जहाँ न सुख का नाम था
मारकाट में उमर बिताई, पल भर नहीं विराम था
भूख प्यास की विकट वेदना से फिरता बौराया था
इसी तरह से तड़फ तड़फ कर अपना प्राण गँवाया था
चल कुमार्ग पर डाल रहे फिर वही बेड़ियाँ पाँव में

एक श्वांस में अठ-दस विरियाँ जन्मा मरा निगोद में
भूल गये वो सारी खबरे इस आमोद प्रमोद में
छेदन-भेदन भूख-प्यास के दुख तिर्यंचगति में पाये
अन्त समय स्वर्गों में रोये सुख न अभी भोग पाये
जहाँ मोक्ष का मार्ग सुलभ है अब आये उस ठाँव में

मगर यहाँ भी चला रहे फिर ढर्रा वही पुराना है
पर को अपना मान रहे हो वह निज को बिसराना है
धन दौलत और ठाठ बाट सब यहीं पड़े रह जायेंगे
दो क्षण में सब छूट जायेंगे, जब जमराजा आयेंगे
फिर ये अवसर नहीं मिलेगा जो चूके इस दांव में

जीवा! काट मोह का जाला ....

जीवा! काट मोह का जाला भेद ज्ञान की छैनी लेकर,तोड़ बन्ध का ताला ।।टेक।।
तू चेतन, अमूर्त, अविनाशी, व्यर्थ घूमता मथुरा काशी ।
निज-स्वरूप का बन विश्वासी, क्या सूखा, क्या आला ।
पर से क्या लेना-देना है, अपनी नाव आप खेना है ।
किसका गढ़, किसकी सेना है, किसका जीजा साला ।।
जग परिणमन स्वयं ही होता, किस पर हँसता, किस पर रोता ।
किसने किसको बांधा जोता, किसने किसे निकाला ।
जड़ की क्रिया हो रही जड़ में, किस पर किसका बता जोर है ।
सब पुद्गल का क्षणिक शोर है, तू निर्दोष निराला ।।

परदेशी प्यारे! कौन है देश.......

परदेशी प्यारे ! कौन है देश तुम्हारा ।।टेक।।
कौन असल में ग्राम तुम्हारा, कौन जगह घर द्वारा ।
कौन तुम्हारे मात पिता हैं, करो रूप विस्तारा ।।१।।

असंख्य प्रदेशी गाँव हमारा, सम्यग्दर्शन द्वारा
ज्ञाता-दृष्टा मात-पिता मम, अनन्त गुण परिवारा

अवगुण अपने आप सुधारो, गुरु का लेय सहारा
और न कोई मित्र जगत में, पार लगावन हारा

देख दोष निज दूर करो सब, रहो कपट से न्यारा
अहँकार आने नहीं पावे, समझो तभी किनारा

विषय-कषाय हैं दुश्मन सारे, करो न प्रेम पसारा
भोग-भोगना सुख स्वरूप का, सुखाभास पर धारा

धन्य भाग सब नर नारी का, पाया नर भव प्यारा
आतम का उपदेश सुनाते, 'भैया' करो सुधारा

चेतन ! इतना तनिक विचारो ....

चेतन इतना तनिक विचारो
मैं आतम हूँ शुद्ध ज्ञान मय, यह शरीर है न्यारो।।टेक।।
यह संसार दु:खों का डेरा, क्यों करता है मेरा तेरा।
पलभर का है यहाँ बसेरा, कोई नहीं हमारो।।१।।

बांध विभाव भाव की पट्टी, कहते हो तुम मीठी खट्टी
शान्त करो भोगों की भट्टी, तृष्णा को जल खारो

छल-बल के विचार हैं गन्दे, तोड़ों मोह जाल के फन्दे
ध्याकर तत्वज्ञान को बन्दे, कर्म बन्ध को टारो

टूटा नहीं मोह का जाला, राग-द्वेष को तूने पाला
व्यर्थ फेरता कोरी माला, मन का मैल उतारो

क्यों करता है व्यर्थ लड़ाई, हिंसा जीवन को दुखदाई
पाटो द्वेष दम्भ की खाई, धर्म हृदय में धारो

मान ले या सिख मोरी .....

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी ।।टेक।।

भोग भुजंगभोग सम जानो, जिन इनसे रति जोरी।
ते अनन्त भव भीम भरे दुःख, परे अधोगति पोरी ।।
बँधे दृढ़ पातक डोरी, मान ले या सिख मोरी ।।१।।

इनको त्याग विरागी जे जन, भये ज्ञानवृषधोरी।
तिन सुख लह्यो अचल अविनाशी, भवफांसी दई तोरी ।।
रमैं आतम रस बोरी, मान ले या सिख मोरी ।।२।।

भोगन की अभिलाष हरन को, त्रिजग सम्पदा थोरी।
यातैं ज्ञानानन्द 'दौल' अब, पियो पियूष कटोरी ।।
मिटै भवव्याधि कठोरी, मान ले या सिख मोरी ।।३।।

जिया तैंने भावलिंग नहिं धारौ .....

जिया तैंने भावलिंग नहिं धारौ नहिं आतमराम विचारौ ।।टेक।।

कै काहू से ममता जोड़ी, कै पर दोष निहारौ।
कै काहू के प्राणघात कर, नरक निगोद सिधारौ ।।१।।

दोय एक षट नव भवमाही, भ्रमत भ्रमत जब हारौ।
अंतिम भव त्रय वक्र प्रथम में, ज्ञान जघन्य उच्चारौ ।।२।।

तहँतैं निकस भटक भववन में, नरभव आय सम्हारौ।
पंचताप तपि सुरपुर पहुँच्यो, पुनि भवसिंधु मंझारो ।।३।।

यह मानुष भव सुकुल पायके रत्नत्रय बिस्तारौ।
दास उदास होउ भोगन ते, वागमन निवारौ ।।४।।

समझ उठ चेत रे चेतन.......

समझ उठ चेत रे चेतन, भरोसा है नहीं पल का।
खड़ी मुख फाडकर मृत्यु, भरोसा है नहीं पल का ।।टेक।।

बालपन खेल मे खोया, जवानी नींद भर सोया
बुढ़ापे में बढी तृष्णा, हुआ नहीं बोझ भी हलका

प्रभु का नाम नहीं लीना, उमर सारी बिता दी यूँ
बुलावा मौत का आया, चखो सब स्वाद निज फल का

सिफारिश भी नहीं चलती, किसी की मौत के आगे
राम रावण बली हारे, पता जिनका न था बल का

विजय गर मृत्यु पर चाहो, करो निज आत्म का चिन्तन
ज्ञान का दीप जागेगा, दिखेगा मार्ग शिवपुर का

बार-बार कब मिला किसी को.......

बार-बार कब मिला किसीको, सोच समझ कुछ बावरे।।
पुण्य उदय से नर तन पाया, चूक न जावे दाँव रे। ।।टेक।।

धन यौवन क्षणभंगुर भाई, व्यर्थ बजावे गाल क्यों।
सब पुद्गल का खेल तमाशा, नाचे दे दे ताल क्यों।
सीधी-सीधी राह छोड़कर, चलता तिरछी चाल क्यों।
वीतरागता के अनुयायी, इतनी ढीलम ढाल क्यों।
खेले खेल अनन्तवार पर पूर्ण हुआ कब चाव रे।

देव भावना भाते जाने, कब नरतन मिल पावेगा।
संयम तप चारित्र धारने का शुभ मौका आवेगा।
विषय भोग जहरीले कीड़े, राग डसेगा खायेगा।
यह अवसर गर गया हाथ से, फिर पीछे पछतायेगा।
मन को जीत दिखा आतमबल, चूक न जावे दाव रे।

किसका हाथी किसका घोड़ा, किसकी मोटर रेल जी।
पड़ा रहेगा बोरी बिस्तर, किसका किससे मेल जी।
आज महल में ऐश कर रहा, कल हो जाती जेल जी।
यह संसार दुरंगा अद्भूत, कर्म खिलाते खेल जी।
देह विनाशी ममता फांसी, तू अविनाशी राव रे।

पर का अवलंबन दुखदाई, निज का निज में नूर हो।
मैं अरूपी अविनासी चेतन, यह श्रद्धा भरपूर हो।
भेद ज्ञान की जले रोशनी, मोह अंधेरा दूर हो।
संशय भगे जगे पुरुषारथ, कर्म शिला चकचूर हो।
सम्यग्दर्शन एक दवा है, जो भरती भव घाव रे।
पुन्य उदय से नरतन पाया चूक न जावें दाँव रे।

जड़ नश्वर, पौद्गलिक ....

जड़, नश्वर, पौद्‌गलिक, कष्ट का कूप रंगीला चीर है ।
सप्त धातुमय दुर्गन्धित, दोषों से युक्त शरीर है ।।टेक।।

मैं ऊँचे कुल का, वह नीचा, मैं लम्बा, वह छोटा है
मैं दुर्बल, वह सबल, धनी मैं, उसके घर में टोटा है
द्रव्य एक पर्याय अनेकों, क्या प्याली, क्या लोटा है
मोही प्राणी, देह दशाएँ अपनी मान अधीर है

जब देखो तब अज्ञानी के, मन में तन का ध्यान है
उसके लिए ठाठ सब रचता, करता भोजन पान है
चन्दन लगा वस्त्र पहनाता, रात दिवस हैरान है
किसी तरह हो स्वस्थ, सबल तन, एक यही अरमान है
आत्म-द्रव्य का विश्वासी हो, सच्चा शाह अमीर है

सूक्ष्म, अतीन्द्रिय, अमर आतमा का जिसको विश्वास है
उसको जन्म-मरण क्या, उसकी सदा सुहागिन सांस है
जिसने निज-स्वरूप पहिचाना, नहीं देह का दास है
आग लगे, या ओले बरसे, वह अमृत के पास है
शुद्ध-आत्मा की श्रद्धा ही, सच्ची शान्ति कुटीर है

तू तो जग उठ चेतन वीर ....

तू तो जग उठ चेतन वीर ।।टेक।।

आतमदेव न कभी भूलना, ज्ञान करो गुणधीर
इस पलने में झूल चुकें हैं, कैसे कैसे वीर

अनादिकाल से भ्रमता आया, तज कुटेव रणधीर
सम्यक् रतन को पाले चेतन, जगमग हो तकदीर

विषय हलाहल बहुत पिया है, पीलो जिन वृष नीर
पंच गुरु की शरण रहोगे, पाओ चेतन हीर

चार गति का झूलना तो, दुखदायक भवनीर
गुणस्थान का झूलना है, सहज शांत गंभीर

जग में जो कुछ देख रहे.......

जग में जो कुछ देख रहे, सब जड़-चेतन का खेल है ।
हम तुम तब तक बोल रहे हैं, जब तक इनका मेल है ।।टेक।।

पता नहीं कब इस शरीर से, कौन द्रव्य कम हो जाये
और हमारी आशाओं पर वज्रपात कब हो जाये
जिनके हेतु कमा रहे धन, तज कर अपने ध्येय को
वही जलायेंगे मरघट में, ले जाकर इस देह को
काल कुल्हाड़ा लिये खड़ा, बस दो स्वाँसों का खेल है

मैं या मेरा के चक्कर में, फँसा हुआ संसार है
मिथ्या भ्रम में पड़कर प्राणी, भूला सुख का द्वार है
जड़ का चेतन बना पुजारी, खोकर अपने सत्य को
पर को अपना समझ रहा है, भूला असली तत्व को
जिसने अपने को पहचाना, छूटी उसकी जेल है

चारों गति में भटका लेकिन, मिला न कहीं ठिकाना है
मृगतृष्णा वश पर के पीछे, बना फिरा दीवाना है
विषय-वासना का विष पीकर, आतम रस नहिं जाना है
निजानंद को भूला चेतन, सुख का जहाँ खजाना है
मिली मोक्ष जाने को 'काका', यह काया की रेल है

यह धर्म है आतमज्ञानी का ....

यह धर्म है आतमज्ञानी का, सीमंधर महावीर स्वामी का ।
इस धर्म का भैय्या क्या कहना, यह धर्म है वीरों का गहना ।टेक।।

यहाँ समयसार का चिंतन है, यहाँ नियमसार का मंथन है
यहाँ रहते है ज्ञानी मस्ती में, मस्ती है स्व की अस्ति में

अस्ति में मस्ती ज्ञानी की, यह बात है भेदविज्ञानी की
यहाँ झरते हैं झरने आनंद के, आनंद ही आनंद आतम में

यहाँ बाहुबली से ध्यानी हुए, यहाँ कुन्दकुन्द से ज्ञानी हुए
यहाँ वीर प्रभु ने ये बोला, है जैनधर्म ही अनमोला

जगत में आयो न आयो.....

जगत में आयो न आयो, नाहक जन्म गमायो ।।टेक।।
मात उदर नव मास बस्यो तें, अंग सकुच दुख पायो ।
जठर अग्नि की ताप सही नित, अधो शीश लटकायो ।।१।।
निकसि अतिरुदन करो, नाहक जन्म गमायो ।
बालपने में बोधविवर्जित, मात-पितादि लड़ायो ।।२।।
तरुण भयो तरुणी रस राच्यो, काम भोग ललचायो ।
दरब संच कों धायो, नाहक जन्म गमायो ।।३।।
विरह भयो बल पौरुष थाक्यो, बाढ्यो मोह सवायो ।
दृष्टि घटी पलटी तन की छवि, डर्यो डर्यो विललायो ।।४।।
कुटुम ना काम में आयो, नाहक जन्म गमायो ।
देव धरम गुरु भेद न जान्यो, अमृत तज विष खायो ।।५।।
कौड़ी एक कमाई नाहीं, गाँठि को मूल गमायो ।
'चेत' चित लेख सुनायो, नाहक जन्म गमायो ।।६।।

भैया! धोखे में मत आना.....

भैया! धोखे में मत आना ।।टेक।।
जिनको तू परिवार कहत है, वह मतलब की खाना ।
पाप करा मरघट में फूँके, रहिबो है पछताना ।।१।।
जिसको प्यारी नारि कहे तू, पास न उसके जाना ।
राध रुधिर मल पूरित तन में, होता मूर्ख दिवाना ।।२।।
जिसको तू धन सम्पत्ति कहता, वह है विपत्ति निदाना ।
तृष्णा का दृढ़ बन्धन बाँधे, क्लेश दिखावें नाना ।।३।।
पंच इन्द्री के भोग विषय में, जिनमें रहियो लुभाना ।
चखत मधुर विषफल सम लागे, करें हैं दुर्गति नाना ।।४।।
मुट्ठी बाँध 'मनोहर' आया, हाथ पसारे जाना ।
दो दिन का यह खेल तमाशा, मिट्टी में मिल जाना ।।५।।

अब तक बहुत सुनी रामायण ....

अब तक बहुत सुनी रामायण रामचन्द्र के नाम की
आओ आज सुनो रामायण अपने आतम राम की ।।टेक।।

यह तन अयोध्या इसमें इतना सिर्फ सुभीता है
जहाँ आत्मा राम बस रहे संग समता सी सीता है
फिर भी शांति नहीं पल भर को तृष्णा रोज जलाती है
ममता की मन्थरा सुमति की केकई को भड़काती है
इन्द्रिय के दशरथ बेबश हो ऐसे वचन सुनाते हैं
तभी आत्माराम चतुर्गती वनोवास को जाते हैं
जहाँ उमर के हर सूरज ने चलकर अब तक शाम की

जाने कितनों का प्रिय हमने वनोवास यों देखा है
पंचशील की पंचवटी पर रही न लक्ष्मण रेखा है
तृष्णा मृग के पीछे दौड़ा आतमराम दिखाता है
छल का रावण सदाचरण की सीता हरता जाता है
अब लज्जित संयम लक्ष्मण का जो हो जाये थोड़ा है
भ्रात धर्म के भरत शत्रुघन सबने हाथ सिकोड़ा है
अबके विश्वामित्र मित्र कवि चलें चाल बेकाम का

ऐसा क्यों होना है बोलों, इसका यह क्या कारण है
एक नहीं दो नहीं हजारों इसके मिले उदाहरण हैं
अहिरावण के कर्म आज बन रहे हमारे भूषण हैं
कर्मों से हम कुम्भकरण है छलबल से खरदूषण हैं
जहाँ मान का मान चित्र हम अपने मन में लाते है
तभी वहाँ हम राम न होकर झट रावण बन जाते है
जो अपना संहार करा दे वह लंका किस काम की

जो कुछ हुआ हुआ जाने दो अब ऐसा अभियान करो
अनुभव के तुम जामवंत से जीवन की पहिचान करो
दृढ़ता के अंगद के द्वारा तुम अपना ही मनन करो
निज पौरुष के हनुमान बन दुष्कर्मों का हनन करो
भक्ति का पा भव्य विभीषण स्व पर का उद्धार करो

रागद्वेष के मरे निशाचर व्रत वाणों का बार करो
सरस सभी की यह रामायण है यह सबके काम की

.....

समझ कर देख ले चेतन

समझ कर देख ले चेतन, जगत बादल की है छाया
कि जैसे ओस का पानी, या सुपने में मिली माया।।टेक।।
कहाँ है राम औ लक्षमन, कहाँ सीता सती रावन।
कहां है भीम औ अर्जुन, सभी को काल ने खाया।।१।।
जमाये ठाट यहां भारी, बनाये बाग महल वारी।
यह संपति छोड गये सारी, नही रहने कोई पाया।।२।।
क्यों करता तू तेरी मेरी, नही मेरी नही तेरी।
हो पलकी पल मे सब ढेरी, तुझे किसने है बहकाया।।३।।
किसी का तू नही साथी, न तेरा कोई सगाती।
यूं ही दुनिया चली जाती, न कोई काम कुछ आय।।४।।
महादुर्लभ है ये नरभव, रहा है मुफ्त मे क्यो खो।
अरे 'शिवराम' ना अब सो, कि अवसर तेरा बन आया।।५।।

.....

इतनी निगाह रखना,

इतनी निगाह रखना, जब प्राण तन से निकले।
समभाव सुधा पीना, जब प्राण तन से निकले।।टेक।।
सुत मात तात परिजन, संसार के मुसाफिर।
इनमें न मोह लाना, जब प्राण तन से निकले।।१।।
धन सम्पदा है माया, चक्री भी यासो हारे।
इनका समान तजना, जब प्राण तन से निकले।।२।।
विषफल समान सुन्दर, दुख पाक भोग जग के।
इनसे न प्यार करना, जब प्राण तन से निकलें।।३।।
क्या भोग भोग डाले, भोगों से खुद भुगे हम।
इनका न ख्याल करना, जब प्राण तन से निकले।।४।।
चैतन्य चिन्ह चेतन, चिन्तन से चेत जाना।
डरना न जिन 'मनोहर', जब प्राण तन से निकले।।५।।

संभल-संभल पग रखो बटोही.......

संभल संभल पग रखो बटोही उलझन यहाँ विशेष है ।
आ मत जाना यहाँ कहीं चक्कर में यह परदेश है ।।टक।।

अपनी तरफ देखना राही, पर पर नजर न फेकना
वरना जाने कहाँ-कहाँ के पड़े तुम्हें दुख देखना
कहता हूँ दो टूक बात यह, दिन ही अथवा रैन है
प्रिय पर का संयोग यहाँ सहयोग रूप दुख देन है
इसको अपना गिना इसी से पाता रहा कलेश है

पर पूजा से चाहा सब कुछ लाग के बाजी जान की
पर खुद में जो खुदा बसा है उसकी कब पहचान की
आपा पर को परख तभी हो भव भटकन का खात्मा
खुद को जाने बिना कोई बन सका नहीं परमात्मा
इसी भूल के कारण भटका तू धर धर हर वेष है

संभला नहीं अभी तक की भूलों से तू कुछ सीखकर
जब-जब कहा उतारी पर पर भूल स्वयं की खोजकर
तन्मयता से करो तत्व निर्णय तब ही यह ज्ञात है
अपना दोष दूसरों के माथे मड़ना मिथ्यात है
यह कुटुम्ब छोड़ेगा जिस दिन रहे न तन-मन द्वेष है

तर्क न इसमें फर्क न इसमें सुनो बात यह ध्यान से
पर के कारण नहीं दुखी तूं है अपने अज्ञान से
अभी समय है अगर हटा दे जो स्व पर छाप है
तो बाहर का हर विकार भागेगा अपने आप है
कथन 'सरस' का नहीं अरे यह महावीर संदेश है

सदा सन्तोष कर प्राणी.......

सदा सन्तोष कर प्राणी, अगर सुख से रहा चाहे ।
घटा दे मन की तृष्णा को, अगर अपना भला चाहे ।।टेक।।

आग में जिस कदर ईंधन, पडेगा ज्योति ऊँची हो
बढ़ा मत लोभ की तृष्णा, अगर दुःख से बचा चाहे

वही धनवान है जग में, लोभ जिसके नहीं मन में
वह निर्धन रंक होता है, जो पर धर को हरा चाहे

दुःखी रहते हैं वे निशदिन, जो आरत ध्यान करते हैं
न कर लालच अगर आजाद रहने का मजा चाहे

बिना माँगे मिले मोती, 'न्यामत' देख दुनिया में
भीख माँगे नहीं मिलती, अगर कोई गहा चाहे

लाख चौरासी योनि भ्रमण कर.......

लाख चौरासी भ्रमण कर पाई नर पर्याय रे ।।टेक।।
अब जो पासा नहीं पड़े तो फिर चौरासी जाय रे ।

परपरणति निजपरणति जाने, मिथ्यामति की दौर से
भेद ज्ञान बिन भव भव भटके, राग-रंग के जोर से
निज को पर को कर्त्ता माने, भवसागर भरमाय रे
अब जो पासा नहीं पडे तो फिर चौरासी जाय रे

निज वैभव की महिमा तुझको, एक समय भी न आई
ज्ञान स्वभावी चेतन प्रभु की, बात तलक भी न भाई
है एकत्व विभक्त चिदानद, समरस सहज स्वभाव रे
अब जो अनुभव नही किया तो, फिर चौरासी जाय रे

आतम ही परमातम शाश्वत, तेरा तुझमे नूर है
दर्शन ज्ञान चरित्र रत्नत्रय सुख समुद्र का पूर है
ऐसा पावन परम पवित्तर महल छोड़ कहां जाय रे
परघर फिरत बहुत दिन बीते अब तो निजघर आय रे

तत्वज्ञान की छैनी लेकर, भाव संयोगी टार दे
शाश्वत अनुपमरूप निरखकर, भवबन्धन को काट दे
भाव शुभाशुभ भव के कारण, शुद्ध भाव शिव राह रे
अब जो निर्णय नहीं किया तो फिर चौरासी जाय रे

ज्ञेय-ज्ञेय में ज्ञान-ज्ञान में, नहीं ज्ञेय से ज्ञान रे
रामराज्य है छहों दरब में, जरा न खींचातान रे
निर्मल दृष्टि में सुख दृष्टि, आनंद अनंत अथाह रे
अमरपुरी के अमर प्रभु सुन, देवागम समझाय रे।

पर में इष्ट अनिष्ट कल्पना.......

पर में इष्ट-अनिष्ट कल्पना कर क्यों रोवें गावें।
त्याग बहिर्मुख दृष्टि जीव तू सद्गुरू यों समझावें।।टेक।।

है मिथ्यात्व बंध का खूंटा राग बंध की बेड़ी
आत्म ध्यान ही एकमात्र है मुक्ति महल की पेड़ी
पर पद में किसने सुख पाया हो सुर वा नर देही
शांति स्वयं के भीतर फिर क्यों बाहिर छेड़ा छेड़ी
सुख दुख सब कर्मों का फल है किसको कौन नचावे

निज स्वभाव की प्राप्ति मोक्ष है त्याग विषय दुखदाई
अपने से ही अपने को अपने में भज ले भाई
जिसने निज स्वरूप पहिचाना द्रव्य दृष्टि अपनाई
उसके लिये अर्थ क्या रखती निन्दा और बड़ाई
निजाधीन सर्वत्र निराकुल पराधीन हो पछतावे

पिता पौत्र भगिनी भाई का बढ़ा रहे जो खाता
वह सब इस शरीर के खातिर जिसका नश्वर नाता
जब शरीर ही सगा नहीं फिर किसकी भगिनी माता
पड़ा रहेगा बोरी बिस्तर हंस अकेला जाता
किसका घर किसकी दुकान है व्यर्थ विवाद बढ़ावे

मंद राग को मोही प्राणी भ्रम से अपना माने
तत्व ज्ञान से विमुख रहा अर खाक स्वर्ग की छाने
एक बार भी निर्विकल्प हो यदि निज को पहचाने
सहज भाव से वीतराग विज्ञान विचारे जाने
देह बुद्धि हट जाये, राग घट जाये, परम पद पावे
......

छाँडि दे या बुधि भोरी

छाँडि दे या बुधि भोरी, वृथा तन से रति जोरी।।टेक।।
यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी।
यासौं ममता कर अनादि तैं, बंधो कर्म की डोरी।।
सहैं दुःख जलधि हिलोरी, छाँडि दे या बुधि भोरी।।१।।

यह जड़ है तू चेतन, यौं ही अपनावत बरजोरी।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण निधि, ये हैं सम्पत तोरी।।
सदा विलसौ शिवगोरी, छाँडि दे या बुधि भोरी।।२।।
सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी।
'दौल' सीख यह लीजै पीजे, ज्ञान पियूष कटोरी।।
मिटै परवाह कठोरी, छाँडि दे या बुधि भोरी।।३।।

.....

सुणिल्यो जीव सुजान

सुणिल्यो जीव सुजान, सीख सुगुरु हित की कही
रुल्यौ अनन्ती बार, गति गति साता ना लही।।टेक।।
कोइक पुन्य संजोग, श्रावक कुल नरगति लही।
मिले देव निरदोष, वाणी भी जिनकी कही।।१।।
चरचा को परसग, अरु सरध्या मैं बैठिवो।
ऐसा अवसर फेरि, कोटिं जनम नहिं भेंटिवो।।२।।
झूठी आशा छोड़ि, तत्त्वारथ रुचि धारिल्यो।
या में कछु न बिगार, आपो आप सुधारिल्यो।।३।।
तन को आतम मानि, भोग विषय कारज करौ।
यौं ही करत अकाज, भव भव क्यौं कूवे परो।।४।।
कोटि ग्रन्थ कौ सार, जो भाई 'बुधजन' करौ।
राग-दोष परिहार, याही भव सौं उद्धरौ।।५।।

.....

धर्म बिन कोई नहीं अपना

धर्म बिन कोई नही अपना।
सुत सम्पति धन थिर नहिं जग मे, जिसा रैन सपना।।टेक।।
आगै किया सो पाया भाई, याही है निरना।
अब जो करैगा सो पावैगा, तातैं धर्म करना।।१।।
ऐसैं सब संसार कहत है, धर्म कियैं तिरना।
परपीड़ा बिसनादिक सेवैं, नरक विषैं परना।।२।।
नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना।
अरु दरिद्री कैं हूं ज्वर है, पाप उदय थपना।।३।।

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपत भरना।
वन गिरि सरिता अगनि जुद्ध में, धर्म हि का सरना ।।४।।
चित 'बुधजन' सन्तोष धारना, पर चिंता हरना।
विपति पडै तो समता रखना, परमातम जपना ।।५।।

आशाओं का हुआ खातमा.......

आशाओं का हुआ खातमा, दिली तमन्ना धरी रही।
बस परदेशी हुए रवाना, प्यारी काया पड़ी रही ।।टेक।।

करना-करना आठों पहर ही, मूरख कूक लगाता है
मरना-मरना मुझे कभी नहीं, लब्ज जबाँ पर लाता है
पर सब ही हैं मरनेवाले, शान किसी की नही रही

एक पंडितजी पत्रिका लेकर, गणित हिसाब लगाते थे
समय काल तेजी मंदी की, होनहार बतलाते थे
आया काल चले पंडितजी, पत्री कर में धरी रही

एक वकील आफिस में बैठे, सोच रहे यों अपने दिल
फलां दफा पर बहस करूँगा, पाइंट मेरा बड़ा प्रबल
इधर कटा वारंट मौत का, कल की पेशी पड़ी रही

एक साहब बैठे दुकान पर, जमा खर्च खुद जोड़ रहे
इतना लेना इतना देना, बड़े गौर से खोज रहे
काल बली की लगी चोट, जब कलम कान में टकी रही

इलाज करने को इस राजा का, डाक्टर जी तैयार हुए
विविध दवा औजार साथ ले, मोटर कार सवार हुए
आया वक्त उलट गई मोटर, दवा बॉक्स में भरी रही

जैंटिलमैन घूमने को एक, वक्त शाम को जाता था
पाच चार थे दोस्त साथ में, बातें बड़ी बनाता था
लगी जो ठोकर गिरे बाबूजी, लगी हाथ में घड़ी रही

हा-हा कितना करूँ बयाँ, इस दुनिया की अजब गति
भैया आना और जाना है, फर्क नहीं है एक रति
सम्यक् प्राप्त किया है जिसने, बस उसकी ही खरी रही

जब तक मिथ्यात्व हृदय में है.......

जब तक मिथ्यात्व हृदय में है, संसार न पल भर कम होगा।
जब तक परद्रव्यों से प्रतीति, भवभार न तिल भर कम होगा।।टेक।।

जबतक शुभाशुभ को हित समझा, तबतक संवर का भान नही
निर्जरा कर्म की कैसे हो, जब तक स्वभाव का भान नहीं

जब तक कर्मों का नाश नहीं, तब तक निर्वाण नहीं होगा
जब तक निर्वाण नहीं होगा, भव दुःख से त्राण नहीं होगा

जब तक तत्वों का ज्ञान नहीं, तब तक समकित कैसे होगा
जब तक सम्यक्त्व नहीं होगा, तब तक निज हित कैसे होगा

इसलिये मुख्य पुरुषार्थ प्रथम, सम्यक्त्व प्राप्त करना होगा
निज आतम तत्व के आश्रय से, वसु कर्मजाल हरना होगा

बिन समकित व्रत पूजन अर्चन, जप तप सब तेरे निष्फल हैं
संसार बंध के हैं प्रतीक, भवसागर के ही दलदल हैं

संकल्पी हिंसा ना हो.....

संकल्पी हिंसा ना हो, – यह निश्चय माना है।
नाहक ना मारुँ कोई, मन में श्रद्धाना है ....

जो होवे नाहक हिंसा, ना आतम जाना है।
आतम के ज्ञान बिना तो, भव में भटकाना है।।

कोई भी जीव ना मारुँ, मन मे अब आना है।
हिंसा नाहक ना करते, क्यों कायर जाना है।।

धर्मी तो है निज आतम, सब आतम जाना है।
आतम क्यों मारे आतम, आतम जब जाना है।।

आतमज्ञानी थे राम हनू, जो रावण हाना है।
न्यायी है सच्चा ज्ञानी, अन्यायी जो हाना है।।

कायर होता ना धर्मी, श्रीगुरु फरमाना है।
मरना होता इस तन का, धर्मी ने जाना है।।

आतम तो सदा अमर है, मैंने अब जाना है।
आतम क्यों मारे आतम, जब आतम जाना है ....

मिथ्यात्व नींद छोड़ दे,.....

मिथ्यात्व नींद छोड़ दे, आपा सम्हार ले।
जरा ज्ञानचक्षु खोल के, निज को पिछान ले।।टेक।।
वस्यो है तू निगोद में, अनन्तकाल जाय के।
तहाँ स्वास में अठारह, जन्म मरण पाय के।।१।।
जहाँ अंक के अनन्त भाग, ज्ञान है गहा।
भू आदि पंच मांहि, एकाक्ष हो रहा।।२।।
विकलेन्द्रियादि योनि में, दुखी हुआ फिरा।
सुर नर नरक नीच, गोत्र पाय के मरा।।३।।
ज्यों अन्धे को बटेर, त्यों सुबोध पाय के।
दृग ज्ञान चरण धार ले, निज में समाय के।।४।।

जीवन के परिणामन की यह

जीवन के परिणामन की यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी।।टेक।।
नित्य निगोदमाहिँ तैं कढ़िकर, नर परजाय पाय सुखदानी।
समकित लहि अन्तर्मुहूर्त में, केवलज्ञान पाय शिवथानी।।१।।
मुनि एकादश गुणथानक चढ़ि, गिरत तहांतैं चितभ्रम ठानी।
भ्रमत अर्धपुद्गल प्रावर्तन, किंचित् ऊन काल परमानी।।२।।
निज परिणामन की संभाल में, तातै गाफिल मत ह्वै प्रानी।
बंध-मोक्ष परिणामन ही सो, कहत सदा श्रीजिनवर वाणी।।३।।
सकल उपाधि निमित भावनसो, भिन्न सुनिज परणति को छानी।
ताहि जानि रुचि ठानि होहु थिर, 'भागचंद' यह सीख सयानी।।४।।

तन देख्या अथिर घिनावना.....

तन देख्या अथिर घिनावना।।टेक।।
बाहर चाम चमक दिखलावै, माहीं मैल अपावना।
बालक जवान बुढ़ापा मरना, रोग शोक उपजावना।।१।।
अलख अमूरति नित्य निरंजन, एकरूप निज जानना।
वरन फरस रस गंध न जाकै, पुन्य-पाप बिन मानना।।२।।
करि विवेक उर धारि परीक्षा, भेद-विज्ञान विचारना।
'बुधजन' तन तैं ममत मेटना, चिदानंद पद धारना।।३।।

आयु सब यों ही बीती जाय

आयु सब यों ही बीती जाय

बरस अयन रितु मास महूरत, पल छिन समय सुभाय ।।टेक।।
बन न सकत जप तप व्रत संजम, पूजन भजन उपाय ।
मिथ्या विषय कषाय काज में, फंसौ न निकसौ जाय ।।१।।
लाभ समै इह जात अकारथ, सत प्रति कहू सुनाय ।
होति निरंतर विधि बधवारी, इस पर भव दुखदाय ।।२।।
धनि वे साधु लगै परमारथ, साधन में उमगाय ।
'छत्त' सफल जीवन तिनही का, हम सम शिथिल न पाय ।।३।।

और सबै जगद्वन्द मिटावो

और सबै जगद्वन्द मिटावो, लौ लावो जिन आगम ओरी ।।टेक।।
है असार जगद्वन्द बन्धकर, यह कछु गरज न सारत तोरी ।
कमला चपला यौवन सुरधनु, स्वजन पथिकजन क्यों रति जोरी ।।१।।
विषय कषाय दुःखद दोनों ये, इनतैं तोर नेह की डोरी ।
परद्रव्यन को तू अपनावत, क्यों न तजे ऐसी बुधि भोरी ।।२।।
बीत जाय सागरथिति सुर की, नर परजाय तनी अति थोरी ।
अवसर पाय 'दौल' मत चूको, फिर न मिलै मणि सागर बोरी ।।३।।

निजरूप सजो भवकूप तजो

निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो ।।टेक।।
चितपिंड अखड प्रचड जिया, तुम रत्नकरड कहावत हो ।।१।।
स्वर्गादिक में पछतावत है, नरदेह मिलै तो करै तप को ।
अब भूलि गये मद फूल गये, प्रतिकूल भये इतरावत हो ।।२।।
दुख नर्क निगोद विशाल तहा, अति शीत रु उष्ण सहे तुमने ।
वहां ताती त्रिया लिपटाते तुम्हें, फिरहू मद मे लपटावत हो ।।३।।
त्रस थावर त्रास सहे बधन, बध छेदन भेदन भूख सहा ।
सुख रंच न संच करो तुम क्यों, परपचन में उलझावत हो ।।४।।
तेरे द्वारों पे कर्म-किवार लगे, तापै मोह ने ताला लगाया बड़ा ।
सम्यक्त्व की कुंजी से खोल भवन, 'कुंजी' क्यो देर लगावत हो ।।५।।

पुद्गल का क्या विश्वासा

पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा ।।टेक।।
जैसे चमत्कार बिजली का, जैसें इन्द्रधनुष आकाशा ।।१।।
झूठा तन धन, झूठा यौवन, झूठा है घर-वासा ।
झूठा ठाठ ठनो दुनियां में, झूठा महल निवासा ।।२।।
इक दिन ऐसा होगा लोगों, जंगल होगा वासा ।
इस तन ऊपर हल फिर जावें, पशु चरेंगे घासा ।।३।।
एक बार श्री जिनवर का, भज ले नाम निराशा ।
'नवल' कहे छिन एक न भूलो, जब लग घट मे साँसा ।।४।।

सुमर सदा मन आतमराम

सुमर सदा मन आतमराम ।।टेक।।
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखै, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम ।।१।।
जिमि मरीचिका में मृग भटके, होवे जब ग्रीषम अति घाम ।
तैसे तू भवमाहीं भटके, धरत न इक छिन हू विसराम ।।२।।
करत न ग्लानी अब भोगन में, धरत न वीतराग परिणाम ।
फिरि किमि नरकमाहिं दुःख सहसी, जहां नहीं सुख आठौं याम ।।३।।
तातैं आकुलता अब तजि के, थिर ह्वै बैठो अपने धाम ।
'भागचन्द' बसि ज्ञाननगर मे, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ।।४।।

कहा परदेशी को पतियारो

कहा परदेशी को पतियारो ।।टेक।।
मन माने तब चलै पन्थ को, साँझ गिने न सकारो ।
सबै कुटुम्ब छाँड़ इतही पुनि, त्याग चले तन प्यारो ।।१।।
दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न राखन हारो ।
कोऊ प्रीति करो-किन कोटिन, अन्त होयगो न्यारो ।।२।।
धन सों राचि धर्म सों भूलत, झूलत मोह मँझारो ।
इह विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भव पारो ।।३।।
साँचे सुख सों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो ।
चेतहु 'चेत' सुनहु रे भइया, आपहि आप सभारो ।।४।।

या चेतन की सब सुधि गई.....

या चेतन की सब सुधि गई, व्यापत मोहि विकलता गई ।।टेक।।
है जड़ रूप अपावन देह, तासौं राखै परम सनेह ।।१।।
आइ मिले जन स्वारथ बध, तिनहि कुटुम्ब कहै जा बंध ।
आप अकेला जनमै मरै, सकल लोक की ममता धरै ।।२।।
होत विभूति दान के दिये, यह परपंच विचारै हिये ।
भरमत फिरै न पावइ ठौर, ठानै मूढ और की और ।।३।।
बंध हेत को करै जु खेद, जानै नहीं मोक्ष को भेद ।
मिटै सहज संसार निवास, तब सुख लहै 'बनारसीदास' ।।४।।

मोही जीव भरमतम तैं नहिं.....

मोही जीव भरमतम तैं नहिं, वस्तुस्वरूप लखै है जैसे ।।टेक।।
जे-जे जड-चेतन की परणति, ते अनिवार परनबै वैसे ।
वृथा दुःखी शठकर विकलप यौं नहिं परिनवै परिनबै ऐसे ।।१।।
अशुचि सरोग समल जडमूरत, लखत बिलात गगनघन जैसै ।
सो तन ताहि निहार अपनपो, चहत अबाध रहै थिर कैसै ।।२।।
सुत-तिय-बंधु वियोग योग यौं, ज्यौं सरायजन निकसै पैसैं ।
बिलखत हरखत शठ अपने लखि, रोवत हंसत मत्तजन जैसे ।।३।।
जिन-रवि बैन किरन लहि जिन, निजरूप सुभिन्न कियौ परमैसें ।
सो जगमौल 'दौल' को चिर थित, मोहविलास निकास हृदैसे ।।४।।

दरस ज्ञान चारित तप कारन.....

दरस ज्ञान चारित तप कारन, कारज इक वैराग्यपना है ।
कारन काज अन्यथा मानत, तिनका मन मिथ्यात सना है ।।टेक।।
तरुतें बीज बीजतें तरुवर, यों नहिं कारन काज मना है ।
आप बधत वैराग बधावत, हरत सकल दुख दोष जना है ।।१।।
जहां ज्ञान वैराग्य अवस्थित, तहां सहज आनन्द घना है ।
विषै कषाय उपाधिक भावन की संतति नहिं उदित छना है ।।२।।
नाम न ठाम न विधि आस्रव कौ, पुनि अवस्थित बंध हना है ।
'छत्त' सदा जयवंत प्रवरतौ, कारन काज दुहू अपना है ।।३।।

अमूल्य तत्त्व विचार.....

बहु पुण्य-पुञ्ज-प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे ! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।।टेक।।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण प्रवाह में चकचूर है?।।१।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये?।
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि? कुछ नहिं मानिये।।२।।
संसार का बढ़ना अरे ! नर देह की यह हार है।
नहिं एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है।।३।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तःतत्त्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो।।४।।
परवस्तु में मूर्छित न हो इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे ! पश्चात् जिसके दुःख भरा।।५।।
मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?।
सम्बन्ध दुखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ?।।६।।
इसका विचार विवेक पूर्वक शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये।।७।।
किसका वचन उस तत्त्व की उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे ! वह स्वानुभूति प्रसूत है।।८।।
तारो अहो तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि द्यो, यह वच हृदय लिख लीजिये।।९।।

भव वन में नहीं भूलिये भाई.....

भव वन में नही भूलिये भाई, कर निज थल की याद ।।टेक।।
नर परजाय पाय अति सुन्दर, त्यागहु सकल प्रमाद ।
श्री जिन-धर्म सेय शिव पावत, आतम जासु प्रसाद ।।१।।
अब के चूकत ठीक न पडसी, पासी अधिक विषाद ।
सहसी नरक वेदना पुनि तहां, सुणसी कौन फिराद ।।२।।
'भागचन्द' श्रीगुरु शिक्षा बिन, भटका काल अनाद ।
तू कर्ता तू ही फल भोगत, कौन करै बकवाद ।।३।।

समझ मन बावरे सब स्वारथ.....

समझ मन बावरे, सब स्वारथ का संसार।।टेक।।

हरे वृक्ष पर तोता बैठा, करता मौज विहारी।
सूखा तरुवर उड गया तोता, छिन में प्रीति बिसारी।।१।।
ताल पाल पर किया बसेरा, निर्मल नीर निहारा।
लखा सरोवर सूखा जब ही, पंखी पंख पसारा।।२।।
पिता पुत्र सब लोग प्यारे, जब लों करे कमाई।
जो नही द्रव्य कमाकर लावें, दुश्मन देत दिखाई।।३।।
जब लग स्वारथ सधत है जासों, तब लग तासों प्रीति।
स्वारथ भये बात न बूझे, यही जगत की रीति।।४।।
अपने अपने सुख को रोवे, मात पिता सुत नारी।
धरे ढके की बूझन लागे, अन्त समय की बारी।।५।।
सभी सगे शिवराम गरज के, तुम भी स्वारथ साधो।
नर तन मित्र मिला है तुमको, आतम हित आराधो।।६।।

अब ज्ञाता-दृष्टा रहना.....

अब ज्ञाता-दृष्टा रहना फेर न यह नर तन धरना।
पुण्य-उदय नर तन पाया, फिर भी विषयन में धाया।।टेक।।
विषय तजो निज हित करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना।।१।।
अनादि से मिथ्या जहर पिया, पंचमकाल में जनम लिया।
इस भव ना मुक्ति मिलना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना।।२।।
रत्नत्रयनिधि पहिचानो, अपने को आतम मानो।
दृष्टि मुक्ति इसी विधि करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना।।३।।
अपना रुप सम्भालो तुम, रागादिक को टालो तुम।
इस विधि नर तन सफल करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना।।४।।
ये भव पाया दुख हरने को, फेर न जग दुख भरने को।
निज शाश्वत सुख को वरना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना।।५।।
भव तन भोग विरागी बन, समतारस का स्वादी बन।
'निर्मल' मत गल्ती करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना।।६।।

चिदराय गुन सुनो मुनो प्रशस्त गुरु गिरा......

चिदराय गुन सुनो मुनो, प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव, हो स्वकीय में थिरा।।टेक।।
निज भाव के लखाव बिन, भवाब्धि में परा।
जामन मरन जरा त्रिदोष, अग्नि में जरा।।१।।
फिर सादि औ अनादि दो, निगोद में परा।
तहं अंक के असंख्य भाग, ज्ञान ऊबरा।।२।।
तहां भव अन्तर मुहूर्त के, कहे गनेश्वरा।
छ्यासठ सहस त्रिशत छतीस, जन्म धर मरा।।३।।
यौं वशि अनन्तकाल फिर तहांतैं नीसरा।
भूजल अनिल अनल प्रतेक, तरु मे तन धरा।।४।।
अनुधरीसु कुन्थु, काणमच्छ अवतरा।
जल थल खचर कुनर नरक, असुर उपज मरा।।५।।
अब के सुथल सुकुल सुसंग, बोध लहि खरा।
'दौलत' त्रिरत्न साध...लाध, पद अनुत्तरा।।६।।

मत कीज्यौ जी यारी

मत कीज्यौ जी यारी, घिनगेह देह जड़ जान के
मात तात रज वीरज सौं यह, उपजी मल फुलवारी
अस्थिमाल पल नसाजाल की, लाल लाल जल क्यारी।।१।।
कर्म कुरङ्ग थली पुतली यह मूत्रपुरीष भण्डारी
चर्ममढी रिपुकर्म घड़ी, धन-धर्म चुरावन हारी।।२।।
जे जे पावन वस्तु जगत में, ते इन सर्व बिगारी
स्वेद मेद कफ क्लेशमयी बहु, मदगद व्याल पिटारी।।३।।
जो संयोग रोगभव तौलौं जो, वियोग शिवकारी
बुध तासौं न ममत्व करै, यह मूढ़मतिन को प्यारी।।४।।
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुःख भारी
जिन तप ठान ध्यान कर शोषी, भये मोक्ष अधिकारी।।५।।
सुरधनु शरद जलद जल बुदबुद, त्यौं झट विनशनहारी
यातैं भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी।।६।।

जीव! तू भ्रमत सदैव अकेला.....

जीव! तू भ्रमत सदैव अकेला, साथी कोई नहिं तेरा ।।टेक।।
अपना सुख दुःख आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भयैं सब बिछरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला।।१।।
रक्षक कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्त की बेला।
फूटत पारि बधत नहीं जैसें, दुद्धर-जल को ठेला।।२।।
तन धन जीवन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजाल का खेला।
'भागचन्द' इमि लख करि भाई, हो सतगुरु का चेला।।३।।

रे मन ! काहे को सोचत अति भारी.....

रे मन ! काहे को सोचत अति भारी
पूरब करमन की थिति बांधी, सो तो टरत न टारी।।टेक।।
सब दरवनि की तीन काल की, विधि न्यारी की न्यारी।
केवलज्ञान विषैं प्रतिभासी, सो सो ह्वै है सारी।।१।।
सोच किये बहु बध बढ़त है, उपजत है दुःख ख्वारी।
चिन्ता चिता समान बखानी, बुद्धि करत है कारी।।२।।
रोग सोग उपजत चिन्ता तैं, कहौ कौन गुनवारी।
'द्यानत' अनुभव करि शिव पहुंचे, जिन चिन्ता सब जारी।।३।।

जब चले आत्माराम, छोड़ धन-धाम,.....

जब चले आत्माराम, छोड धन-धाम, जगत से भाई।
जग में ना कोई सहायी।।टेक।।
तू क्यों करता तेरा मेरा, नही दुनियां मे कोई तेरा।
जब काल आय तब सबसे होय जुदाई, जग में न कोई सहायी।।१।।
तू मोहजाल में फंसा हुआ, पापों के रंग में रंगा हुआ।
जिन्दगानी तूने वृथा यों ही गवाई जग में न कोई सहायी।।२।।
सम्यक्त्व सुधा का पान करो, निज आतम ही का ज्ञान करो।
यूँ टले जीव से लगी कर्म की काई, जग में न कोई सहायी।।३।।
चेतो चेतो अब बढ़े चलो, सतपथ सुमार्ग पर बढ़े चलो।
यूँ बाज र... यमराजा की शहनाई, जग में न कोई सहायी।।४।।

८. तात्विक

या नित चितवो उठिके भोर......

या नित चितवो उठिके भोर।।टेक।।
मैं हूँ कौन कहां तैं आयो, कौन हमारी ठौर ।।१।।
दीसत कौन, कौन यह चितवत, कौन करत है शोर।
ईश्वर कौन, कौन है सेवक, कौन करे झकझोर ।।२।।
उपजत कौन मरै को भाई, कौन डरे लखि घोर।
गया नहीं आवत कछु नाहीं, परिपूरन सब ओर ।।३।।
और और मैं और रूप ह्वै, परनतिकरि लइ और।
स्वांग धरैं डोलौ याही तैं, तेरी 'बुधजन' भोर ।।४।।

परदा पड़ा है मोह का ....

परदा पडा है मोह का, आता नजर नहीं।
चेतन तेरा स्वरूप है, तुझको खबर नहीं ।।टेक।।
चारों गति में मारा फिरै, ख्वार रात-दिन।
आपे में अपने आपको, लखता मगर नहीं।।१।।
तज मन विकार धारले, अनुभव सचेत हो।
निज-पर विचार देख जगत, तेरा सुघर नहीं।।२।।
तूं भाव स्वरूप शिव स्वरूप ब्रम्ह रूप है,।
विषयों के संग से तेरी होती कदर नहीं।।३।।
चाहे तो कर्म काट तू, परमात्मा बने।
अफसोस कि इसपे भी तू, करता नजर नहीं।।४।।
निज शक्ति को पहिचान समझ, अब तो ले न्यामत।
आलस में पडे रहने से, होती गुजर नहीं।।५।।

जो अपना नहिं उसके अपनेपन में.....

जो अपना नहिं उसके अपनेपन में जीवन चला गया ।
पर में अपनापन करके हा! मैं अपने से छला गया ....
जग में ऐसा हुआ कौन? जो अपने से ही हारा ।
जिसकी परिणति को अनादि से, मोह शत्रु ने मारा ।
जिसने जिसको अपना माना, उसे छोड़ वह चला गया ।।

अपने को विस्मृत करके हा! जिसको अपना माना, ।
क्या वह अपना हुआ कभी, यह सत्य अरे ना जाना ।
जो अनादि से अपना है वह विस्मृति में ही चला गया ।।

परभावो के प्रबल वेग में, निशदिन बहता रहता ।
ज्ञान-पटल पर कर्म-उदय, निज गाथा कैसे लिखता?
प्रगट ज्ञान का अश अरे! पर-परिणति मे क्यों चला गया ।।

अपने में पर के शासन का अत कहो कब होगा?
पर मे निज के अवभासन का अत कहो कब होगा?
परभावों के वेदन मे ही, सारा जीवन चला गया ।।

जिसने वीतराग मुद्रा लख, निज स्वरूप को जाना ।
रग-राग से भिन्न अरे! निज ज्ञान तत्त्व पहिचाना ।
प्रगट ज्ञान का अश तभी निज ज्ञानपुज मे चला गया ।।

शुभ–अशुभ बन्ध ही कीने मैंने......

शुभ–अशुभ बन्ध ही कीने, मैंने काल अनादि से ।
नहिं लखा निजरूप कभी है, मैंने काल अनादि से ... ।।

पर मे इष्टानिष्ट कल्पना, की है काल अनादि से ।
लख चौरासी भ्रमते बीते, मुझको काल अनादि से ।।

देव–शास्त्र–गुरु वचनामृत, पाये मैंने बहुभाग्य से ।
दिव्यदेशना मिली आज है, प्रगटा निज–पर आज से ।।

लहूँ निजातम रूप नाथ मैं, यही भावना आपसे ।
रत्नत्रय की होय पूर्णता, हटूँ भवोदधि खार से ।।
सिद्धातम पद लहूँ भावना, मैंने भायी आज से... ।।

पर विभाव की नहीं कालिमा.......

पर विभाव की नहीं कालिमा, जहाँ न हाहाकार सखे ।
जन्म मरण का तोड़ के बंधन, चलो चलें उस पार सखे ।।
वीतरागता की सत्ता का शाश्वत सत्य प्रकाश सखे ।
जन्म मरण का तोड़ के बंधन, चलो चलें उस पार सखे ।।टेक।।

काल बली का नहीं पदार्पण, है संयोग-वियोग नहीं
कोई रोगी नहीं जहाँ पर, किसी तरह का रोग नहीं
जहाँ न खाता पाप-पुन्य का, तीव्र-मंद का भेद नहीं
शुद्ध बुद्ध सत् चिदानंदमय, अन्य किसी का भोग नहीं
मन की व्यथा सुनायें किसको, जहाँ न ऐसा दर्द सखे

इन्द्रियों का अधिपत्य नहीं है, जहाँ न योगों का बंधन
मिथ्यामति के भय से निकले, जहाँ न दुखियों का क्रंदन
नहीं चतुर्गति वास जहाँ पर, जहाँ न ममता का बंधन
रामराज्य है सदा जहाँ पर, होता निर्मल सुख दर्शन
नहीं उठाना पड़े जहाँ पर कोई भी भव भार सखे

है अनंत सौंदर्य अनूपम, होती नहीं जहाँ हलचल
निज वैभव से गुण प्रसूत है, सुरभित डाली सौम्य सरल
यह उत्तम चैतन्य वाटिका, जिसमें सम्यक् ज्योति प्रबल
वही भाग्यशाली मानव जो, मुक्ति का धनपाल सबल
श्रद्धा ज्ञान चारित्र त्रिवेणी, निज-पर को सुखकार सखे

आकुल रहित होय इमि निशिदिन......

आकुल रहित होय इमि निशिदिन, कीजे तत्त्व विचारा हो ।।टेक।।
को मैं कहा रूप है मेरा, पर है कौन प्रकारा हो ।।१।।
को भव-कारण बन्ध कहा, को आस्रव रोकनहारा हो ।
खिपत कर्म बन्धन काहे सों, थानक कौन हमारा हो ।।२।।
इमि अभ्यास किये पावत है, परमानन्द अपारा हो ।
'भागचन्द' यह सार जान करि, कीजै, बारम्बारा हो ।।३।।

वस्तु स्वभाव समझ नहीं पाता.....

वस्तु स्वभाव समझ नहीं पाता, कर्त्ता धरता बन जाता ।।टेक।।
स्व को भूल पर अपनाता, मिथ्यापन का यह नाता ।।१।।
सहज स्वभाव समझ में आता, करना धरना मिट जाता ।
स्व सो स्व और पर सो पर है, सम्यक्पन का यह नाता ।।२।।
रोके रुकता लाये आता, धक्के से जाता है कौन ।
अपनी अपनी सहज गुफा में, सभी द्रव्य है|पर से मौन ।।३।।

स्वतः परिणमति वस्तु के, ...

स्वतः परिणमति वस्तु के क्यों करता बनते जाते हो ।
कुछ समझ नहीं आती तुझको, निःसत्व बने ही जाते हो ।।टेक।।
अरे कौन निकम्मा जग मे है, जो पर का करने जाता हो ।
सब अपने अन्दर रमते हैं, तब किस विधि करण रचाते हो ।।१।।
वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है वह कर्त्ता है ।
फिर मालिक के मालिक बनकर, क्यों नीति-न्याय गमाते हो ।।२।।
सत् सब स्वयं परिणमता है, वह नहीं किसी की सुनता है ।
यह माने बिन कल्याण नहीं, कोई कैसे ही कुछ कहता हो ।।३।।

मेरौ कह्यो मानि ले जीयरा रै.....

मेरौ कह्यो मानि लै जीयरा रै ।।टेक।।
दुर्लभ नर भव कुल श्रावक कौ जिन वच दुर्लभ जानि लै ।।१।।
जिहि बसि नरकादिक दुख पायौ, तिहि विधि कौ अब भानि लै ।
सुर सुख भुंजि मोखिफल लहिये ऐसी परणति ठांनि लै ।।२।।
पर सौं प्रीति जानि दुखदैंनी आतम सुखद पिछांनि लै ।
आस्रव बंध विचार करीनै संवर हिय मैं आनि लै ।।३।।
दरसन ग्यान मई अपनौ पद, तासौं रुचि की बांनि लै ।
सहज करम की होय निरजरा, ऐसो उद्दिम तांनि लै ।।४।।
मुनि पद धारि ग्यांन केवल लहि, सिवतिय सौं हित सांनि लै ।
किसन स्वयं परतीति आंनि अब, सद्गुरु के वच कांनि लै ।।५।।

पुण्य से ही निर्जरा होती अगर तो.....

पुण्यसे ही निर्जरा होती अगर तो होगया होता अभीतक मोक्ष कबका।।
पुण्य से संवर अगर होता तनिक भी तो भ्रमणका कष्ट फिर मिलता न कबका।
इस तत्त्वके विज्ञानको तूने न जाना, इस आत्माको भी नहिं कभी पहचाना।।
रुचि राग में, कर्तृत्वमें अरु लोकरंजनमें करी,।
पुण्य पाप रहित सदृष्टीमय स्वतत्व-श्रद्धा नहिं करी।।
पुण्य हो या पाप ये आस्रव हैं शुभ राग भी तो बंध हैं संसार ही के।
इन्हीमें कर्तुत्वबुद्धि बनी रही तो, शुभाशुभ दुखद्वंद हैं भवभार ही के।।
नहीं है सम्यक्त्व जबतक व्यर्थ है सब पाठपूजनजप व्रतादिक ध्यान मिथ्या।
आत्मा की यदि नहीं पहचान की तो तप कुतप है ज्ञान भी है ज्ञानमिथ्या।।
इसलिए सम्यक्त्व धारणकर अरे जिय भिन्न निज चैतन्य पर से जान ले रे।
आत्मा परमात्मा स्वयमेव होगी, भेदज्ञान अपूर्व सुखमय मानले रे।।

जे दिन तुम विवेक बिन खोये.....

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।
मोह वारुणी पी अनादि तै, पर-पद में चिर सोये।
सुखकरण्ड चितपिंड आपपद, गुन अनन्त नहिं जोये ।।१।।
होय बहिर्मुख ठानि राग-रुष, कर्मबीज बहु बोये।
तसु फल सुख-दुःख सामग्री लखि, चित में हरषे रोये ।।२।।
धवल ध्यान शुचि सलिलपूर तें, आस्रव मल नहि धोये।
परद्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ।।३।।
अब निज में निज जान नियत तहा, निज परिणाम समोये।
यह शिवमारग समरस सागर, 'भागचन्द' हित तो ये ।।४।।

करौ रे भाई, तत्त्वारथ सरधान....

करौ रे भाई, तत्त्वारथ सरधान, नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायके ।।टेक।।
देखन जाननहार आप लखि, देहादिक परमान।
मोह-राग-रुष अहित जान तजि, बंध-हु विधि दुखदान ।।१।।
निज स्वरूप में मगन होय कर, लगन-विषय दो भान।
'भागचन्द' साधक ह्वै साधो, साध्य स्वपद अमलान ।।२।।

कर्त्ता जगत का मानता.......

कर्ता जगत का मानता, जो कर्म या भगवान को
वह भूलता है लोक में, **अस्तित्व गुण** के ज्ञान को
उत्पाद-व्यययुत वस्तु है, फिर भी सदा ध्रुवता धरे
अस्तित्वगुण के योग से, कोई नही जग में मरे

वस्तुत्वगुण के योग से, हो द्रव्य में स्व-स्व क्रिया
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही, पान द्रव्यों ने किया
सामान्य और विशेषता से, कर रहे निज काम को
यों मानकर वस्तुत्व को, पाओ विमल शिवधाम को

द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को, जग में पलटता है सदा
लेकिन कभी भी द्रव्य तो, तजता न लक्षण सम्पदा
स्वद्रव्य मे मोक्षार्थि हो, स्वाधीन सुख लो सर्वदा
हो नाश जिससे आज तक की, दुखदाई भव कथा

सब द्रव्य **गुणप्रमेय** से, बनते विषय हैं ज्ञान के
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से, जानियो यों ध्यान से
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज, यह ज्ञान उसको जानता
है स्व-पर सत्ता विश्व में, सुदृष्टि उनको जानता

यह **गुण अगुरुलघु** भी सदा, रखता महत्ता है महा
गुण-द्रव्य को पर रूप यह, होने न देता है अहा
निज गुण-पर्यय सर्व ही, रहते सतत निज भाव में
कर्ता न हर्ता अन्य कोई, यों लखो स्व-स्वभाव मे

प्रदेशत्व गुण की शक्ति से, आकार द्रव्य धरा करे
निज क्षेत्र मे व्यापक रहे, आकार भी पलटा करे
आकार हैं सबके अलग, हो लीन अपने ज्ञान में
जानो इन्हें सामान्यगुण, रक्खो सदा श्रद्धान में

सुथिर चित करि अह निशि निश्चय ....

सुथिर चित करि अह निशि निश्चय, कीजे एम विचारा हो
है चित ज्ञानरूप है मेरो, पर अजीव निरधारा हो

भ्रम भव कारण दुख बंधन सम, संवर हैं सुखकारा हो
चिर विभावता झरण निर्जरा, सिद्ध स्वरुप हमारा हो
धनि धनि जन जिन यह विचार करि, महा मोह निरवारा हो
जिनके चरणकमल प्रति मानिक, युगल पाणि शिरधारा हो

पर द्रव्यों से राग तोड़ दे ....

पर द्रव्यों से राग तोड़ दे, राग बन्ध का मूल है।
इन्द्रादिक सुर चक्रवर्ती पद, तो पुण्यों की धूल है।।टेक।।

जीव राग के कारण ही भटक रहा संसार में
मोह ममत्व भाव से देखो, अटक रहा व्यवहार में
निश्चय का उपदेश ना पाया, बहता भव मझधार में
निज वैभव की लेश ना चिन्ता, रूचि है पर के प्यार में
कर्म चेतना सदा सुहाती, जो निज के प्रतिकूल है

पर से अपनापन माना है, निज से करता द्वेष है
निरावरण निज रूप ना समझा, धारा पुद्गल वेश है
शुद्धातम बहुमान नहीं है, निज का मान न लेश है
स्वयं अनन्त सौख्य का धारी, ज्ञान मूर्ति परमेश है
ज्ञान चेतना का अधिपति है, जो निज के अनुकूल है

राग मात्र को हेय समझ ले, निज स्वभाव में रम जा तू
अपनी शुद्धातम की महिमा, ज्ञान स्वयं में थम जा तू
आत्मस्वरूप का निर्णय कर के, निज स्वरूप में जम जा तू
पर का मनन छोड़कर अपने, आत्म देव को नम जा तू
पाप और पुण्य शुभाशुभ आस्रव की रूचि ही तो शूल है

बंध अभाव अगर करना है, तो तू राग अभाव कर
निज आतम अनुभव रस पीने, सिद्ध-स्वपद का चाव भर
भेद-ज्ञान विज्ञान ज्योति से, दु:खमय सकल विभाव हर
है उपाय पुरुषार्थ सिद्धि का, ज्ञायक सहज स्वभाव वर
राग सदा संसार मार्ग है, मोक्ष मार्ग में भूल है

तिल-तिल जलकर वैभव जोड़ा.....

तिल-तिल जलकर वैभव जोड़ा जाने किस आशा में ।
बे-लगाम इच्छाएँ छोड़ी मन की हर भाषा में ।।टेक।।
पल भर को भी ध्यान न आई जीवन की परिभाषा ।
चिन्तन होता रहा न बदला कभी दृष्टि का पाँसा ।।१।।
सुखाभास को रहे समझते जीवन की उपलब्धि ।
पहुँच नहीं पाई विवेक तक आकर्षण तज बुद्धि ।।
औरों से तुलना करने में समय रोज ही खोया ।
दोष देखते रहे पराये अपना मुख न धोया ।।२।।
भौतिक उपलब्धि बढ़ने से भी क्या उन्नति होती ।
अक्सर तो अधिकांश जनों की बुद्धि भ्रष्ट ही होती ।।
भूल भूल जाता है मानव लक्ष्य परम सुख-धाम का ।
आकर्षण में खो जाता है नाम "शाश्वत-राम" का ।।३।।
फिर फिर जन्म-मृत्यु का चक्कर युग युग तक चलता है ।
"अनतानुबंधीकषाय" में मानव मन जलता है ।।
जन्म-मृत्यु के अन्तराल में केवल दौड़ लगी है ।
रोज रोज नूतन अभिलाषा की ही प्यास लगी है ।।४।।
'राग' नहीं तो सदा 'द्वेष' की ही 'अति' पर मन डोला ।
'वीतराग' पर रुक करके मन कभी नहीं 'जय बोला' ।।
'शुभ से अशुभ', 'अशुभ से शुभ' में हर पल 'वृत्ति' बही है ।
'शुद्धभाव' की कथा जनम भर मन ने नहीं कही है ।।५।।
सच तो यह है मन ही बाधक 'परम-लक्ष्य' पाने मे ।
रोडा बन कर अड़ जाता मन मंजिल तक जाने मे ।।
मन स्मृतियों का संग्रह है चंचल बालक जैसा ।
मन हर पल बाधा बनता है खोटे दामों जैसा ।।६।।
सन्त हृदय से मन हारा है, जीता है भोगी से ।
दास बना लेता भोगी को, डरता है योगी से ।।

मन तो है बीते की गाथा, आते हुए की छाया ।
मन से ही पैदा होती है कल्पनाओं की काया ।। ७।।
इसीलिए मन-आंगन पर जो है अलिप्त बन देखो ।
'बन्ध' और 'संवर' की घटना दृष्टा बनकर लेखो ।।
इतना सहज हो सके जीवन तभी 'निर्जरा' होगी ।
इतनी जागृत रहे चेतना तब न बनेगी रोगी ।। ८।।

हम बैठे अपनी मौन सौं

हम बैठे अपनी मौन सौं ।।टेक।।
दिन दस के मेहमान जगत जन, बोलि विगारै कौन सौं ।।१।।
गये विलाय भरम के बादर, परमारथ-पथ-पौन सौं ।
अब अन्तर गति भई हमारी, परचे राधा रौन सौं ।।२।।
प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहिं लागै बौन सौं ।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौन सौं ।।३।।
रहे अघाय पाय सुख संपति, को निकसै निज भौन सौं ।
सहज भाव सदगुरु की संगति, सुरझै आवागौन सौं ।।४।।

परणति सब जीवन की तीन भांति

परणति सब जीवन की, तीन भांति वरनी
एक पुण्य एक पाप, एक राग हरनी ।।टेक।।
तामें शुभ अशुभ अन्ध, दोय करैं कर्म बन्ध ।
बीतराग परणति ही, भव समुद्र तरनी ।।१।।
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाही मनोग ।
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी ।।२।।
त्याग शुभ क्रिया-कलाप, करो मत कदाचि पाप ।
शुभ में न मगन होय, शुद्धता विसरनी ।।३।।
ऊँच-ऊँच दशा धारि, चित प्रमाद को विडारि ।
ऊँचली दशा तैं मति गिरो, अधो धरनी ।।४।।
'भागचन्द' या प्रकार, जीव लहै सुख अपार ।
याके निरधारि, स्यादवाद की उचरनी ।।५।।

हमकौं कछू भय ना रे......

हमकौ कछू भय ना रे, जान लियौ संसार ।।टेक।।

जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोख मँझार ।
निश्चय भेद कछू भी नाहीं, भेद गिनै संसार ।।१।।
परवश ह्वै आपा विसारिकै, रागद्वेष कौं धार ।
जीवत-मरत अनादि काल तैं, यौं ही है उरझार ।।२।।
जाकरि जैसैं जाहि समय में, जो होतब जा द्वार ।
सो बनि है टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार ।।३।।
अगनि जरावै पानी बोवै, बिछुरत मिलत अपार ।
सो पुद्‌गलरूपी मैं 'बुधजन' सबकौ जाननहार ।।४।।

जगत में होनहार सो होवै......

जगत मे होनहार सो होवै, सुर नृप नाहिं मिटावै ।।टेक।।

आदिनाथ से कौ भोजन मे, अन्तराय उपजावै।
पारसप्रभु कौं ध्यान लीन लखि कमठ मेघ बरसावै ।।१।।
लक्ष्मन से सग भ्राता जाकै, सीता राम गमावै ।
प्रतिनारायण रावण से की, हनुमत लक जरावै ।।२।।
जैसो कमावै तैसो ही पावै, यो 'बुधजन' समझावै ।
आप आपकौ आप कमावो, क्यो परद्रव्य कमावै ।।३।।

जो जो देखी वीतराग ने......

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे ।
अनहोनी होसी नहिं - जग मे, काहे होत अधीरा रे ।।टेक।।
समयो एक बढै नहिं घटसी, जो सुख-दु ख की पीरा रे ।
तू क्यो सोच करै मन मूरख, होय वज्र ज्यो हीरा रे ।।१।।
लगै न तीर कमान बान कहुँ, मार सकै नहिं मीरा रे ।
तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनन्त तो तीरा रे ।।२।।
निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारे भव भीरा रे ।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे ।।३।।

ऐसे विमल भाव जब पावै.....

ऐसे विमल भाव जब पावै, हमरो नरभव सुफल कहावै ।।टेक।।
दरशबोधमय निज आतम लखि, पर-द्रव्यनि को नहिं अपनावै ।
मोह-राग-रुष अहित जान तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै ।।१।।
कर्म शुभाशुभ बध-उदय मे, हर्ष-विषाद चित्त नहिं ल्यावै ।
निज-हित-हेत विराग-ज्ञान लखि, तिनसौं अधिक प्रीति उपजावै ।।२।।
विषयचाह तजि आत्मवीर्य सजि, दुःखदायक विधिबन्ध खिरावै ।
'भागचन्द' शिवसुख सब सुखमय, आकुलता बिन लखि चित चावै ।।३।।

अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि.....

अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने ।।टेक।।
तीव्र कषाय उदय तैं भावित, दर्वित हिंसादिक अघ ठाने ।
सो सक्लेशभाव फल नरकादिक, गति दुःख भोगत असहाने ।।१।।
शुभ उपयोग कारनन मे जो, रागकषाय मन्द उदयाने ।
सो विशुद्ध तसु फल इन्द्रादिक, विभव-समाज सकल परमाने ।।२।।
परकारन मोहादिक तै च्युत, दरसन-ज्ञान-चरन रस पाने ।
सो है शुद्ध भाव तसु फल तै, पहुँचत परमानन्द ठिकाने ।।३।।
इनमे जुगल बन्ध के कारन, परद्रव्याश्रित हेय प्रमाने ।
'भागचन्द' स्वसमय निज हित लखि, तामै रम रहिये भ्रम हाने ।।४।।

बाबा ! मैं न काहू का,.....

बाबा ! मैं न काहू का, कोई नही मेरा रे ।।टेक।।
सुर नर नारक तिरयक गति में, मोकों करमन घेरा रे ।।१।।
मात पिता सुत तिय कुल परिजन, मोह गहल उरझेरा रे ।
तन धन वसन भवन जड़ न्यारे, हूँ चिन्मूरति न्यारा रे ।।२।।
मुझ विभाव जड़कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे ।
विभाव चक्र तजि धारि सुभावा, अब आनन्दघन हेरा रे ।।३।।
खरच खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे ।
जप तप व्रत श्रुत सार यही है, 'बुधजन' कर न अबेरा रे ।।४।।

शुभ कर्मों से पुण्य, अशुभ से पाप......

शुभ कर्मों से पुण्य, अशुभ से पाप कहाता आया है ।
दोनों में आकुलता रहती, दोनों ने भरमाया है ।।टेक।
एक लोह श्रृंखला अगर तो दूजी बेडी सोने की ।
दोनों बन्धन का कारण हैं, दोनों बोझा ढोने की ।।
पाकर आज गर्व क्या करता, कल है बारी खोने की ।
जो हँसता है उसको ही फिर चिन्ता होती रोने की ।।
है निश्चिन्त वही जिसने शुद्धोपयोग अपनाया है ।
दोनो में आकुलता रहती, दोनों ने भरमाया है ।।१।।
जिस डाली में फूल, उसी मे लगते तीखे शूल सखे ।
चिकनाहट है जहाँ, वहीं पर जम सकती है धूल सखे ।।
पर पदार्थ में रागभाव ही, होता दुख का मूल सखे ।
खो सम्यक्त्व ईश को भजना, होगी तेरी भूल सखे ।।
नेह किसी से भी हो बद है, बन्ध-बीज कहलाया है ।
दोनो में आकुलता रहती, दोनों ने भरमाया है ।।२।।
यह ससार रहट की चक्की, मधुमक्खी का छाता है ।
आठ कर्मरूपी पहियो पर, जिसको मोह चलाता है ।।
राग-द्वेष दो बैल जुते हैं, पाप-पुण्य का खाता है ।
आकुलता से कब बच सकते, जब विभाव से नाता है ।।
जीवन का पट क्षणिक कहीं पर धूप कही पर छाया है ।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।३।।
सर्दी गर्मी वर्षा सहकर घोर तपस्या करते हो ।
छोड नगर का वास अकेले वन के बीच विचरते हो ।।
योग साधना किस मतलब की, यदि भोगों पर मरते हो ।
बाहर से क्यो कर निर्भय, जब अन्तरंग में डरते हो ।।
पाप विकारभाव मान का व्यर्थ शरीर सुखाया है ।
दोनों मे आकुलता रहती, दोनों ने भरमाया है ।।४।।

तत्त्वज्ञान का चिन्तन करके, जब भय दूर भगाओगे ।
पर-पदार्थ से तज ममत्व को, समता मन में लाओगे ।।
इस त्रिफला को शान्ति-सुधारस के संग खूब चबाओगे ।
मोह-खटाई, कटु कषाय से भी परहेज रखाओगे ।।
तब वह जग की व्याधि मिटेगी, जिसने नाच नचाया है ।
दोनों में आकुलता रहती, दोनों ने भरमाया है ।।५।।

.....

हम न किसी के कोई न हमारा

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जग का व्योहारा
तन संबंधी सब परवारा, सो तन हमने जाना न्यारा।।टेक।।
पुण्योदय सुख का बढ़वारा, पापोदय दुःख होत अपारा।
पाप-पुण्य दोऊ संसारा, मैं हूं यह सब देखनहारा।।१।।
मैं तिहुँजग तिहुँकाल अकेला, परसंजोग भया बहुमेला।
थिति पूरी करि खिर-खिर जाहीं, मेरे हर्ष-शोक कछु नाहीं।।२।।
राग भावतैं सज्जन मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं।
राग-दोष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मैं चेतनपद माहीं।।३।।

.....

जब तैं आनन्द जननि दृष्टि

जब तैं आनन्द जननि दृष्टि परी माई।।टेक।।
तब तैं संसय विमोह भरमता विलाई।।१।।
मैं हूँ चित-चिन्ह भिन्न, पर तें पर जड़स्वरूप।
दोउन की एकता, सु जानी दुःखदाई।।२।।
रागादिक बन्धहेत, बन्धन बहु विपति देत।
संवर हित जान तासु, हेतु ज्ञानताई।।३।।
सब सुखमय शिव हैं तसु, कारन विधि झारन इमि।
तत्त्व की विचारन, जिनवानि सुधि कराई।।४।।
विषय-चाह ज्वाल तै, दह्यो अनन्त काल तैं।
सुधांबु स्यात्पदांक गाहतें, प्रशान्ति आई।।५।।
या बिन जगजाल में, न शरन तीनकाल में।
सम्हाल चित भजो सदीव, 'दौल' यह सुहाई।।६।।

समझ उर धर कहत गुरुवर.....

समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्मचिन्तन की घडी है ।
भव उदधि तन अथिर नौका, बीच मँझधारा पडी है ।।टेक
आत्म से है पृथक् तन-धन, सोच रे मन कर रहा क्या? ।
लखि अवस्था कर्म-जड की, बोल उनसे डर रहा क्या ।।
ज्ञान-दर्शन चेतना सम, और जग मे कौन है रे? ।
दे सके दुख जो तुझे वह, शक्ति ऐसी कौन है रे? ।।
कर्म सुख-दुख दे रहे हैं, मान्यता ऐसी करी है ।
चेतचेतन प्राप्त अवसर, आत्म-चिन्तन की घड़ी है ।।१।
जिस समय हो आत्मदृष्टि, कर्म थर थर काँपते हैं ।
भाव की एकाग्रता लखि, छोड़ खुद ही भागते हैं ।।
ले समझ से काम या फिर चतुर्गति ही मे विचर ले ।
मोक्ष अरू संसार क्या है, फैसला खुद ही समझ ले ।।
दूर कर दुविधा हृदय से, फिर कहाँ धोखा धड़ी है ।
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घडी है ।।२।
कुन्दकुन्दाचार्य गुरुवर, यह सदा ही कहि रहे हैं ।
समझना खुद ही पडेगा, भाव तेरे बहि रहे हैं ।।
शुभ क्रिया को धर्म माना, भव इसी से धर रहा है ।
है न पर से भाव तेरा, भाव खुद ही कर रहा है ।।
है निमित्त पर दृष्टि तेरी, बान ही ऐसी पड़ी है ।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म-चिन्तन की घड़ी है ।।३।
भाव की एकाग्रता रुचि, लीनता पुरुषार्थ कर ले ।
मुक्ति-बन्धन रूप क्या है, बस इसी का अर्थ कर ले ।।
भिन्न हूँ पर से सदा मै, इस मान्यता मे लीन हो जा ।
द्रव्य-गुण-पर्याय ध्रुवता, आत्म सुख चिर नीद सो जा ।।
आत्म गुण धर लाल अनुपम, शुद्ध रत्नत्रय जड़ी है ।
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म-चिन्तन की घड़ी है ।।४।

तोते से भाव वाले कभी.......

तोते से भाव वाले कभी तर ही जायेंगे
कबूतर से भाव वाले कभी तर न पायेंगे ।।टेक।।
कबूतर का धनी बाजरा और ज्वार खिलाता
छवड़े की गंदगी न कभी साफ करता
मालिक उसे हाथों से पकड करके उड़ाता
लेकिन वह थोड़ा उड़कर फिर दवड़े में आ जाता
ऐसे स्वभाव वाले कभी मुक्ति न पायेंगे
तोते का धनो प्यार से तोते को पढ़ाता
पिंजड़ा भी रखता साफ हिलाता और डुलाता
खाने को दाख मिसरी बादाम खिलाता
उस मोह में तोता कभी खुद को न फँसाता
मिल जाये गर खिड़की खुली तो फुर्र हो
नर देह धारी जीवों यह जान लो थोड़ा
बाहिरात्मा कबूतर हैं अंतरात्मा तोता
बहिरात्मा भवसिन्धु मे खाता रहे गोता
अन्तरात्मा निज शौर्य से परमात्मा होता
ऐसे जो तोता चश्म वो ही पार पायेंगे
कबूतर से भाव वाले कभी तर न पायेंगे

भगवन्त भजन क्यों भूला रे .....

भगवन्त भजन क्यों भूला रे
यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि बबूला रे ।।टेक।।
इस जोवन का कौन भरोसा, पावक में तृण पूला रे ।
काल कुदार लिये सिर ठाड़ा, क्या समझै मन फूला रे ।।१।।
स्वारथ साधै पांव पांव तू, परमारथ को लूला रे ।
कहु कैसे सुख पावे प्राणी, काम करै दुःख मूला रे ।।२।।
मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कन्ध वसूला रे ।
भज श्री राजमतीवर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे ।।३।।

जनम जनम तन धरने वाले.......

जनम-जनम तन धरनेवाले अपने से अनजान रे।
बसे देह के देवालय में देव तनिक पहचान रे।।टेक।।

किसी पुन्य से वैभव पाकर तू कितना मदहोश है।
मदहोशी में अति विभ्रम से करता अनमित दोष है।
दोषों पर फिर चादर ताने दया दान सम्मान की।
पाप पलेतो पुण्य व्यर्थ तब चर्चा थोथे ज्ञान की।
बाहर से तो शीश महल सा अन्दर से श्मशान रे।

चार दान के दान बहुत दे प्रतिपल इन्द्री भोग है।
कठिन तपस्या से इन्द्रासन का मिलता संयोग है।
पुन्य भाव से मिले देव गति नर्क पशु गति पाप से।
पाप-पुन्य मिलकर मनुष्य गति पीड़ित भव संताप से।
शुद्धातम की शरण तरण तारण उसको पहचान रे।

तीरथ तीरथ भटका पाया द्वार नहीं शिवधाम का।
नयन मूंदकर ध्यान किया कब अपने आतम राम का।
जग प्रपंच यह निज वैभव केकुशललुटेरे मान लो।
कृत्रिम कर्माधीन देह भी साथ न देगी जान लो।
तू अभेद अविनाशी अपना जगा भेद विज्ञान रे।

यह मोह उदय दुख पावै.....

यह मोह उदय दुख पावै, जगजीव अज्ञानी ।।टेक।।
निज चेतनस्वरूप नहिं जानै, पर-पदार्थ अपनावै।
पर-परिनमन नहीं निज आश्रित, यह तहँ अति अकुलावै ।।१।।
इष्ट जानि रागादिक सेवै, तै विधि-बंध बढ़ावै।
निजहित-हेत भाव चित सम्यक्दर्शनादि नहिं ध्यावै ।।२।।
इन्द्रिय-तृप्ति करन के काजै, विषय अनेक मिलावै।
ते न मिलैं तब खेद खिन्न ह्वै सममुख हृदय न ल्यावै ।।३।।
सकल कर्म छय लच्छन लच्छित, मोच्छदशा नहिं चावै।
'भागचन्द' ऐसे भ्रमसेती, काल अनन्त गमावै ।।४।।

भाई ! अन्तर उज्ज्वल करना रे ......

भाई ! अन्तर उज्ज्वल करना रे ।।टेक।।
कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे ।।१।।
जप तप तीरथ यज्ञ व्रतादिक, आगम अर्थ उचरना रे ।
विषय-कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि-पचि मरना रे ।।२।।
बाहिर भेष क्रिया उर शुचि सों, किये पार उतरना रे ।
नाहीं है सब लोक रंजना, ऐसे वेदन वरना रे ।।३।।
कामादिक मल सौं मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे ।
'भूधर' नीलवसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे ।।४।।

भजन बिन यौं ही जनम गमायो......

भजन बिन यौं ही जनम गमायो ।।टेक।।
पानी पैल्यां पाल न बांधी, फिर पीछैं पछतायो ।।१।।
रामा-मोह भये दिन खोवत, आशा-पाश बंधायो ।
जप तप संजम दान न दीनौं, मानुष जनम हरायो ।।२।।
देह सीस जब कांपन लागी, दसन चलाचल थायो ।
लागी आगि भुजावन कारन, चाहत कूप खुदायो ।।३।।
काल अनादि गुमायो भ्रमतां, कबहुँ न थिर चित ल्यायो ।
हरी विषयसुख भरम भुलानो, मृग तिसना-वश धायो ।।४।।

जिनराज भजा सो ही जीता रे......

जिन राज भजा सोही जीता रे ।।टेक।।
भजन किया पावै सिव संपति, भजन बिना रहै रीता रे ।।१।।
धरम बिना धन ह्वै चक्री सम, सो दुख भार सलीता रे ।
धरम मांहि रत धन नहिं तौ पण वो जग माहिं पुनीता रे ।।२।।
या सरधा बिन भ्रमत भ्रमत तोहि, काल अनन्त वितीता रे ।
वीतराग पद नरनि गही तिन, जनम सफल करि लीता रे ।।३।।
मन वचन द्रिढ़ प्रीति आनि उर, जिन गुन गावो मीता रे ।
नाम महात्म्य श्रवनन सुनि कै, 'नवल' सुधारस पीता रे ।।४।।

चेतन क्यों पर अपनाता है......

चेतन क्यों पर अपनाता है, आनन्दघन तू खुद ज्ञाता है ।।टेक।।
ज्ञाता क्यों करता बनता है, खुद क्रमबद्ध सहज पलटता है ।
सब अपनी धुन में धुनता है, तब कौन जगत में सुनता है ।।१।।
उठ चेत जरा क्यों सोता है, फिर देख ज्ञान क्या होता है ।
क्यों पर का बोझा ढ़ोता है, क्यों जीवन अपना खोता है ।।२।।
पर का तू करता बनता है, कर तो कुछ भी नही सकता है ।
यह विश्व नियम से चलता है, इसमें नहीं किसी का चलता है ।।३।।
जो परका असर मनाता है, वह धोखा निश्चय खाता है ।
जब जबरन का विष जाता है, तब सहज समझ में आता है ।।४।।
जो द्रव्य द्वारे आता है, वह जीवन ज्योति जगाता है ।
सुखधाम चिन्तामणि ज्ञाता है, आनन्द अनुभव नित पाता है ।।५।।

हे प्रभुवर मै चौरासी में......

हे प्रभुवर! मैं चौरासी में खो गया ।
जन्म हुआ ऐसा की जग मे खो गया ... ।।
जग में तुम सम अन्य देव मैं नही लखा ।
महाभाग्य से दर्श आपका मिल गया ।।
लख चौरासी में तुम ही हो खेवटिया ।
दिव्यध्वनी का सार जिनागम मिल ही गया ।।
तुम दर्शन से निज का दर्शन मिल गया ।
निज दर्शन ही तुम दर्शन फल मिल गया ।।
तुम दर्शन कर आज सुखामृत मिल गया ।
जन्म सफल हो करके नरभव खिल गया ।।
तुम समान अब स्वयं निजानन्द मिल गया ।
गया भरम–मल सिद्धों–सा सुख मिल गया ।।
तुम दर्शन से मुझे परम पद मिल गया ... ।।

करो अध्यात्म का सेवन, ...

करो अध्यात्म का सेवन, यही सुखकार दुखहारी।
यही जिनधर्म आराधन, यही सब कर्म क्षयकारी।।टेक।।
यही आतम है परमातम, यही सर्वज्ञ सवदर्शी।
यही है शांतिमय संबल, अमूरत सुख अमल धारी।।१।।
यही भगवान परमेश्वर, यही हैं सिद्ध अजरामर।
यही अमृत मयी सागर, यही अनुभव सुजल धारी।।२।।
इसी के जो रसिक मानव, सदा सुख शांति को पाते।
सफल नरभव वही करते लहें निज ज्ञान अविकारी।।३।।
अगर कुछ सार पाना है, अगर मन को रमाना है।
तो सुख सागर ये अध्यातम, यही है बग समकारी।।४।।

मुझे आनंदमय होकर . . . .

मुझे आनद मय होकर, सभी दुख दूर करना है।
चिदातम सार निज घर में, स्व वासा आप करना है।।टेक।।
नहीं है क्रोध मद माया, नहीं है लोभ भय कोई।
नहीं है कर्म की कालख, यही रुचि सार धरना है।।१।।
निज अनुभूति तिया मेरी, परम समता सखी जिसकी।
क्षमा शांति परम मित्रा, यही कल्लोल करना है।।२।।
परम वैराग्य मय शय्या, है आतम ज्ञान सत चादर।
इसी को ओढ़कर सुख से, समाधि सार धरना है।।३।।
भवोदधितार यह नौका, रतनत्रय मय परम सुखमय।
इसी पे चढ़ स्व सुखसागर, मई निज द्वीप सरना है।।४।।

मिथ्याभाव मत रखना प्यारेजी . . . .

मिथ्याभाव मत रखना प्यारेजी, मिथ्याभाव दुखदान बडा।
मिथ्याभाव तजिके निज हेरो, सो ज्ञाता जग जान बडा।।टेक।।
निज पर को बिन जाने जगत जन, कर्म जाल में आते हैं।
धन दौलत विषयन में फँसिके, बहुत भाँति दुख पाते हैं।।१।।

विषयन से हट जा रे सुधी नर, इसका विष चढ़ जावेगा।
तृष्णा लहर जहर का मारया, फिर गाफिल हो जावेगा।।२।।
तन धन यौवन जीवन बनता, इनको जो अपनावेगा।
ये तेरे नहिं संग चलेगे, फिर पीछे पछतावेगा।।३।।
तज पर भाव स्वभाव सम्हारै, वीतराग पद ध्यावेगा।
कहत 'जिनेश्वर' यह जगवासी, तब शिव मंदिर पावेगा।।४।।

अध्यात्म प्रीत लागी हो ....

अध्यात्म प्रीत लागी हो, परपरिणति त्यागी हो ।।टेक।।
जैसे पंछी पीजरे हो, ध्यान धरे बन वास ।
निज गुण सुमरे आत्मा हो, पर गुण रहत उदास ।।१।।
रतन जडत का पीजरा हो, सुवटा जानत बन्ध ।
तीन लोक की सम्पदा, ग्यानी के मन फन्द ।।२।।
सोS ह सोS ह होत है हो, अजपा जपिये जाप ।
तीन लोक मे सुख करे हो, केवल रूपी आप ।।३।।
कजली वन रेवा नदी हो, ग़ज विचरे वन माँहि ।
दर्शन ज्ञान चारित्र को हो, मुनि जन बिसरें नाँहि ।।४।।
ऐसे गुरु को सेइये हो, जग ते रहत उदास ।
राग द्वेष दोउ परिहरे हो, नमत बनारसीदास ।।५।।

संयोगों में ज्ञानी की ......

सयोगों में ज्ञानी की, परिणति नहिं कभी बदलती है ।
निज का पर का ज्ञान रहे, पर दृष्टि निज मे रहती है... ।।
दिखता पर–संयोगों में, पर आत्म भावना रहती है ।
हो स्वर्ग–नरक के क्षेत्र कभी, पर आतमदृष्टि रहती है ।।
राग-द्वेष में दिखे मगर, दृष्टि सभ्यक हीं रहती है ।
भेदज्ञान की धारा अविचल, निज परणति में चलती है ।।
होकर नग्न रूप निज ग्रहलूं, आत्मभावना रहती है ।
इसी भाव के बल के कारण, सिद्ध दशा पद लहती है ।।

९. भावना

भावना दिन-रात मेरी ....

भावना दिन-रात मेरी, सब सुखी संसार हो ।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर बार हो ।।टेक।।
धर्म का प्रचार अरु देश का उद्धार हो ।
और यह उजडा हुआ, भारत चमन गुलजार हो ।।१।।
रोशनी से ज्ञान का, संसार में प्रकाश हो ।
धर्म की तलवार से, हिंसा का सत्यानाश हो ।।२।।
शान्ति अरु आनन्द का, हर एक घर मे वास हो ।
वीरवाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो ।।३।।
रोग अरु भय शोक होवैं, दूर सब परमात्मा ।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत का आत्मा ।।४।।

आत्म स्वभावं अनुपमं ....

आतम स्वभाव से अमृत झरे, ताको ज्ञानी करै नित पान रे
कर्म राग पर्याय न जाके, आश्रय रहे दुख लेश न
सच्चिदानन्द प्रभो गुण खान आतम, है नाथों का नाथ रे ।।१।।
सर्व सकल्प विकल्पों से शून्य जो, निज वैभव आपूर्ण जो ।
निश्चय मंगल सर्वोत्कृष्ट रे, शरणभूत ध्रुव मात्र रे ।।२।।
आत्माराधन मुक्तिरूप है, मुक्ति का निश्चय कारण ।
वीतराग जिनदेव गुरुवर, जाको करैं गुणगान रे ।।३।।
इन्द्रिय वचन विकल्प अगोचर स्वानुभूति के गम्य जो ।
अरूपी अव्यक्त अशब्द अलिंग ग्रहण चैतन्य जो ।।४।।
द्वादशाग का सारभूत जो वन्दन शत-शत बार रे ।
ध्येय, श्रेय, श्रद्धेय एक जो वन्दन शत-शत बार रे ।।५।।

दिन रात मेरे स्वामी .....

दिन रात मेरे स्वामी, ये भावना मैं भाऊँ ।
देहांत के समय में, तुमको न भूल जाऊँ ।।टेक।।
शत्रू अगर कोई हों, सन्तुष्ट उनको कर दूँ ।
समता का भाव धर कर, सब से क्षमा कराऊँ ।।१।।
त्यागूं आहार पानी, औषध विचार अवसर ।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ ।।२।।
जागें नही कषायें, नहि वेदना सतावे ।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ ।।३।।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ ।
अरहंत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ ।।४।।
धर्मात्मा निकट हों, चरचा धर्म सुनावें ।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ ।।५।।
जीने की हो न वांछा, मरनेकी हो न इच्छा ।
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ ।।६।।
भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन ।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ ।।७।।
सम्यक्त्व का हो पालन, हो अन्त में समाधि ।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ ।।८।।

मोहि कब ऐसा दिन आय है .....

मोहि कब ऐसा दिन आय है
सकल विभाव अभाव होहिंगे, विकलपता मिट जाय है ।।टेक।।
यह परमातम यह मम आतम, भेदबुद्धि न रहाय है ।
औरनि की का बात चलावै, भेदविज्ञान पलाय है ।।१।।
जानैं आप आप में आपो, सो व्यवहार बिलाय है ।
नय परमान निखेपन माहीं, एक न औसर पाय है ।।२।।
दरसन ज्ञान चरन के विकलप, कहो कहां ठहराय है ।
'द्यानत' चेतन चेतन ह्वै है, पुद्गल पुद्गल थाय है ।।३।।

जग है अनित्य तामैं......

जग है अनित्य तामैं शरण न वस्तु कोय,।
तातैं दुःखरासि भववास कौं निहारिये।।टेक।।
एक चित् चिन्ह सदा भिन्न परद्रव्यनि तैं,।
अशुचि शरीर में न आपाबुद्धि धारियै।।१।।
रागादिक भाव करै कर्म को बढ़ावै तातैं,।
संवरस्वरूप होय कर्मबन्ध डारियै।।२।।
तीन लोक माँहि जिनधर्म एक दुर्लभ है,।
तातैं जिनधर्म कौ न छिनहू विसारिये।।३।।

ज्ञान हूँ मैं,ज्ञान हूँ मैं,......

ज्ञान हूँ मैं, ज्ञान हूँ मैं, ज्ञान हूँ मैं, ज्ञान ।
गूँजे दिव्यध्वनि गुणगान, बोले गणधर देव महान...।।
मै हूँ केवली-सा ज्ञान, मै हूँ सिद्धों की सन्तान ।
रच मात्र भी भेद नहीं है, देखूँ सिद्ध समान ।।
उपजे-विनशे सो मैं नाहीं, ध्रुव स्वभाव मम जान ।
पर्ययबुद्धि सहित मैं भटको, तुम जानत भगवान ।।
ध्रुव स्वभाव के अनुभव से हो, स्व—पर भेद—विज्ञान ।
भेदज्ञान के आश्रय से हो, लख चौरासी हान ।।
तुम्हरे ज्ञान माहि झलकत हैं, लोकालोक जहान ।
मै हूँ चेतना की खान, मैं हूँ अनन्त गुणों की जान ।।
महाभाग्य इस दुःख काल में, जिनवाणी श्रद्धान ।
ज्ञायकरूप बतावे मेरा, मिथ्या बुद्धि नशान ।।
नग्न दिगम्बर वेश लहूँ वो नशै जन्म दुःख हान ।
ज्ञायकमय हो रूप हमारो, ज्ञान हूँ मैं! ज्ञान ।।
हे! जिनजी ऐसा दो वरदान, जो पाऊँ निज आतम का ज्ञान ।
ज्ञान हूँ मैं! ज्ञान हूँ मैं! ज्ञान हूँ मैं! ज्ञान .... ।।

द्रव्य रूप करि सर्व थिर ....

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गौन।।टेक।।
शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह उदय जिय के वृथा आन कल्पना होय।।१।।
परद्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।२।।
परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय।।३।।
अपने अपने सत्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवे जीव तब, परतें ममत न थाय।।४।।
निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।५।।
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार।।६।।
निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संयम धरम, करैं पाप की हानि।।७।।
संवर मय है आतमा, पूर्व कर्म झड जाय।
निज स्वरूप को पायकर, लोक शिखर जब थाय।।८।।
निज स्वरूप विचारि कें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि।।९।।
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं।।१०।।
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि।।१०।।

सफल है धन्य-धन्य वा घरी.....

सफल है धन्य-धन्य वा

जब ऐसी अति होसी, परमदशा ह

धारि दिगम्बर दीक्षा सुन्दर, त्याग परिग्रह अ

वनवासी कर पात्र परीषह, सहि हों धीर धरा।।१।।

दुर्धर तप निर्भर नित तप हौं, मोह कुवृक्ष करी।

पञ्चाचार क्रिया आचर ही, सकल सार सुधरी।।२।।

विभ्रम ताप हरन झरसी निज, अनुभव-मेघ-झरी।

परम शान्त भावन की तातैं, होसी वृद्धि खरी।।३।।

त्रेसठि प्रकृति भंग जब होसी, जुत त्रिभग सगरी।

तब केवलदर्शन विबोध सुख, वीर्यकला पसरी।।४।।

लखि हो सकल द्रव्य गुन पर्जय, परणति अति गहरी।

'भागचन्द' जब सहजहि मिलहै, अचल मुकति नगरी।।५।।

मोहे आतम कारज करना है.....

मोहे आतम कारज करना है।

सुत दारा सब स्वारथ साँचे, इनतें ममत न करना है।।टेक।।

जग के रिश्ते नाते झूठे, साथी सगा न अपना है।

महल अटारी धन-दौलत, ये झूठा जग का सपना है।।१।।

देह विनश्वर मैं अविनश्वर, स्वातम में नित जमना है।

द्रव्यकर्म पुदगल की सम्पत्ति, भेदज्ञान में लखना है।।२।।

राग-द्वेष की परिणति से, पार स्वयं में पगना है।

शुभ्र एकान्त विजन में, शीघ्र स्वयं ही चलना है।।३।।

अक्षत शाश्वत चिर उद्योतित, आतम में नित बहना है।

ज्ञायक ज्योति से ज्योतित हो, बस ज्ञान मात्र ही करना है।।४।।

स्वातम रुचि का दीप जलाकर, केवल द्योतित रहना है।

अष्ट-कर्म की होली जलाकर, सिद्ध स्वयं ही बनना है।।५।।

तन-मन-धन सब अर्पण कर, मोहे शिवरमणी को वरना है।

'चिन्मय' का चिर आश्रय पाकर, 'तन्मय' उसमें होना है।।६।।

द्रव्य रूप करि सर्व थिर ....

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गौन।।टेक।।
शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह उदय जिय के वृथा आन कल्पना होय।।१।।
परद्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।२।।
परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय।।३।।
अपने अपने सत्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवे जीव तब, परतें ममत न थाय।।४।।
निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।५।।
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार।।६।।
निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संयम धरम, करैं पाप की हानि।।७।।
संवर मय है आतमा, पूर्व कर्म झड जाय।
निज स्वरूप को पायकर, लोक शिखर जब थाय।।८।।
निज स्वरू५ विचारि कें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि।।९।।
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहि।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहि।।१०।।
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि।।१०।।

सफल है धन्य-धन्य वा घरी.....

सफल है धन्य-धन्य वा घरी
जब ऐसी अति होसी, परमदशा हमरी।।टेक।।
धारि दिगम्बर दीक्षा सुन्दर, त्याग परिग्रह अरी।
वनवासी कर पात्र परीषह, सहि हो धीर धरी।।१।।
दुर्धर तप निर्भर नित तप हौं, मोह कुवृक्ष करी।
पञ्चाचार क्रिया आचर ही, सकल सार सुथरी।।२।।
विभ्रम ताप हरन झरसी निज, अनुभव-मेघ-झरी।
परम शान्त भावन की तातैं, होसी वृद्धि खरी।।३।।
त्रेसठि प्रकृति भग जब होसी, जुत त्रिभग सगरी।
तब केवलदर्शन विबोध सुख, वीर्यकला पसरी।।४।।
लखि हो सकल द्रव्य गुन पर्जय, परणति अति गहरी।
'भागचन्द' जब सहजहि मिलहै, अचल मुकति नगरी।।५।।

मोहे आतम कारज करना है.....

मोहे आतम कारज करना है।
सुत दारा सब स्वारथ साँचे, इनतें ममत न करना है।।टेक।।
जग के रिश्ते नाते झूठे, साथी सगा न अपना है।
महल अटारी धन-दौलत, ये झूठा जग का सपना है।।१।।
देह विनश्वर मैं अविनश्वर, स्वातम में नित जमना है।
द्रव्यकर्म पुदगल की सम्पत्ति, भेदज्ञान में लखना है।।२।।
राग-द्वेष की परिणति से, पार स्वयं में पगना है।
शुभ्र एकान्त विजन में, शीघ्र स्वयं ही चलना है।।३।।
अक्षत शाश्वत चिर उद्योतित, आतम में नित बहना है।
ज्ञायक ज्योति से ज्योतित हो, बस ज्ञान मात्र ही करना है।।४।।
स्वातम रुचि का दीप जलाकर, केवल द्योतित रहना है।
अष्ट-कर्म की होली जलाकर, सिद्ध स्वयं ही बनना है।।५।।
तन-मन-धन सब अर्पण कर, मोहे शिवरमणी को वरना है।
'चिन्मय' का चिर आश्रय पाकर, 'तन्मय' उसमें होना है।।६।।

एक बार बस एक बार

राग-द्वेष में वर्षो बीते, अब निज सुधी भी आने दो ।
एक बार बस एक बार, मुझे आतम ज्योति जलाने दो ।।टेक।।
पडा अनादि मिथ्यात्व हृदय मे उसका शमन करूँगा मैं ।
अध करण परिणाम के द्वारा, समकित प्राप्त करूँगा मैं ।।
उपशम कर अन्तर्मुहूर्त में क्षयोपशम धर लूँगा मै ।
भ्राता अपने चारित्र द्वारा, श्रेणी भी चढ लूँगा मै ।।
होने दो टुकड़े बैरी के, घर से उसे भगाने दो ।
एक बार बस एक बार मुझे आतम ज्योति जलाने दो ।।१।।
काँप उठा मिथ्यात्व सम्बन्धी योद्धा भी अब घबडाये ।
दर्शन मोह की मौत देख चारित्र भाई भी थर्राये ।।
काम क्रोध मद लोभ भी भागे, चचा भतीजे जीजा साले ।
पडने लगी तभी प्राणो के, कुमति कुबुद्धि को लाले ।।
खडे उदास मोह राजा, विकट समस्या सुलझाने दो ।
एक बार बस एक बार मुझे आतम ज्योति जलाने दो ।।२।।
बडे अकड़ते चेतन राजा, आये है अधिकार लिये ।
क्षमा शील संयम विवेक, सेनाओ को साथ लिये ।।
बोल उठे मन्त्री विवेक, तू सोच न कर चेतन राजा ।
नष्ट करूँगा तुरत मोह को, भेद विज्ञान खड्ग द्वारा ।।
विरोधियो से लूँगा बदला, पार्टी पावर मे आने दो ।
एक बार बस एक बार मुझे, आतम ज्योति जलाने दो ।।३।।
कहने लगे मोह राजा, निज सत्ता को नहिं जाना क्या ।
भगा तुझे अन्तरमहूर्त मे, चेतन तुमने समझा क्या ।।
भले क्षयोपशम तू कर ले, श्रेणी न चढ़ने दूँगा ।
गिरा गुणस्थान ग्यारहवें से, मिथ्यातम मे पटकूँगा ।।
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, अन्तराय जग जाने दो ।
एक बार बस एक बार, मुझे आतम ज्योति जलाने दो ।।४।।

पुरुषार्थ वजीर हँसकर बोला, क्षायिक की कोशिश कर लूँ ।
सहज ज्ञान स्वभाव के द्वारा, शिव-रमणी को भी वर लूँ ।।
चढ़ श्रेणी में क्षपक तभी, श्रद्धा चारित्र धर लूँगा ।
सयोगी और अयोगी प्रभु बन, सिद्धपुरी में जाऊँगा ।।
ध्वंश हो जायेंगे राग-द्वेष, ध्रुवधाम का शंख बजाने दो ।
एक बार बस एक बार, मुझे आतम ज्योति जलाने दो ।।५।।

मैं वो दिन कब पाऊँ......

मैं वो दिन कब पाऊँ, घर को छोड बन जाऊँ ।
अंतर बाहिर त्याग परिग्रह, नग्न स्वरूप बनाऊँ ।।टेक।।
सकल विभावमय परिणति तज स्वाभाविक चित लाऊँ ।
पर्वत गुफा नगर सुन्दर घर, दीपक चाद मनाऊँ ।।१।।
भूमि सेज आकाश चदोबा, तकिया भुजा लगाऊँ ।
उपल जान मृग खाज खुजावत, ऐसा ध्यान लगाऊँ ।।२।।
क्षुधा तृषादिक सहूँ परीषह, बारह भावन भाऊँ ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, दशलक्षण उर लाऊँ ।।३।।
चार घातिया कर्म नाशाकर, केवलज्ञान उपाऊँ ।
घात अघाति लहूँ शिव 'मक्खन' फेर न जग में आऊँ ।।४।।

मेरे कब ह्वै वा दिन की सुघरी ......

मेरे कब ह्वै वा दिन की सुघरी ।।टेक।।
तन बिन वसन असन बिन वन में, निवसों नासादृष्टि धरी ।।१।।
पुण्य-पाप परसौं कब विरचों, परचों निजनिधि चिरबिसरी ।
तज उपाधि सजि सहज समाधि, सहो घाम हिम मेघझरी ।।२।।
कब थिरजोग धरों ऐसो मोहि, उपल जान मृग खाज हरी ।
ध्यान कमान तान अनुभव-शर, छेदों किहि दिन मोह अरी ।।३।।
कब तृन-कंचन एक गिनों अरु, मनिजडितालय शैल दरी ।
'दौलत' सतगुरु चरन सेव जो पुरवो आश यहै हमरी ।।४।।

राजा राणा छत्रपति ....

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार।।टेक।।

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार
मरती विरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान
कहूँ न सुख ससार में, सब जग देख्यो छान

आप अकेलो अवतरे, मरै अकेलो होय
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह

जहाँ देह अपनी नही, तहाँ न अपनो कोय
घर सपत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमै सदा
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नही

सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमैं
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर

पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार

चौदह राजु उतग नभ, लोक पुरुष संठान
तामें जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान

धन कन कंचन राज सुख, सबहि सुलभकर जान
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान

जाँचेसुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन

चल पड़े जिस पंथ पर ....

चल पड़े जिस पंथ पर गन्तव्य वो पाके रहेंगे।
चाहे कुछ हो जाये अब हम अपने घर जाके रहेंगे ।।टेक।।

मत समझना आप कि मैं इससमय भरमा रहा हूँ
वेदना का वेद अन्तर भेद कर बतला रहा हूँ
आजकल का है नहीं यह दुख अनादि कौन मेटे
जाने कितनी नाँव में हम जाने कितनी बार बैठे
पार हो पाये नहीं इस बार कुछ पाके रहेंगे

आज तक हमने न अपने आपका कुछ मर्म समझा
शुभ क्रिया होने पे ही उस कर्म को ही धर्म समझा
अब हुआ आभास केवल पाप ने ही कब नचाया
पुण्य के वैभव ने भी हर ओर हर डगडग घुमाया
शुभाशुभ को छोड़ अब निज शुद्धता पाके रहेंगे

कस चुके हम कमर अपनी विश्व को ताने न देंगे
हैं सजग अन्दर से अब हम यह समय जाने न देंगे
आज तक पर में ही पड़के पड़े देने हमें फेरे
जो नहीं अपने बने क्यों हो लिए हम उनके चेरे
सही हक है जो हमारा, वही हम पाके रहेंगे

ज्ञान में अरु ध्यान में ....

ज्ञान मे अरु ध्यान में, अब मन लगाना चाहिये ।
अपने जीवन को सदा, सुखमय बनाना चाहिये ।।टेक।।
है स्वतः सुखमय सदा, पर दिल में आना चाहिये ।
अपने आतम का महातम, देख पाना चाहिये ।।१।।
है नहीं निज से जुदा, उसको लखाना चाहिये ।
पर जुदा सब अन्य से, यह भेद भाना चाहिये ।।२।।
मैं हूँ आपी आप में, ज्ञानी यह माना चाहिये ।
रागी नहीं द्वेषी नहीं, सतरूप ध्याना चाहिये ।।३।।
है यही सम्यक् तप, चारित्र पाना चाहिये ।
मै समय का सार हूँ, यह ही मनाना चाहिये ।।४।।

मै नहीं संसार में, नहिं मोक्ष जाना चाहिये
सुखमयी सागर सलिल, निज को पिलाना चाहिये

भव-वन में जी भर घूम चुका ....

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुरझाएँ।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या।।
संसार महा दुख-सागर के, प्रभु दुखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचनकामिनि प्रासादों में।।
मैं एकाकी एकत्व लिए, एकत्व लिए सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिए, निज समरस पीने वाला हूँ।।
जिसके श्रृंगारों में मेरा यह, महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानसवाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पडें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से अमृत के झरने फूट पड़े।।
हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकांत विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बनें फिर हमको क्या।।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो, दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनस जावे।।
चिररक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग मे न हमारा कोई था, हम भी न रहे जग के साथी।।

दुविधा कब जैहै या मन की......

दुविधा कब जैहै या मन की ।।टेक।।
कब निजनाथ निरंजन सुमिरों, तज सेवा जन-जन की ।।१।।
कब रुचि सौं पीवौं दृग चातक, बूंद अखयपद धन की ।
कब सुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की ।।२।।
कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दृढता सुगुरु वचन की ।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ।।३।।
कब घर छाँडि होहुं एकाकी, लिये लालसा वन की ।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलि बलि वा छिन की ।।४।।

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा......

मै निज आतम कब ध्याऊँगा ।।टेक।।
रागादिक परिनाम त्याग कै, समता सौ लौ लाऊँगा ।।१।।
मन-वच-काय जोग थिर करकै, ज्ञान-समाधि लगाऊँगा ।
कबधौ क्षिपकश्रेणि चढि ध्याऊँ, चारित मोह नशाऊँगा ।।२।।
चारो करम घातिया खन करि, परमातम पद पाऊँगा ।
ज्ञान दरश सुख बल भण्डारा, चार अघाति नसाऊँगा ।।३।।
परम निरजन सिद्ध शुद्धपद, परमानन्द कहाऊँगा ।
'द्यानत' यह सम्पति जब पाऊँ, बहुरि न जग मे आऊँगा ।।४।।

प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजे ......

प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजे ।।टेक।।
राग-दोष दावानल से बच, समतारस में भीजे ।।१।।
पर में त्याग अपनपो, निज में लाग न कबहूँ छीजे ।
कर्म-कर्मफल माहि न राचत, ज्ञान सुधारस पीजे ।।२।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निधि, ताकी प्राप्ति करीजे ।
मुझ कारज के तुम बड़ कारन, अरज 'दौल' की लीजे ।।३।।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे.....

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे, सप्त भयों से नही डरेंगे ।।टेक।।
सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे, जीव-अजीव पहिचान करेंगे ।
स्व-पर भेद-विज्ञान करेंगे, निजानन्द का पान करेंगे ।।१।।
पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे, गुरुजन का सम्मान करेंगे ।
जिनवाणी का श्रवण करेंगे, पठन करेंगे, मनन करेंगे ।।२।।
रात्रि भोजन नहीं करेगे, बिना छना जल काम न लेंगे ।
निज स्वभाव को प्राप्त करेंगें, मोह भाव का नाश करेंगे ।।३।।
राग-द्वेष का त्याग करेंगे, और अधिक क्या? बोलो बालक ।
भक्त नही भगवान बनेंगे ।।४।।

धुन धुन धुनिया अपनी धुन.....

धुन धुन धुनिया अपनी धुन, निज की धुन में पाप न पुन्य ।।टेक।।
तेरी सुई में चार बिनोले, क्रोध, मान, अरु माया लोभ ।
पहिले इनको चुन-चुन-चुन धुन धुन धुनिया ।।१।।
बाहर से अब मन को मोडो, राग द्वेष मद की जड़ खोदो ।
निज को निज में गुन-गुन-गुन धुन धुन धुनिया ।।२।।
जब हो परणति ऐसी तेरी, अलख निरजन की भज भेरी ।
अनहद ध्वनि तब सुन-सुन-सुन धुन धुन धुनिया ।।३।।
सोऽह सोऽह भज ले मन में, निज को रंग ले निज के रंग मे ।
भेद मिटे तब तुन-तुन-तुन धुन धुन धुनिया ।।४।।

जिय ऐसा दिन कब आय है.....

जिय ऐसा दिन कब आय है
सकल विभाव अभाव रूप ह्वै, चित विकलप मिट जाय है ।।टेक।।
परमातम में निज आतम में, भेदा-भेद विलाय है ।
औरों की तो चलै कहां फिर, भेद-विज्ञान पलाय है ।।१।।
आप आपको आपा जानत, यह व्यवहार लजाय है ।
नय परमान निक्षेप कही ये, इनको औसर जाय है ।।२।।
दरसन ज्ञान भेद आतम के, अनुभव माँहि पलाय है ।
'नन्दब्रह्म' चेतनमय पद में, नहि पुद्गलगुण भाय है ।।३।।

१०. आध्यात्मिक

चिदानन्द चिद्रूप आत्मन् ....

चिदानन्द चिद्रूप आत्मन् ! निज का अनुभव किया करो।
सब संकल्प विकल्प तोड़कर सुखमय जीवन जिया करो ।।टेक।।
आशंकाओं के घेरे में, शाँति की होली जलती
होनी तो होकर ही रहती, टाले कभी नहीं टलती।
निजस्वभाव के बल से चेतन, अप्रभावित ही रहा करो।।१।।
आत्मानुभव ही परम रसायन, परमौषधि और परमामृत
आत्मानुभव से रहित आत्मा, जीवित होने पर भी मृत।
विषय-चाह की दाह शमन को, ज्ञानामृत तुम पिया करो।।२।।
आत्मानुभव होते ही तत्क्षण, सम्यग्दर्शन प्रगट होता
महापाप मिथ्यात्व नशाता, मुक्तिमार्ग शुरू होता।
पर से हो निवृत्त स्वयं में, सहज तृप्त नित रहा करो।।३।।
अन्तरात्मा कहलाते जब, निज सम्मुख दृष्टि होती
तब ही बने कार्य परमातम, जब निज में थिरता होती।
बस हो सर्व विकल्पों से, नित 'मैं ज्ञायक' यह लखा करो।।४।।

मुझे निज सुमरन ही में रहना ....

मुझे निज सुमरन ही में रहना।
त्याग नेह पर वस्तु जगत का, समता में रत रहना ।।टेक।।
चिन्ता तज कर होय यत्नमय, सम्यग्दर्शन सजना।
सम्यग्ज्ञान दीप अनुपम ले, देख जगत सब रहना।।१।।
सम्यक् चारित्र पाल शांति से, कर्म काष्ट को दहना।
रत्नत्रयमय आतम शांति, आनंद मय उर धरना।।२।।
मोक्ष मोक्षमग होय आप में, देखि आप गुण भरना।
भव सागर से पार करन को, निज नौका चढ़ वहना।।३।।
सुखसागर का दीप अनूपम, जाकर तप अनुसरना।
कर्म कलंक मिटाकर जड़ से, शुद्ध सिद्धमय रहना।।४।।

आतम अनुभव कीजिये ....

आतम अनुभव कीजिये यह ससार असार हो ।।टेक।।
जैसो मोती ओस का, जात न लागे वार हो।
जैसे सब वनिजौ विषै, पैसा उतपति सार हो।।१।।
तैसे सब ग्रन्थन विषै अनुभव हित निरधार हो।
पच महाव्रत जे गहे, सहै परीषह भार हो।।२।।
आतम ज्ञान लखें नही, वूडै काली धार हो।
बहुत अग पूरव पढ्यो, अभव्यसेन गवार हो।।३।।
भेद विज्ञान भयो नही, रूल्यो सरव ससार हो।
बहु जिनवानी र्नाह पढ्यो, शिवभूति अनगार हो।।४।।
घोष्यो तुष अरु माष को, पायो मुकति द्वार हो।
जे सीझे जे सीझे है, जे सीझैं इहिवार हो।।५।।
ते अनुभव परसाद तैं, यो भाष्यो गणधार हो ।
पारस चिन्तामणि सबे, सुरतरु आदि अपार हो ।।६।।
ये विषया सुख को करै, अनुभव सुख सिरदार हो ।
'द्यानत' ज्ञान विराग ते, तद्भव मुकति मझार हो ।।७।।

चेतन प्यारे आजा म्हारे देश ....

चेतन प्यारे आजा म्हारे देश ।।टेक।।
सुख को थान स्वघर तजि कीनो, क्यों पर घर परवेश ।
होत कलेश नरेशन को भी, जो पहुँचे परदेश ।।१।।
तुमरी परणति मे शुभ चितक, मुझसे रीति न लेश ।
सात प्रकृति जो मेरी वैरनि, तिनसो प्रीति विशेष ।।२।।
उनकी सगति जब लग तेरे, तब लग मिथ्या वेष ।
ताके होत ज्ञान व्रत सारे निष्फल काय कलेश ।।३।।
नित्य निगोद ते, ग्रैवक लौं चढि कीनौं भ्रमन अशेष ।
पै मुझ बिन थिर रूप निराकुल, पद न लियो अमरेश ।।४।।
धर सरधा आतम रुचि कीजे, यही तुम्हारो भेष ।
यही हमारो देश गहो किन, चम्पा हित उपदेश ।।५।।

पर-पद में सुख माना अब तक ....

पर-पद में सुख माना अब तक, अपनी मंजिल खोई ।
चारों गति में भटक रहा क्यों, ओ अनजान बटोही ।।टेक।।

पर में खोज रहा जिस सुख को, वह है तेरे अन्दर
एक बार तो देख सुखों का, लहरा रहा समन्दर
बन कर दीन डोलता फिरता, तीर्थ मथुरा काशी
तू ही स्वयं सिद्ध परमातम, अजर अमर अविनाशी
अब तक मिथ्या भ्रम में पड़ कर, व्यर्थ उमरिया खोई

क्रियाकांड को धर्म समझ कर अब तक समय गमाया
संक्लेशों का सागर झेला, खुद को समझ न पाया
भटक रहा मोहान्धकार में, उमर गमाता हर क्षण
तत्वों की पैनी छैनी से, काट मोह का बन्धन
राग द्वेष को मार तुझे, बनना होगा निर्मोही

सदगुरु बुला रहे हैं तज दे, मृग तृष्णा का फेरा
युगों-युगों के बाद आज, आया है सुखद सवेरा
मोह नींद को त्याग भेद विज्ञान हृदय में धर ले
सम्यक् दर्शन का दर्शन कर, जग से पार उतर ले
काका व्यर्थ गमाता नरभव, बेल न सुख की बोई

अन्तर्मुख हो खोज निकालो.........

अन्तमुर्ख हो खोज निकालो, चमक रही है ज्ञायक ज्योति ।।टेक।।
निज वैभव से रहा अपरिचित, जड वैभव को हाथ पसारे
याचक बनकर भीख माँगता, दीन-हीन बन द्वारे-द्वारे
कौन सुनेगा तेरी जग में, निद्रा में सब दुनिया सोती

यह तो ज्ञात सभी को होगा, किसमें से नवनीत निकलता
भले दूध में ना दिखता हो, किन्तु बिलोने पर तो मिलता
रे! सागर की गहराई में, मिल जाते हैं सुन्दर मोती

तीन लोक का नाथ स्वयं तू, क्यों अनाथ बन रोता फिरता
पुण्योदय में हँसने लगता, पापोदय ओंधे मुँह गिरता
पुण्य-पाप संसार चक्र है, इसमें पागल दुनिया रोती

निकट निज रूप में समता ....

निकट निज रूप में समता, उसे तू दूर क्यों ढूंढै।
तेरा चेतन तुझी में है, उसे क्यों नहीं अभी ढूंढै ।।टेक।।
न जिस बिन है सुखी कोई, जगत दुख कीच में डूबा।
फँसा जो पर की उलझन में, वह निज आतम को क्या ढूंढै ।।१।।
है परदा कर्म का माना, मगर किसने उसे डाला।
तुही कर्ता है कर्मों का, तू पर कर्तृत्व क्या ढूंढै ।।२।।
विराने से करी मिल्लत, इसी से हो गया वैसा।
तू बस अब मोह को तज दे,तू पर में आप को ढूंढै ।।३।।
अगर तू आप को जाने, बने तू आपसा आपी।
सुखोदधि में हो तन्मयता, इधर जो आप को ढूंढै ।।४।।

एजी मैनें आतम बाग लगाया ....

एजी मैने आतम बाग लगाया
चिर इच्छुक था अमृत फल का, अवसर अब वन आया ।
डाल बीज सम्यक् समभूमि, ज्ञान सुजल सिचवाया ।।टेक।।
धर्म वृक्ष की छाह दयामय, सत्य पुष्प महकाया ।
वामैं विरहत पावत साता, दुख समा हटवाया ।।१।।
निज अनुभूति रानी सग मे, वाके रंग में रगाया ।
वाग अनूपम देखत देखत, निज आँखिन सुखपाया ।।२।।
निज रस रसिया पंछी आकर, सोऽहं सोर मचाया ।
मिष्ट ध्वनि सुन अन्तर प्रगटे, भव का मोह नशाया ।।३।।
या उपवन की सेवा कर कर, अमृत फल नित पाया ।
जिन जिन सेया तिन फल पाया, अनुभव स्वाद मिलाया ।।४।।

लागा आतमराम सौं मारो नेहरा ....

लागा आतमराम सौ मारो नेहरा ।।टेक।।
ज्ञान सहित मरना भला रे, छूट जाय ससार ।
धिक्क परौ यह जीवन रे, मरना बारंबार ।।१।।

साहिब साहिब मुँह तैं कहते, जानै नाही कोय ।
जो साहिब की जाति पिछाने, साहिब कहिये सोय ।।२।।
जो जो देखौ नैनों सेती, सो सो विनसे जाय ।
देखनहारा मैं अविनाशी, परमानंद सुभाय ।।३।।
जाकी चाह करें सब प्रानी, सो पायो घट माही ।
'द्यानत' चिन्तामणि के आये, चाह रही कछु नाही ।।४।।

आत्म अबाध निरंतर चिंतें . . . .

आत्म अबाध निरंतर चिते, सन्त महातम देखहु प्राणी ।।टेक।।
रागादिक जड़ पुद्गल नाचे, देखनहारा मैं नित जानी ।
स्फटिक माँहि ज्यों वरण दिखत हैं, तदगत नाहीं स्वच्छ दिखानी ।।१।।
वरणादिक विकार मम नाही, मेरो है चैतन्य निसानी ।
है अनादि इक क्षेत्रहि माहीं, तदपि लक्षण भिन्ना पहिचानी ।।२।।
मै निज ज्ञायक रस सर्वांगी, लवण क्षारवत् लीला जानी ।
ज्ञायकरस इक स्वाद न आयो, ता कारण पर में हित मानी ।।३।।
नंदब्रम्ह निरलेप विकाशी, मूरत है मम सिद्ध समानी ।
नित अकलंक अनत गुणातम, निर्मल पक बिना ज्यों पानी ।।४।।

सुनो जिया ये सतगुरू की बातें . . . .

सुनो जिया ये सतगुरु की बातें, हित कहत दयाल दयातैं ।।टेक।।
यह तन आन अचेतन है तू, चेतन मिलत न यातैं ।
तदपि पिछान एक आतम को, तजत न हठ शठता तैं ।।१।।
चहुँ गति फिरत भरत ममता को, विषय महा विष खातैं ।
तदपि न तजत न रजत अभागे, दृग व्रत बुद्ध सुधातें ।।२।।
मात तात सुत भ्रात स्वजन तुझ, साथी स्वारथ नातैं ।
तूँ इन काज साज गृह को सब, ज्ञानादिक मत घातैं ।।३।।
तन धन भोग संयोग स्वपन सम, वार न लगत बिलातैं ।
ममत न कर भ्रम तज तूं भ्राता, अनुभव ज्ञान कलातैं ।।४।।
दुर्लभ नर भव सुथल सुकुल है, जिन उपदेश लहा तैं ।
'दौल' तजौ मनसौं ममता ज्यों, निवड्यौ द्वन्द दशातैं ।।५।।

मैं ज्ञायक को पहचानूँगा ....

मै 'ज्ञायक को पहचानूँगा ज्ञायक की श्रद्धा लाऊँगा ।
ज्ञायक में ही बस जाऊँगा, अरु ज्ञायक ही बन जाऊँगा ।।टेक।।
नहि तन-धन की आशक्ति से, नहि राग कर्म की दृष्टि से ।
नहि पुण्य भाव आशक्ति से, कर्मों की सृष्टि रचाऊँगा ।।१।।
संयोग निमित्तों से हटकर, रागादि भेद से भिन्न सुमरि ।
तजकर साधक विकल्प को भी, मैं ज्ञायक ध्यान लगाऊँगा ।।२।।
यदि कर्म उदय में आता है तो, आये कुछ परवाह नहीं ।
नहि इष्ट-अनिष्ट की चाह रही, इनसे उपयोग हटाऊँगा ।।३।।
उपयोग कदाचित जायेगा, मैं तत्व स्वरूप विचारूँगा ।
हट दूर तमाशा देखूँगा, नहि किंचित रुदन मचाऊँगा ।।४।।
ज्यो ढाल लगाकर समर बीच, योद्धा अरि-वार बचाता है ।
त्यों वीतराग-विज्ञान ढाल से, कर्म प्रहार बचाऊँगा ।।५।।
नहि चिंता कर्म विकल्पों की, ये तो स्वरूप से भिन्न सदा ।
ये तो खुद ही भग जावेगे, जब मै निज मे रम जाऊँगा ।।७।।
पहिचान न निज की हुई इसी से, भव मे भ्रमण किया अब तक ।
दुख कारण भी पर को समझा, ये झूठी समझ मिटाऊँगा ।।८।।
वस्तु स्वरूप की सत श्रद्धाकर, निज स्वभाव के आश्रय से ।
सारे दुखो से रहित आतम पद, चिदानन्द प्रगटाऊँगा ।।९।।

निज आतम कब ध्याऊँगा ....

निज आतम कब ध्याऊँगा ।
कब निज नाथ, निरंजन लाख करि, ताही में रम जाऊँगा ।।टेक।।
कब रज रहस वेदनी आयु, अरि कुल नाश कराऊँगा ।
तन तज रागादिक परकृत लख, इनको अति बिलगाऊँगा ।।१।।
रूप गध रस फरस बिना, चिनमूरति निज प्रगटाऊँगा ।
दासोऽहं तज भज सोऽह पुनि, अहं अहं मय थाऊँगा ।।२।।
दर्शन ज्ञान चरन के विकलप, सब ही दूर भगाऊँगा ।
'दीप' आप में आपहि लखिके, आपहि आप रहाऊँगा ।।३।।

आत्म नगर में ज्ञान की गंगा.......

आत्मनगर में ज्ञान की गंगा, जिसमें अमृत बासा है ।
सम्यग्दृष्टि भर भर पीवें, मिथ्यादृष्टि प्यासा है ।।टेक।।

सम्यग्दृष्टि समता जल में, नित ही गोते खाता है
मिथ्यादृष्टि राग द्वेष की, आग में झुलसा जाता है
समता जल का सिंचन कर ले, जो सुख शांति प्रदाता है

पुण्य भाव को धर्म मानकर, के संसार बढ़ाता है
राग बन्ध की गुत्थी को यह, कभी न सुलझा पाता है
जो शुभ फल में तन्मय होता, वह निगोद को जाता है

पर में अहंकार तू करता, पर का स्वामी बनता है
इसीलिये संसार बढ़ाकर, भव सागर में रुलता है
एक बार निज आतमरस का, पान कर   हे ज्ञाता है

क्रोध मान माया छलनी, नित प्रति ही तुझको ठगती है
मिथ्या रूपी चोर लुटेरों ने, आतम निधि लूटी है
जगा रही अध्यातम वाणी, अरु जिनवाणी माता है

मानुष भव दुर्लभ ये पाकर, आतम ज्योति जगानी है
ज्ञान उजेले में आ करके, अपनी निधि उठानी है
है तू शुद्ध निरंजन चेतन, शिव रमणी का बासा है

जिसने अपने को नहीं जाना, पर को अपना माना है
मैं मैं करता चला आ रहा, दुःख पर दुःख ही पाना है
दया आतम पर करो सहज ही, अजर अमर तू ज्ञाता है

मैं वैभव पाया रे! निज शुद्धातम ....

मैं वैभव पाया रे! निज शुद्धातम सार में ।
दर्शन ज्ञान अनन्त लखाया वीर्य अनन्त सु पाया ।।टेक।।
सुख सागर मैं ऐसा देखा ओर न छोर दिखाया ।
मन हर्षाया रे! निज शुद्धातम सार में ।।१।।

अरस अरूपी अस्पर्शी विज्ञानघन सुखकारा ।
टंकोत्कीर्ण परम ध्रुव शाश्वत मैं ज्ञायक अविकारा ।।२।।
श्रद्धा लाया रे! निज शुद्धातम सार में ।
निर्मल परम ज्योति परमेश्वर परम ब्रम्ह निरवाधा ।।३।।
नाम अनन्तों समयसार प्रभु एक रूप आराधा ।
आनन्द छाया रे! निज शुद्धातम सार में ।।४।।
तीन लोक का वैभव मुझको फीका आज दिखावे ।
अगुरुलघु प्रभुता निज निरखी और न कुछ सुहावे ।।५।।
मोह पलाया रे! निज शुद्धातम सार में ।
बन्ध मुक्त का नहीं विकल्प निर्बन्ध स्वरूप त्रिकाला
निज स्वरूप के आश्रय से ही स्वयं कटे भव जाला ।।६।।
ध्रुव दृष्टि लखाया रे! निज शुद्धातम सार में ।
जगे नाथ पुरुषार्थ सु अनुपम निज में ही रम जाऊँ ।।७।।
आधि-व्याधि-उपाधि रहित मैं परम समाधि पाऊँ ।
निज रूप सुहाया रे! निज शुद्धातम सार में ।।८।।

निजातम ध्यान जो करता . . . .

निजातम ध्यान जो करता, वही निज सुख को पाता है।
वह आकुलता सकल हर कर, परम समभाव ध्याता है ।।टेक।।
हमारे अष्ट अरि गण में, प्रबलतम मोहनी मानो।
यही कारण विकारों का, यही भव वन भ्रमाता है।।१।।
है पद्गल जड करम आठो, जुदा है आतमा चेतन।
जो है इस भेद का ज्ञाता, निराकुल थान जाता है।।२।।
मै हूँ सर्वांग चिन्मूरत, अमूरति शांति सुख धारी।
यही सद ज्ञान मय श्रद्धान, शिव शांति दिलाता है।।३।।
किसी का हूँ न मैं कोई, न मेरा मैं अकेला हूँ।
सहज ही मुक्ति पथ गामी, यह चिंतन सर्म दाता है।।४।।
करो उद्धार आतम का, करो उपकार जग प्राणी।
कि जिससे हो सफल काया, यह सुख सागर प्रदाता है।।५।।

लगन सु मेरे एकहि लागी . . . .

लगन सु मेरे एकहि लागी ध्याऊँ आतमराम को
निज ज्ञायक प्रभु आश्रय से ही पाउँ मैं शिव धाम को ।।टेक।।
मोही बनकर जीवन खोया झूठे जग जंजाल में।
अंधा हो विषयन में धायो भ्रमत फिरचो संसार में।।१।।
साँचो मारग मिलो न अब तक परम धरम कल्याण को।
धन्य दिवस धनि घड़ी आज मैं जिनवर दर्शन पाया है।।२।।
श्री गुरु का उपदेश श्रवण कर आतम तत्व सुझाया है।
अब तो निज में ही रम जाऊँ सब जग से निष्काम हो।।३।।
अंतर के पट खुले आज, निज प्रभुता पड़ी दिखाई है।
संशय विभ्रम मोह पलायो सम्यक् तृप्ति सु पाई है।।४।।
रही जरूरत अब न किसी की स्वयं पूर्ण गुण धाम हो।
मैं ज्ञायक हूँ ये विकल्प भी, स्वानुभूति में बाधक है।।५।।
निर्विकल्प निज आराधक ही, मुक्ति मार्ग का साधक है।
निर्निमेष निजनाथ निहारूँ, सहज सुख अभिराम हो।।६।।

परम शुचि आप है गंगा . . . .

परम शुचि आप है गंगा, नहाना ही मुनासिब है।
करम मल जो अनादी है, छुड़ाना ही मुनासिब है ।।टेक।।
भरम में भूलकर निज को, उठाये हैं बहुत संकट।
सुभेदज्ञान का दीपक, दिखाना ही मुनासिब है।।१।।
जगत की नाटचशाला में, अचेतन और चेतन नट।
अचेतन को पृथक् करके, भगाना ही मुनासिब है।।२।।
कषायों का है विष दुखदा, अचेतन सा हुआ चेतन।
परम चिद्रूप चेतन को, चिताना ही मुनासिब है।।३।।
भवोदधि खार से तरना, यही पुरुषार्थ है अपना।
सुखोदधि मे मगन हो लौ, लगाना ही मुनासिब है।।४।।

मुझे निज चेतन अनुभव करना ....

मुझे निज चेतन अनुभव करना।।टेक।।
चेतन बिन जो जो पदार्थ हैं, उनसे काज न सरना।
यातें उनसे ममता हर के, सब में समता धरना।।१।।
अपना पद अविनाशी अनुपम, ज्ञान दर्शमय वरना।
वामें आसन अपना करके, थिर सामायिक करना।।२।।
वीतराग-विज्ञान धर्म है, लीनी ताकी शरना।
रागद्वेष अरु मोह धर्म नहिं, इनसे नाता हरना।।३।।
है आतम का उपवन सुन्दर, वाही में रम रहना।
सुखसागर मे मज्जन पाकर, शुचिताई अनुसरना।।४।।

अब हम निजपद नहिं विसरेंगे ....

अब हम निजपद नहिं विसरेगे।
काल अनादि मिथ्यात्व के कारन, तिनको दूर करेगे।।टेक।।
पर सगति से दुख बहु पायो, तातै 'सग तजैगे।
शुभ अरु अशुभ राग-द्वेषन का, सग न भूल करेगे।।१।।
करम विनाशी जग के वासी, सम्यग्दृष्टि धरेंगे।
मै अविनाशी जगत प्रकाशी, चेतन घरहि रहेगे।।२।।
जनम-मरन तन की सगति से, क्यो अब भूल करेगे।
नदब्रम्ह निज आत्म भूत पद, बिन निरखे निरखेगे।।३।।

सु चेतन अपनो पद न सम्हारो ....

सु चेतन अपनो पद न सम्हारो।
तुम्हरो पद तुम्ही को सोहत, सो तुम क्यों न विचारो।।टेक।
पर घर डोलत फिरत करत तुम, बिन स्वारथ मुख कारो।
निज घर भूल दीन स्वै विचरत, पर में आपा धारो।।१।।
औरन देत सिखापन सूधो, परम स्वरस रस भारो।
आपुन काज निकट करि राख्यो, दीवट तर अधयारो।।२।।
भूल भूल औरन को पुकारत, हे प्रभुजी मोहि तारो।
'देवीदास' तरो करनी निज, और न तारन हारो।।३।।

मेरी परिणति में भगवान ....

मेरी परिणति में भगवान, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।टेक।।
मम स्वरूप अत्यन्त मनोहर, ध्रुव अखण्ड आनन्द सरोवर ।
निशदिन रहे उसी का ध्यान, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।१।।
कर आराधन निज स्वभाव का, भय मेटूँ दुःखमय विभाव का ।
कर लूँ निज पर का कल्याण, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।२।।
जिसने निज आतम आराधा, दूर हुई सब उसकी बाधा ।
प्रकटा उसके मोक्ष महान, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।३।।
प्रभुवर तुम अति ही उपकारी, दिखलाते शिवपथ अविकारी ।
करते अतः आप गुणगान, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।४।।
द्रव्यदृष्टि से हूँ तुम समान, है मात्र परिणति मोहवान ।
होवे परिणति आप समान, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।५।।
जब तक नहिं शुद्धोपयोग हो, तब तक तव भक्ति मनोग हो ।
करूँ मैं आत्मज्ञान अम्लान, प्रकट हो जावे आतमज्ञान ।।६।।

सार जग में वही जिसने ....

सार जग में वही जिसने की, निज आतम सम्हारा है ।
वही है धर्म पथ गामी उसी ने सत्य धारा है ।।टेक।।
न मतलब कर्म जालो से, न मतलब राग द्वेषों से ।
न मतलब है शरीरों से, जहाँ पुद्गल पसारा है ।।१।।
है धन अपना अमिट अनुपम, न कोई छीन सकता है ।
अनादि से धनी होकर, वही संतोषी प्यारा है ।।२।।
न कहना सोचना कुछ भी, न कुछ करना तृपत रहना ।
यही अध्यात्म करतव का, किया जाना विचारा है ।।३।।
निराकुल धाम का धारी, परम समभाव संचारी ।
सहज निज आत्म अनुभव ही, मुझे हरदम दुलारा है ।।४।।
यह सुखसागर है चितसागर, यही वैराग्य सागर है ।
यहीं कल्लोल नित करना, यही वर्तन हमारा है ।।५।।

ज्ञानी गुरु का है कहना ....

ज्ञानी गुरु का है कहना, राग में जीव तू मत फंसना ।
ध्रुव स्वभाव में ही रहना, पर में दृष्टि नहीं धरना ।।टेक।।

अनादि काल से रूलता है, दृष्टि पर में धरता है
अब न यह गलती करना, राग में जीव तू मत फंसना

देह मन्दिर में देव है तू, ज्ञायक को पहचान ले तू
समयसार में ही चलना, राग में जीव तू मत फंसना

तू तो गुणों का सागर है, करुणानन्द महाप्रभु है
निज में ही दृष्टि धरना, राग में जीव तू मत फंसना

गुण पर्याय का भेद न कर, त्रिकाल द्रव्य पे दृष्टि धर
मोक्ष-पुरी में है चलना, राग में जीव तू मत फंसना

अब ज्ञाता-दृष्टा रहना, राग में जीव तू मत फंसना
ज्ञानी गुरु का है कहना, राग में जीव तू मत फंसना

परम समता सुखासन पर ....

परम समता सुखासन पर, मै चेतन को बिठाऊँगा ।
सदा कर भक्ति निज पद की, सुखी गुणमय बनाऊँगा ।।टेक।।
बहुत ढूंढा नहीं पाया, कोई जो परनमें निज-सा ।
यह पर आशा निपट भोली, इसे दिल से हटाऊँगा ।।१।।
कर्म के बन्धनों को जो, महा दृढ़तर महाभारी ।
उन्हीं की रस्सियाँ इक दम, शिथिल हलकी कराऊँगा ।।२।।
हर्ष अरु शोक बहुतेरी, किया पर पर में उलझेरा ।
हुई तृप्ति न कुछ निज की, उसी सबको भुलाऊँगा ।।३।।
जो है स्वाधीन सुखसागर, न ह्यां है कष्ट खारीपन ।
परम अनुभव सु अमृत पी, तृषा चिर की मिटाऊँगा ।।४।।
अकथ आनद को पाकर, सभी दुविधा मिटा शमहर ।
मै भव के जाल को तज कर, शिव श्री धाम पाऊँगा ।।५।।

रे मन भेद ज्ञान चित लाओ . . . .

रे मन भेद ज्ञान चित लाओ
संयम रत्न हृदय पुट राखो, आनंद नित्य मनाओ ।।टेक।।
जिस बिन जाने हो रहे अंधे, वामें प्रेम लगाओ ।
निजभा अनुपम तम हरतारी, प्रगट ताहि कराओ ।।१।।
गुण पुष्पों को धर्म वृक्ष में, देख देख हरखाओ ।
शांति सुधा का निर्मल रस पी, आतम पुष्ट कराओ ।।२।।
स्वयं सिद्ध चिन्मय अविनाशी, परमातम पद ध्याओ ।
सुखोदधि में लय हो निशवासर, भव तम मोह मिटाओ ।।३।।

सोई ज्ञान सुधा रस पीवै . . . .

सोई ज्ञान सुधा रस पीवै ।
जीवन दशा मृतक करि जानै, मृतक दशा में जीवै ।।टेक।।
सैन दशा जागृत करि जानै, जागत माही सोवै ।
मित्रो को दुश्मन करि जानै, रिपु को प्रीतम जोवे ।।१।।
भोजन माहि वरत करि बूझै, व्रत मे होत अंहारी ।
कपडे पहिरैं नगन कहावै, नागा अंबर धारी ।।२।।
वस्ती को ऊजर कर देखे, ऊजर वस्ती सारीं ।
'द्यानत' उलटचाल मे सुलटा, चेतन ज्योति लखारी ।।३।

सफल कर जन्म को अपना . . . .

सफल कर जन्म को अपना, कि जिससे तत्व हासिल हो ।।टेक।।
सुखोदधि में ही रम जाना, परम गुण सार हासिल हो ।
मेरे अन्दर भरा हैगा, खजाना जो न कम होता ।।१।।
अगर गफलत मिटा देवे, तो पूरा तुझको हासिल हो ।
बहुत घूमे नशे में हम, न अपना घर ही पहिचाना ।।२।।
यह घर वह है न जलता है, न कुछ भी नष्ट होता है ।
अनादि है अमूरत है, सु सम-दम से ही हासिल हो ।।३।।
मैं अपने घर में बैठूँगा, न देखूँगा कोई पर-घर ।
यहीं आराम से आनंद सागर मुझको हासिल हो ।।४।।

११. आत्महित

जो तैं आतम हित नहीं कीना.....

जो तैं आतम हित नहीं कीना ।।टेक।।
रामा रामा धन धन काजै नर भव फल नहिं लीना ।।१।।
जप तप करि कै लोक रिझाये प्रभुता के रस भीना ।
अंतरगति परनमन (न) सोधे एकौ गरज सरीना ।।२।।
बैठि सभा में बहु उपदेशे आप भए परवीना ।
ममता डोरी तोरी नाहीं उत्तम तैं भए हीना ।।३।।
'द्यानत' मन वच काय लगा कैं जिन अनुभौ चितदीना ।
अनुभौ धारा ध्यान विचारा मंदर कलस नवीना ।।४।।

कर रे! कर रे! कर रे! तू आतम हित.....

कर रे! कर रे! कर रे! तू आतम हित कर रे ।।टेक।।
काल अनन्त गयो जग भ्रमतै, भव-भव के दुःख हर रे ।।१।।
लाख कोटि भव तपस्या करतै, जीतो कर्म तेरी जर रे ।
स्वास-उस्वास माहि सो नासै, जब अनुभव चित धर रे ।।२।।
काहे कष्ट सहै वन माही, राग-दोष परिहर रे ।
काज होय समभाव बिना नहि, भावो पचि-पचि मर रे ।।३।।
लाख सीख की सीख एक यह, आतम-निज पर-पर रे ।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है, 'द्यानत' लख भव तर रे ।।४।।

भाई ! निजहित कारज करना .....

भाई ! निजहित कारज करना ।।टेक।।
जनम-मरन दुःख पावत जातैं, सो विधि-बन्ध कतरना ।।१।।
ज्ञान-दरस अरु राग परस रस, निज-पर चिन्ह भ्रमरना ।
संधि-भेद बुधि-छैनी तै कर, निज गहि पर परिहरना ।।२।।
परिग्रही अपराधी शकै, त्यागी अभय विचरना ।
त्यौं परचाह बन्ध दुःखदायक, त्यागत सब सुख भरना ।।३।।
जो भव-भ्रमन न चाहे तो, अब सुगुरु सीख उर धरना ।
'दौलत' स्वरस सुधारस चाखौ, ज्यौं बिनसै भवमरना ।।४।।

हम तो कबहूँ न हित उपजाये.....

हम तो कबहुँ न हित उपजाये ।।टेक।।
सुकुल-सुदेव-सुगुरु सुसंग हित, कारन पाय गमाये ।।१।।
ज्यों शिशु नाचत, आप न माचत, लखनहार बौराये ।
त्यों श्रुत बांचत आप न राचत, औरन को समुझाये ।।२।।
सुजस लाभ की चाह न तज निज प्रभुता लखि हरखाये ।
विषय तजे न रचे निज पद में, पर-पद अपद लुभाये ।।३।।
पाप त्याग जिन जाप न कीन्हौं, सुमन चाप तपताये ।
चेतन तन को कहत भिन्न, पर देह सनेही थाये ।।४।।
यह चिर भूल भई हमरी अब, कहा होत पछताये ।
'दौल' अजौं भवभोग रचौ मत, यौं गुरु वचन सुनाये ।।५।।

कर कर आतमहित रे प्राणी.....

कर कर आंतमहित रे प्रानी
जिन परिनामनि बंध होत है, सो परणति तज दुःखदानी ।।टेक।।
कौन पुरुष तुम कहां रहत हौ, किहि की संगति रति मानी ।
जे परजाय प्रगट पुद्गलमय, ते तैं क्यों अपनी जानी ।।१।।
चेतन जोति झलकत तुझ माहीं, अनुपम सो तैं विसरानी ।
जाकी पटतर लगत आन नहिं, दीप रतन शशि सूरानी ।।२।।
आप में आप लखो अपनो पद, 'द्यानत' करि तन मन वानी ।
परमेश्वर पद आप पाइये, यौं भाषैं केवलज्ञानी ।।३।।

आपा नहिं जाना तूने.....

आपा नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे ।।टेक।।
देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी रे ।
निज निवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ।।१।।
शिव चाहै तो द्विविधकर्म तैं, कर निज परिणति न्यारी रे ।
'दौलत' जिन निजभाव पिछान्यौ, तिन भवविपति विदारी रे ।।२।।

हम लागे आतमराम सों .....

हम लागे आतमराम सों
विनाशीक पुद्गल की छाया, को न रमै धनवाम सों ।।टेक।।
समता सुख घट में परगास्यो, कौन काज है काम सों ।
दुविधा-भाव जलांजुलि दीनौं, मेल भयो निज आतम सों ।।१।।
भेदज्ञान करि निज परि देख्यौ, कौन बिलोकै चाम सों ।
उरै परै की बात न भावै, लौ लाई गुणग्राम सों ।।२।।
विकलपभाव रंक सब भाजे, झरि चेतन अभिराम सों ।
'द्यानत' आतम अनुभव करिके, छूटै भव दुःखधाम सों ।।३।।

चेतन यह बुधि कौन सयानी .....

चेतन यह बुधि कौन सयानी, कही सुगुरु हित सीख न मानी ।।टेक।।
कठिन काकताली ज्यौं पायो, नरभव सुकुल श्रवण जिनवानी ।।१।।
भूमि न होत चाँदनी की ज्यौं, त्यौं नहिं धनी ज्ञेय को ज्ञानी ।
वस्तुरूप यौं तूं यौं ही शठ, हठ कर पकरत सोंज विरानी ।।२।।
ज्ञानी होय अज्ञान-राग-रुष कर, निज सहज स्वच्छता हानी ।
इन्द्रिय जड तिन विषय अचेतन, तहां अनिष्ट-इष्टता ठानी ।।३।।
चाहै सुख-दुःख की अवगाहै, अब सुनि विधि जो है सुखदानी ।
'दौल' आपकरि आप आपमैं, ध्याय लाय लय समरससानी ।।४।।

हम तो कबहुँ न निज घर आये .....

हम तो कबहुँ न निज घर आये
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ।।टेक।।
परपद निजपद मानि मगन है, पर-परणति लपटाये ।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतनभाव न भाये ।।१।।
नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये ।
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये ।।२।।
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये ।
'दौल' तजो अजहूँ विषयन को, सतगुरु वचन सुहाये ।।३।।

आतमरूप अनुपम है.....

आतमरूप अनुपम है, घटमाहिं विराजै हो
जाके सुमरन जाप सो, भव-भव के दुःख भाजै हो।।टेक।
केवल दरशन ज्ञान में, थिरतापद छाजै हो।
उपमा को तिहुँ लोक में, कोउ वस्तु न राजै हो।।१।।
सहै परीषह भार जो, जु महाव्रत साजे हो।
ज्ञान बिना शिव ना लहैं, बहुकर्म उपाजै हो।।२।।
तिहुँ लोक तिहुँ काल में, नाहिं और इलाजै हो।
'द्यानत' ताको जानिये, जिन स्वारथ काजै हो।।३।।

भाई ! अब मैं ऐसा जाना.....

भाई ! अब मैं ऐसा जाना।।टेक।।
पुद्गल दरब अचेत भिन्न हैं, मेरा चेतन बाना।।१।।
कलप अनन्त सहत दुःख बीते, दुःख कौ सुख कर माना।
सुख-दुःख दोऊ कर्म अवस्था, मैं कर्मन तैं आना।।२।।
जहां भोर थी तहां भई निशि, निशि की ठौर बिहाना।
भूल मिटी जिन पद पहिचाना, परमानन्द निधाना।।३।।
गूगे का गुड़ खाय कहैं किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना।
'द्यानत' जिन देख्या ते जानै, आत्मज्ञान विज्ञाना।।४।।

राचि रहचो परमाहिं तू .....

राचि रहचो परमाहिं तू, अपनो रूप न जानै रे
अविचल चिनमूरत बिनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे।।टेक।
तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे।
ये पर इनहिं वियोग योग में, यौं ही सुख-दुःख मानै रे।।१।।
चाह न पाये पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे।
विपतिखेत विधिबन्ध हेत पै, जान विषय रस खानै रे।।२।।
नर भव जिनश्रुत श्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे।
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुरु बखानै रे।।३।।

ये आत्मा क्या रंग, दिखाता नये नये.....

ये आत्मा क्या रंग, दिखाता नये नये।
बहुरूपिया ज्यों भेष, बनाता नये नये।।टेक।।
धरता है स्वांग देव का, स्वर्गों में जाय के।
करता किलोल देवियों के, सँग नये नये।।१।।
गर नर्क में गया तो, रूप नारकी धरा।
लखि मार पीट भूख प्यास, दुख नये नये।।२।।
तिर्यञ्च में गज बाज वृषभ, महिष मृग अजा।
धारे अनेक भांति के, काबिल नये नये।।३।।
नर नारि नपुँसक बना, मानुष की योनि में।
फल पुन्य पाप के उदय, पाता नये नये।।४।।
'मक्खन' इसी प्रकार भेष, लाख चौरासी।
धारे बिगारे बार बार, फिर नये नये।।५।।

अपनी शक्ति सम्हार चेतन.....

अपनी शक्ति सम्हार, चेतन कर ले निज उपकार ।।टेक।।
जो अपनो उपकार करत है, उससे पर उपकार बनत है ।
हुआ सत्य निर्धार, चेतन कर ले निज उपकार।।१।।
क्षणभंगुर पुद्गलमयी काया क्यो इससे स्नेह लगाया।
बुद बुद जल उनहार चेतन कर ले निज उपकार।।२।।
हुये अनन्ते काल भ्रमते, पंच परावर्तन दुख सहते।
पर में आपा विचार, चेतन कर ले निज उपकार।।३।।
परवस्तु को पर जान लिया, अपने को पहचान लिया।
अपना ले आधार, चेतन कर ले निज उपकार।।४।।
अपने में थिर रहे शिव पावे, जन्म-जरा-मृतु रोग मिटावे।
समयसार अविकार, चेतन कर ले निज उपकार।।५।।
'निर्मल' परिणति हो जब तेरी, मिटती तीन जगतहि फेरी।
सिद्ध सुगुण मन धार, चेतन कर ले निज उपकार।।६।।

अपने घर को देख बावरे.....

अपने घर को देख बावरे, सुख का जहां खजाना रे ।
क्यों पर में सुख खोज रहा है, क्यों पर का दीवाना रे ।।टेक।।
ये माटी के खेल खिलौने, माटी तन की रानी रे ।
माटी के पुतले तेरा तो, माटी भरा बिछौना रे ।।१।।
परपरणति परभाव निरखता, आत्मतत्त्व को भूला रे ।
पर-भावों में दुःख-सुख माने, भूल रहा भव झूला रे ।।
सहजानन्दी रूप तुम्हारा, जग सारा बेगाना रे ।।२।।
चिन्तामणि-सा नरभव पाया, कल्पवृक्ष-सा जिनवृष रे ।
गवां रहा है रत्न अमोलक, क्यों विषयों में फँस-फँस रे ।।
बिखर जायगा एक दिन तेरा, सारा ताना बाना रे ।।३।।
घूम लिये हो चारों गति में, अब तो निज का ध्यान करो ।
विषय हलाहल बहुत पिया है, अब समतारस पान करो ।।
अपने गुण की छाँह बैठ जा, बहुत दूर नहीं जाना रे ।।४।।
त्रस-थावर पर्याय बदलता, पिये मोह की हाला रे ।
कभी स्वर्ग के आँगन देखे, कभी नरक की ज्वाला रे ।।
चौरासी के 'पथिक' तुम्हारा, शिवपुर दूर ठिकाना रे ।।५।।

निज आतम में रम जाओ पुजारी.....

निज आतम मे रम जाओ पुजारी, और कहीं मत जाओ ।
शीतल जल शुचिता से भरकर, आस्रव मल को हटाओ ।।टेक।।
अभिन्न षट्कारक चदन ले, भव की तपन मिटाओ ।
उत्तम अक्षत लेकर निज के, भाव अखण्ड बनाओ ।।१।।
परम भाव के पुष्प चढाकर, काम की फाँसी मिटाओ ।
तृष्णा दुख मेटन काजे, स्वानुभव सुख लाओ ।।२।।
मोह भवन की मूर्च्छा तज के, ज्ञान ज्योति प्रगटाओ ।
क्रोधादिक धूप स्वाहा करके, रत्नत्रयी तप लाओ ।।३।।
ध्यानाग्नि प्रभुमयी अग्नि से, तुम कुंदन बन जाओ ।
सांसारिक झूठे फल तज कर, मोक्ष सरस फल पाओ ।।४।।

अपनी सुधि भूल आप

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायो ।।टेक।।
ज्यौं शुक नभचाल विसरि, नलिनी लटकायो ।।१।।
चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध ।
तजि जड रस-फरस रूप, पुद्गल अपनायो ।।२।।
इन्द्रिय सुख-दुःख में नित्त, पाग राग-रुष में चित्त ।
दायक भवविपति वृन्द, बन्ध को बढायो ।।३।।
चाह-दाह दाहै, त्यागो न ताह चाहै ।
समतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायो ।।४।।
मानुषभव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय ।
'दौल' निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायो ।।५।।

रे मन! उलटी चाल चले

रे मन! उलटी चाल चले ।।टेक।।
पर सगति मे भ्रमतो आयो, पर-सगतबन्ध फले ।।१।।
हित को छॉड अहित सों राचै, मोह-पिशाच छले ।
उठ उठ अन्ध सम्हार देख अब, भाव सुधार चले ।।२।।
आओ अन्तर आतम के ढिग, पर को चपल टले ।
परमातम को भेद मिलत ही, भव को भ्रमण गले ।।३।।
मन के साथ विवेक धरो मित, सिद्ध स्वभाव वरे ।
बिना विवेक यही मन छिन मे, नरक-निवास करे ।।४।।
भेदज्ञान ते परमातम पद, आप आप उछरे ।
'नन्दब्रह्म' परपद नहि परसै, ज्ञान-स्वभाव धरे ।।५।।

चेतन तैं सब सुधि विसरानी भइया

चेतन तैं सब सुधि विसरानी भइया ।।
झूठौ जग साचौ करि मान्यौ, सुनी नहीं सतगुरू की वानी भइया ।
भ्रमत फिरचौ चहुँगति में अब तौ, भूख त्रिसा सही नींद निसानी भइया ।।
ये पुदगल जड जानि सदा ही, तेरौ तौं निज रूप सग्यानी भइया ।
'बखतराम' सिव सुख तव पै है, ह्वै है तब जिनमत सरधानी भइया ।।

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो.....

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो, जब चेत भयो तब रोयो
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, यह धन धूरि विगोयो ।।टेक।।
विषय भोग गत रस को रसियो, छिन छिन में अतिसोयो ।।१।।
क्रोध मान छल लोभ भयो, तब इन ही में उरझोयो ।
मोहराय के किंकर यह सब, इनके वसि है लुटोयो ।।२।।
मोह निवास संवार सु आयो, आतम हित स्वर जोयो ।
'बुध महाचन्द्र' चन्द्र सम होकर, उज्ज्वल चित्त रखोयो ।।३।।

जान, आतम जान रे जान.....

आतम जान, जान रे जान ।।टेक।।
जीवन की इच्छा करै, कबहुँ न मागै काल ।
सोई जान्यो जीव है, सुख चाहै दु:ख टाल ।।१।।
नैन बैन में कौन है, कौन सुनत है बात ।
देखत क्यों नहीं आप में, जाकी चेतन जात ।।२।।
बाहिर ढूंढ़े दूर है, अन्तर निपट नजीक ।
ढूंढनवाला कौन है, सोई जानो ठीक ।।३।।
तीन भवन मे देखिया, आतम सम नहि कोय ।
'द्यानत' जे अनुभव करैं, तिनकौं शिवसुख होय ।।४।।

अब हम अमर भये न मरेंगे.....

अब हम अमर भये न मरैगे ।।टेक।।
तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यो करि देह धरैगे ।।१।।
उपजै मरै कालतै प्रानी, तातै काल हरैंगे ।
राग दोष जग बध करत हैं, इनको नाश करैगे ।।२।।
देह विनाशी मैं अविनाशी, भेदज्ञान पकरैंगे ।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरैंगे ।।३।।
मरे अनन्ती बार बिन समुझैं, अब सब दु:ख बिसरैंगे ।
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, बिन सुमरै सुमरैंगे ।।४।।

निजरूप को विचार,.....

निजरूप को विचार, निजानन्द स्वाद लो ।
भवभव मिटाय आप में, आपो सम्हार लो ।।टेक।।
अपना स्वरूप शुद्ध, वीतराग ज्ञानमय ।
निरमल फटिक समान, यही भाव धार लो ।।१।।
ये क्रोध मान आदि , आत्मा के हैं विभाव ।
सुख शान्तिमय स्वभाव का, रूपक चितार लो ।।२।।
नही मान आतमभाव, है विकार कर्म का ।
मार्दव स्वभाव सार है, इस को विचार लो ।।३।।
माया नहीं निजात्म है, विकार मोह का ।
आर्जव स्वधर्म स्वच्छ, यही तत्त्व धार लो ।।४।।
नहि लोभ है स्वरूप, है चारित्र-मोहनी ।
शुचिता अपार सार, इसे ही सम्हार लो ।।५।।
चारों कषाय शत्रु, निजातम के हैं प्रबल ।
इनके दमन के हेतु, आत्म-ध्यान धार लो ।।६।।
सब कर्ममल निवारिये, यदि शिव की चाह है ।
'सुखदधि' विशाल आप, सुखकन्द सार लो ।।७।।

परम रस है मेरे घट में.....

परम रस है मेरे घट में, उसे पीना कठिन सुन ले ।
जगतरस में जो भीगे हैं, उन्हें समरस कठिन सुन ले ।।टेक।।
है भव-आताप दुखदाई, किसी ने चैन ना पाई ।
जो इनके सग में उलझे, उन्हें शिवसुख कठिन सुन ले ।।१।।
प्रथमपद में जो काँटे हैं, उन्हीं से छिद रहा यह तन ।
जो भेदज्ञान का शस्तर, उसे पाना कठिन सुन ले ।।२।।
बचाकर रखना आपे को, है सूराई परम अद्भुत ।
जो भवथिति नाश कर लेते, न निजसुख कुछ कठिन सुन ले ।।३।।
जो 'सुखोदधि' में रहें लवलीन, उन्हें बेकार कह दीजे ।
परखना ऐसे पुरुषों का, जगत में है कठिन सुन ले ।।४।।

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी.....

ऐसैं यां प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी
ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेल मथानी।।टेक।।
ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै।
त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै।।१।।
जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै।
तैसे पंडित पिंड की, रचना निरवारै।।२।।
पिंड स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई।
जानै मानै रमि रहै, घट व्यापक सोई।।३।।
चेतन लच्छन जीव है, जड लच्छन काया।
चचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया।।४।।
लच्छन भेद विलोकिये, सुविलच्छन वेदै।
सत्ता-सरूप हिये धारै, भ्रमरूप उछेदै।।५।।
ज्यो रज सोधै न्यारिया, धन सौ मनकीलै।
त्यों मुनिकर्म विपाक मे, अपने रस झीलै।।६।।
आप लखै जब आपको, दुविधा पद मेटै।
सेवक साहिब एक हैं, तब को किहि भेंटै।।७।।

गलता नमता कब आवैगा.....

गलता नमता कब आवैगा
राग-दोष परणति मिट जैहै, तब जियरा सुख पावैगा ।।टेक।।
मैं ही ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मैं, तीनों भेद मिटावैगा ।
करता-किरिया-करम भेद मिटि, एक दरब लों लावैगा ।।१।।
निहचै अमल मलिन व्यौहारी, दोनों पक्ष नसावैगा ।
भेद गुण गुणी को नहिं ह्वै है, गुरु सिख कौन कहावैगा ।।२।।
'द्यानत' साधक साधि एक करि, दुविधा दूर बहावैगा ।
वचनभेद कहवत सब मिटकै, ज्यों का त्यों ठहरावैगा ।।३।।

हम तो कबहुँ न निजगुन भाये .....

हम तो कबहुँ न निजगुन भाये ।
तन निज मान जान तन दुःख-सुख में विलखे हरखाये ।।टेक।।
तन को गरन मरन लखि तन को, धरन मान हम जाये ।
या भ्रम-भौंर परे भव-जल चिर, चहुँगति विपत लहाये ।।१।।
दरश-बोध-व्रत सुधा न चाख्यौ, विविध विषयविष खाये ।
सुगुरु दयाल सीख दइ पुनि-पुनि, सुनि-सुनि उर नहिं लाये ।।२।।
बहिरातमता तजी न अन्तर, दृष्टि न है निज ध्याये ।
धाम काम धन रामा की नित, आश हुताश जलाये ।।३।।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये ।
'दौल' चिदानन्द स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये ।।४।।

करम जड़ हैं न इनसे डर .....

करम जड है न इनसे डर, परम पुरुषार्थ कर प्यारे ।
कि जिन भावो से बाधे है, उन्ही को अब उलट प्यारे ।।टेक।।
शुभाशुभ पाप-पुण्यो को, सदा ही बाँधते जिय में ।
शुभाशुभ टालकर चेतन, तूँ शुध उपयोग धर प्यारे ।।१।।
तू जैसा शाश्वता निर्मल, परमदीपक परमज्योती ।
तू आपा-पर को जाने रह, राग द्वेष न कर प्यारे ।।२।।
जहाँ आतम अकेला है, वही उपयोग निर्मल है ।
उसी मे निजचरण धरना, यही अभ्यास रख प्यारे ।।३।।
तूं भवसागर सुखावेगा, निजातम भाव भावेगा ।
'सुखोदधि' मे समावेगा, सदा समता-सहित प्यारे ।।४।।

गुरु ने पिलाया जो ज्ञान पियाला .....

गुरु ने पिलाया जो, ज्ञान पियाला ।।टेक।।
भइ बेखबरी परभावां की, निजरस में मतवाला ।।१।।
यो तो छाक जात नहिं छिन हूं, मिटि गये आन जंजाला ।।२।।
अदभुत आनन्द मगन ध्यान में, 'बुधजन' हाल सम्हाला ।।३।।

विराजै 'रामायण' घटमांहि.....

विराजै 'रामायण' घटमांहि ।
मरमी होय मरम सो जाने, मूरख मानै नांहि ।।टेक।।
आतम 'राम' ज्ञान गुन 'लछमन', 'सीता' सुमति समेत ।
शुभोपयोग 'वानरदल' मंडित, वर विवेक 'रण खेत' ।।१।।
ध्यान 'धनुष टंकार' शोर सुनि, गई विषय दिति भाग ।
भई भस्म मिथ्यामत 'लंका', उठी धारणा 'आग' ।।२।।
जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल', लरे निकांछित 'सूर' ।
जूझे राग-द्वेष सेनापति, संसै 'गढ़' चकचूर ।।३।।
बिलखत कुम्भकरण'भव विभ्रम, पुलकित मन 'दरयाव' ।
थकित उदार वीर 'महिरावण', सेतुबध सम भाव ।।४।।
मूर्छित 'मदोदरी' दुराशा, सजग चरन 'हनुमान' ।
घटी चतुर्गति परणति 'सेना', छुटे छपक गुण 'बान' ।।५।।
निरखि सकति गुन 'चक्र सुदर्शन' उदय 'विभीषण' दान ।
फिरै 'कबंध' मही 'रावण' की, प्राण भाव शिरहीन ।।६।।
इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सहज 'संग्राम' ।
यह विवहार दृष्टि 'रामायण' केवल निश्चय राम ।।७।।

आप में जब तक कि कोई.....

आप मे जब तक कि कोई आपको पाता नहीं ।
मोक्ष के मन्दिर तलक हरगिज कदम जाता नहीं ।।टेक।।
वेद या पुराण या कुरान सब पढ़ लीजिये ।
आपके जाने बिना मुक्ति कभी पाता नहीं ।।१।।
हरिण खुशबू के लिये दौडा फिरे जंगल के बीच ।
अपनी नाभी मे बसे उसको नजर आता नहीं ।।२।।
भाव-करुणा कीजिये ये ही धरम का मूल है ।
जो सतावे और को वह सुख कभी पाता नहीं ।।३।।
ज्ञान पै 'न्यामत' तेरे है मोह का परदा पडा ।
इसलिये निज आत्मा तुझको नजर आता नही ।।४।।

और ठौर क्यों हेरत प्यारा.....

और ठौर क्यों हेरत प्यारा, तेरे हि घट में जाननहारा ।।टेक।।
चलन हलन थल वास एकता, जात्यान्तर तैं न्यारा न्यारा ।।१।।
मोह उदय रागी-द्वेषी ह्वै, क्रोधादिक का सरजन हारा ।
भ्रमत फिरत चारौं गति भीतर, जनम-मरन भोगत दुख भारा ।।२।।
गुरु उपदेश लखै पद आपा, तबहिं विभाव करै परिहारा ।
ह्वै एकाकी 'बुधजन' निश्चल, पावै शिवपुर सुखद अपारा ।।३।।

रे मन! कर सदा सन्तोष.....

रे मन ! कर सदा सन्तोष, जातैं मिटत सब दुख दोष ।।टेक।।
बढत परिग्रह मोह बाढत, अधिक तृषना होति ।
बहुत ईंधन जरत जैंसे, अगनि ऊंची जोति ।।१।।
लोभ लालच मूढ जन सो, कहत कंचन दान ।
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धन की हान ।।२।।
नारकिन के पाँय सेवत, सकुचि मानत संक ।
ज्ञान करि बूझै 'बनारसी' को नृपति को रक ।।३।।

आज मैं परम पदारथ पायौ .....

आज मैं परम पदारथ पायौ, प्रभु चरनन चित लायो ।।टेक।।
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं, सहज कल्पतरु छायो ।।१।।
ज्ञानशक्ति तप ऐसी जाकी, चेतनपद दरसायो ।।२।।
'दौलत' अष्टकर्म रिपु जीतन, शिवपथ अंकुर पायो ।।३।।

अब मैं छाड़्यो पर जंजाल.....

अब मैं छाँड़्यो पर जंजाल ।।टेक।।
लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी तज्यो ताहि तत्काल ।।१।।
आतम रस चाख्यो मैं अदभुत, पायो परम दयाल ।।२।।
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत,सो मम रूप सुविशाल ।।३।।

मगन ह्वै आराधो साधो .....

मगन ह्वै आराधो साधो अलख पुरुष प्रभु ऐसा।
जहां जहां जिस रस सौं राचै, तहां तहां तिस भेसा।।टेक।।
सहज प्रवान प्रवान रूप में, संसै में संसैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान में लैसा।।१।।
उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदय सरुप उदैसा।
व्यवहारी व्यवहार करम मे, निहचै में निहचैसा।।२।।
पूरण दशा धरे सम्पूरण, नय विचार में तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा।।३।।
नाहीं कहत होई नाहीं सा, है कहिये तो है सा।
एक अनेक रूप है वरता, कहौं कहां लौं कैसा।।४।।
वह अपार ज्यौ रतन अमोलिक बुद्धि विवेक ज्यौं ऐसा।
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसे का तैसा।।५।।

जगत जंजाल से हटना ....

जगत जंजाल से हटना, सुगम भी है कठिन भी है
परम सुखसिन्धु मे रमना, सुगम भी है कठिन भी है।।टेक।।
है कायरता बड़ी जामे, इसे वशाकर सुवीरज से।
निजातम-भूमि मे जमना, सुगम भी है कठिन भी है।।१।।
परम शत्रु है रागदि, इन्हें वशाकर सुवीरज से।
सुसमता का अनुभवना, सुगम भी है कठिन भी है।।२।।
करोड़ों भाव आ आकर, मनोहरता बता जाते।
न इनके मोह मे पड़ना, सुगम भी है कठिन भी है।।३।।
करम जड़ हैं न कुछ करते, चले जाते स्वमारग से।
अबन्धक शाश्वता रहना, सुगम भी है कठिन भी है।।४।।
कषायों की जलन जिसको, वही तन को जलाती है।
चिदानन्दपिंड 'सुखसागर', सुगम भी है कठिन भी है।।५।।

अध्यात्म के शिखर पर......

अध्यात्म के शिखर पर, सबको दिखादो चढ़के ।
ये धर्म है निरापद, धारो हृदय से बढ़के ।।टेक।।
जड से लगा के प्रीति, अब तक करी अनीति ।
अपने को आप देखो, आतम से जोड़ो रीति ।।
भव-भ्रमण से बचोगे, सन्मार्ग को पकड के ।।१।।
भव-भोग रोग घर है, पद-पद पे इसमे डर है ।
रागादि भाव तज दो, नरको के ये भवर है ।।
ऊँचे तुम्हे है उठना, माया से युद्ध लडके ।।२।।
ज्यो अजुली का पानी, ढलती है जिन्दगानी ।
मुश्किल है हाथ लगना, ऐसी घडी सुहानी ।।
'सौभाग्य' सज ले माला, रत्नत्रय की घड के ।।३।।

आवो जिन मन्दिर मे आवो......

आवो जिन मंदिर में आवो, आवो निज मन्दिर मे आवो... ।।
जिन मन्दिर ही निज मन्दिर है, निज मन्दिर ही जिन मन्दिर है ।
सम्यक् भेद ज्ञान प्रगटाओ .. आवो जिन मंदिर मे आवो .. ।।
जिन मन्दिर तो बहुत गये हैं, निज मन्दिर ही नहीं लहे हैं ।
निज सुख मन्दिर माही आवो ... आवो जिन मदिर मे आवो .. ।।
अब सिद्धो सा सुख लहाओ ...आवो जिन मदिर मे आवो. ।।

महाभाग्य से दर्शन तेरे......

महाभाग्य से दर्शन तेरे, मैंने पाये है जिनजी, ।
लख चौरासी भ्रमते-भ्रमते, नहीं मिला सुख इक छिनजी .. ।।
पर जीवो को ऊँचा-नीचा, मैंने देखा है जिनजी ।
साम्यभाव ही कभी न ध्याया, भूल रही मेरी जिनजी ।।
सब जीवों को करूँ क्षमा मै, क्षमा मिले मुझको जिनजी ।
आत्मरूप को लखूं सदा मै, भूल मिटे मेरी जिनजी ।।
प्राप्त करूँ रत्नत्रय को अब, लहूँ रूप तुमसा जिनजी ।
भेद-भाव हों नष्ट सभी मम, क्षमा जगे मेरे उरजी ।।

१२. उपदेशी

ऐसो नरभव पाय गमायो ....

ऐसो नरभव पाय गमायो ।।टेक।।
धन कूं पाय दान नहिं दीनो,चारित चित नहिं लायो ।
श्री जिनदेव की सेव न कीनी, मानुष जनम लजायो ।।१।।
जगत में आयो न आयो, ऐसो नरभव पाय गमायो ।
विषय कषाय बढै प्रति दिन दिन, आतम बल सु घटायो ।।२।।
तज सतसंग भयो तू कुसंगी, मोक्ष कपाट लगायो ।
नरक को राज कमायो, ऐसो नरभव पाय गमायो ।।३।।
रजत स्वान सम फिरत निरंकुश, मानत नांहि मनायो ।
त्रिभुवन पति ह्वै भयो है भिखारी, यह अचरज मोहे आयो ।।४।।
कहा ते कनक फल खायो, ऐसो नरभव पाय गमायो ।
कद मूलादि अभक्ष भखन को, नित प्रति चित्त लुभायो ।।५।।
श्री जिन वचन सुधा सम तज के, नयनानंद पछतायो ।
श्री जिन गुण नहिं गायो, ऐसो नरभव पाय गमायो ।।६।।

सब विधि करन उतावला ....

सब विधि करन उतावला, सुमरन को सीरा ।
सुख चाहे ससार मैं, यौ होय न नीरा ।।टेक।।
जैसे कर्म कमाय है, सो ही फल वीरा ।
आम न लागै आक के, नग होय न हीरा ।।१।।
जैसा विषियनि को चहै, न रहै छिन धीरा ।
त्यों 'भूधर' प्रभु को जपे, पहुँचे भवतीरा ।।२।।

नर देही बहु पुण्य सौं चेतन तैं पाई .....

नर देही बहु पुण्य सौ, चेतन तै पाई ।
ताहि गमावत बावरे, यह कौंन बड़ाई ।।टेक।।
जप तप संयम नेम व्रत, करि लेहु रे भाई ।
फिर तोकों दुर्लभ महा, यह गति ठकुराई ।।१।।
दुर्लभ नर भव पायके, सजम धरि भाई ।
'भैया' अवसर जात है, चेतो चिदराई ।।२।।

तू तो समझ-समझ रे! भाई.....

तू तो समझ-समझ रे! भाई ।
निशि दिन विषय भोग लपकाना, धरम बचन न सुहाई ।।टेक।।
कर मनका लै आसन मारयो, बाहिज लोक रिझाई ।
कहा भयो बक ध्यान धरे तैं, जो मन थिर न रहाई ।।१।।
मास-मास उपवास किये तैं, काया बहुत सुखाई ।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्यो, कारज कौन सराई ।।२।।
मन-वच-काय जोग थिर करकै, त्यागो विषय कषाई ।
'द्यानत' सुरग मोख सुखदाई, सद्गुरु सीख बताई ।।३।।

जाना नहीं निज आत्मा.....

जाना नही निज आत्मा, ज्ञानी हुए तो क्या हुए।
ध्याया नही शुद्धात्मा, ध्यानी हुए तो क्या हुए।।टेक।।
ग्रन्थ सिद्धान्त पढ लिये, शास्त्री महान बन गये।
आत्मा रहा बहिरातमा, पण्डित हुए तो क्या हुए।।१।।
पंच महाव्रत आदरे, घोर तपस्या भी करी।
मन की कषाये ना मरी, साधु हुए तो क्या हुए।।२।।
माला के दाने हाथ मे, मनुआ फिरे बाजार मे।
मन की नही माला फिरे, जपिया हुए तो क्या हुए।।३।।
गा के बजा के नाच के, पूजा भजन सदा किये।
निज ध्येय को सुमरा नही, पूजक हुए तो क्या हुए।।४।।
मान बढ़ाई कारणे, दाम हजारो खरचते।
भाई तो भूखो मरें, दानी हुए तो क्या हुए।।५।।
दृष्टी न अन्तर फेरते, औगुन पराये हेरते।
'शिवराम' एक हि नाम के, शायर हुए तो क्या हुए।।६।।

हो मनाजी, थारी वानी बुरी छै.....

हो मना जी, थारी वानी बुरी छै, दुखदाई।।टेक।।
निज कारिज में नेकु न लागत, परसौं प्रीति लगाई।।१।।
या विभाव सौं अति दुख पायो, सो अब त्यागो भाई।।२।।
'बुधजन' औसर भागन पायो, सेवो श्री जिनराई।।३।।

तेरो करिलै काज बखत फिर ना . . . .

तेरो करिलै काज बखत फिर ना ।
नर भव तेरे वश चालत है, फिर पर भव परवश परना ।।टेक।।
आन अचानक कंठ दवैगो, तब तोकों नहीं शरना ।
यातैं विलम न ल्याय बावरे, अबही कर जो है करना ।।१।।
जग जीवन की दया धार उर, दान सुपात्रनि कर धरना ।
जिनवर पूजि शास्त्र सुनि नितप्रति, 'बुधजन' संवर आचरना ।।२।।

मान न कीजे हो परवीन . . . .

मान न कीजे हो परवीन ।।टेक।।
जाय पलाय चंचला कमला, तिष्टे दो दिन तीन ।
धन यौवन छन भगुर सबही, होत सु छिन-छिन छीन ।।१।।
भरत नरेन्द्र खंड षट् नायक, तेहु भये मदहीन ।
तेरी बात कहा है भाई, तू तो सहजहि दीन ।।२।।
भागचन्द मार्दव रस सागर, माँहि होउ लवलीन ।
तातें जगत जाल मे फिर कहु, जन्म न होय नवीन ।।३।।

कहा कर लीनों नरभव पाके . . . .

कहा कर लीनो नरभव पाके, प्राणी मोह महामद छाके ।।टेक।।
महा अशुचि मलमूत्र लपेटा, रही गर्भ में माके ।
बाल्यापन ख्यालन में खोया, धोके से लडकाके ।।१।।
तरुण पणे पांचो इन्द्रिन के, भोगे भोग अघाके ।
वृद्ध भये सुहुए तृष्णा वस, हाफैं षट मुँह बाके ।।२।।
तीनोंपन सुधरम बिन भोंदू, इसपर कार गवांके ।
कोंड़ी एक कमाई नाहीं, चले गांठ को खाके ।।३।।
कारज एक सुधारे नाहीं, उत्तम कुल में आके ।
'देवीदास' कहत आपुन से, औरन को समझाके ।।४।।

ममता की पतवार न तोड़ी.......

ममता की पतवार न तोड़ी, आखिर को दम तोड़ दिया।
एक अनजाने राही ने शिवपुर का मारग छोड़ दिया।।टेक।।

नर्क में जिसने भावना भायी, मानुष तन को पाने की
भेष दिगम्बर धारण करके, मुक्ति पद को पाने की
लेकिन देखो आज ये हालत, ममता के दीवाने की
चेतन होकर जड़ द्रव्यों से, कैसे नाता जोड़ लिया

ममता के बंधन में बधकर,क्या युग युग तक सोना है
मोह अरी का सचमुच इस पर, हो गया जादू-टोना है
चेतन क्या नरतन को पाकर, अब भी यों ही खोना है
मन का रथ क्यों शिवमारग से, कुमारग पर मोड़ दिया

मत खोना दुनिया मे आकर, ये बस्ती अनजानी है
जायेगा हर जाने वाला, जग की रीति पुरानी है
जीवन बन जाता यहाँ 'पंकज', सबकी एक कहानी है
चेतन निज स्वरूप देखा तो, दुख का दामन तोड़ दिया

देखो खडा है विमान महान.......

देखो खडा है विमान महान, चलो रे भाई सिद्धपुरी ।।टेक।।

वायुयान आया है सीट, सुरक्षित अभी करालो
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र, तीनों के पास मगा लो

नर भव से ही यह विमान, सीधा शिवपुर जाता है
जो चूका वह फिर अनन्त, कालों तक पछताता है

रत्नत्रय की बर्थ संभालो, शुद्ध भाव मे जीलो
निज स्वभाव का भोजन लेकर, ज्ञानामृत जल पीलो

निज स्वभाव में जागरुक जो उनको पहुँचायेगा
सिद्ध शिला सिंहासन तक जा तुमको बिठलायेगा

मुक्ति भवन में मोक्ष वधु, वर माला पहनायेगी
सादि अनन्त समाधि मिलेगी, जगती गुण गायेगी

कहा मान ले ओ मोरे भैया.....

कहा मानले ओ मोरे भैया, शांति जीवन बनाना अब सार है ।
तू बन जा बने तो परमात्मा, मेरी आत्मा की मूक पुकार है ।।टेक।।
मान बुरा है त्याग सजन जो, विपद करे और बोध हरे ।
चित्त प्रसन्नता सार सजन जो, विपद हरे और मोद भरे ।।
नीति तजने में तेरी ही हार है, वाणी जिनवर की ही हितकार है ।।१।।
समय बड़ा अनमोल सजन जो, इधर फिरे तो उधर फिरे ।
कर नहीं पाया मूल्य सजन जो, समय गया ना हाथ लगे ।।
गुप्त शांति की यहां भरमार है, इनको समझे तो बेड़ा पार है ।।२।।
इस जीवन को सफल बना, यह पुण्य योग से प्राप्त हुआ ।
बातों से नहीं काम सजन, कर्तव्य सामने खड़ा हुआ ।।
सुख शांति का ये ही द्वार है, शिक्षा दैनिक महा हितकार है ।।३।।

गरब नहिं कीजे रे.....

गरब नहिं कीजे रे, ऐ नर निपट गँवार।।टेक।।
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे।
कै छिन साँझ सुहागरु जोवन, कै दिन जग में जीजेरे।।१।।
बेगां चेत विलम्ब तजो नर, बंध बढ़ै तिथि छीजे रे।
'भूधर' पल पल हो है भारी, ज्यों ज्यो कमरी भींजे रे।।२।।

एते पर ऐता क्या करना.....

सिद्ध समान न जाने आपा, तातैं तोहि लगत हैं पापा।
खोल देख घट पटहि उघरना, एते पर एता क्या करना।।टेक।।
श्री जिनवचन अमल रस वानी, पीवहि क्यों नहि मूढ़ अज्ञानी।
जातैं जन्म जरा मृत हरना, एते पर एता क्या करना।।१।।
जो चेतै तो है यह दावो, नाहीं बैठे मंगल गावो।
फिर यह नरभव वृक्ष न फरना, एते पर एता क्या करना।।२।।
'भैया' विनवहि बारंबारा, चेतन चेत भलो अवतारा।
ह्वै दूलह शिवनारी वरना, एते पर एता क्या करना।।३।।

सच बतलाना तुम्हें आज तक.......

सच बतलाना तुम्हें आज तक, कभी आत्मा की सुध आई।
बाहर बहुत जनम तक देखा, अब तो भीतर देखो भाई। ।।टेक।।

यह संसार असार सिर्फ कहने से चलता काम नहीं।
इस जीवन में रही ग्रंथि तो, मिले मुक्ति का धाम नहीं।
बिना हुए निर्ग्रंथ किसी ने, अब तक नहीं सफलता पाई।

तेरे पास अमर शक्ति है इसमें कुछ दो राय नहीं।
पर उपयोग गलत जब तक हो, उसका पड़े प्रभाव नहीं
इसी एक गलती के कारण जाने कितनी उमर गई।

चाहे कितने अनुष्ठान हों, चाहे कितने भजन करे।
जब तक आसक्ति है पर से, रागद्वेष ये नहीं घटें।
पर परिणति ही हमें आज तक, पर का दास बनाती आई।

जो कुछ हुआ हुआ अब तो तुम, यह मिथ्यात्व हटाके रहना।
जिस जड़ ने जड़ किया तुम्हें, उसकी जड़ हिलाके रहना।
तभी "सरस" संसार रूप तरु होगा खत्म सदा को भाई।

चेतो चेतो चतुर सुजान ....

चेतो चेतो चतुर सुजान, जरा तू अपने को पहचान ।।टेक।।

तूने कर्म-कलंक न धोया, सारा जीवन यूँ ही खोया
मूरख तुझे न निज का भान, जरा तू अपने को पहचान

तूने विषयों में सुख माना, सुख का रूप न असली जाना
तू तो अनुपम सुख की खान, जरा तू अपने को पहचान

तूने अपना ध्येय भुलाया, निज को जग में व्यर्थ रुलाया
तू है निश्चय सिद्ध समान, जरा तू अपने को पहचान

तू है श्रेष्ठ गुणों की खान, पा सकता है केवलज्ञान
तेरी जग में शक्ति महान, जरा तू अपने को पहचान

चेतन पर से ममता हटा ले, निज में आतमज्योति जगाले
फिर तो तेरा हो कल्याण, जरा तू अपने को पहचान

भूली अपना पता ठिकाना ....

भूली अपना पता ठिकाना सुध बिसरायी नाम की।
मिथ्यातम में फिरे भटकती ये गोरी शिवगाम की।।टेक।।
चिन्तामणि गठरी में इसकी रत्नत्रय निधि पास है
ज्ञानानन्दी ज्ञान सुभावी फिर भी चित्त उदास है
राग-द्वेष परिणाम जहां है उस नगरी में बास है
देह साथ एकत्व बुद्धि कर, सहती फिरती आस है
सुधि विसारी आनन्द घन, अविनाशी आतमराम की
जिसको रुचि है लगी आत्म में, सारा जग रस हीन है
बाह्य भाव को हटा लिया चैतन्य भाव में लीन है
ये ससारी अनन्त भवों की, विषयासक्त प्रवीण है
अनन्त चतुष्टय की धारी, बाहिर से कितनी दीन है
भारी ये मिथ्यात्व मोह के, राग-द्वेष अभियान की
पूर्ण ज्ञान सिन्धु आत्म तू, कब निज महिमा गावेगी
साधक बन पुरुषार्थ करे, कब अपने को पहचानेगी
शुद्ध बुद्ध शाश्वत अखण्ड, जब अपना नाम पुकारेगी
भव बाधा फिर कहाँ रही, जब अपनी भूल सुधारेगी
घडी पथिक आ जायेगी, तब इसके पूर्ण विराम की

स्वाँस स्वाँस में सुमिरन कर ले.......

स्वाँस स्वाँस में सुमिरन कर ले, करले आतम ज्ञान रे ।
न जाने किस स्वास में बाबा, मिल जायें भगवान रे ।।टेक।।
अनादिकाल से भूला चेतन, निज स्वरूप का ज्ञान रे
जीव देह को एक गिने बस, इससे तू हैरान रे
शुभ को शुद्ध मानकर प्राणी, भ्रमत चर्तुगति माँहि रे
कभी नरक में हुआ नारकी, कभी स्वर्ग में देव रे
कभी गया तिर्यंच गति में, कभी मनुज पर्याय रे
चौरासी में स्वाँग धरे पर, किया न भेद विज्ञान रे
भारी भूल भई अब सोचो, सतगुरु रहे जगाय रे
यह अवसर यदि चूक गया तो, बार-बार पछताय रे
सत को समझो समकित धर लो, होगा जग में पार रे

प्राणीलाल ! छाड़ो मन चपलाई . . . .

प्राणीलाल ! छाड़ो मन चपलाई
देखो तन्दुलमच्छ जु मनतैं, लहै नरक दुखदाई
धारै मौन दया जिन पूजा, काया बहुत तपाई ।
मन की शल्य गई नहि जबलो, करनी सकल गवाई ।।१।।
बाहुबलि मुनि ज्ञान न उपज्यो, मन की खटक न जाई ।
सुनतै मान तज्यो मन को तब, केवल ज्योति जगाई ।।२।।
प्रसनचन्द रिषि नरक जु जाते, मन फेरत शिवपाई ।
तन तै वचन वचन तैं मन को, पाप कह्यो अधिकाई ।।३।।
देहि दान गहि शील फिरै वन, पर निंदा न सुहाई ।
वेद पढै निरग्रन्थ रहै जिय, ध्यान बिना न बढाई ।।४।।
त्याग फरस रस गध वरन सुर, मन इनसौ लौ लाई ।
घर ही कोस पचास भ्रमत ज्यो, तेली को वृषभाई ।।५।।
मन कारण है सब कारज को, विकलप बध बढाई ।
निरविकलप मन मोक्ष करत है, सूधी बात बताई ।।६।।
'द्यानत' ते निज मन वश करि है, तिन को शिवसुख थाई ।
बार बार कहुँ चेत सवेरो, फिर पाछै पछिताई ।।७।।

वे कोई निपट अनारी . . . .

वे कोई निपट अनारी, ।।टेक।।
जिनसो मिलना फेरि बिछुरना, तिनसो कैसी यारी ।
जिन कामो मे दुख पावै है, तिनसौ प्रीति करारी ।।१।।
बाहिर चतुर मूढ़ता घर मे, लाज सबै परिहारी ।
ठग सौं नेह वैर साधुन सौ, ये बातें विसतारी ।।२।।
सिंह डाढ भीतर सुख मानै, अक्कल सबै विसारी ।
जा तरु आग लगी चारो दिश, बैठि रह्यो तिह डारी ।।३।।
हाड मॉस लोहू की थैली, तामैं चेतन धारी ।
'द्यानत' तीनलोक को ठाकुर, क्यों ह्वै रह्यो भिखारी ।।४।।

मन वच तन करि शुद्ध भजो जिन ....

मन वच तन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया ।
अवसर फेर मिले नहिं ऐसा, यों सतगुरु गाया ।।टेक।।
बस्यो अनादि निगोद निकसि फिर, थावर देह धरी ।
काल असंख अकाज गमायो, नेकु न समुझि परी ।।१।।
चिन्तामणि दुर्लभ लहिये ज्यों, त्रस परयाय लही ।
लट पिपील अलि आदि जन्म में, लह्यो न ज्ञान कहीं ।।२।।
पंचेन्द्रिय पशु भयो कष्ट तै, तहां न बोध लह्यो ।
स्व-पर विवेक रहित बिन संयम, निश-दिन भार वह्यो ।।३।।
चौपथ चलत रतन लहिये ज्यों, मनुष देह पाई ।
सुकुल जैन वृष सत संगति यह, अति दुर्लभ भाई ।।४।।
यौ दुर्लभ नर हेह कुधी जे, विषियन संग खोवैं ।
ते नर मूढ़ अजान सुधारस, पाय पाँव धोवैं ।।५।।
दुर्लभ नर भव पाय सुधी जे, जैन धर्म सेवैं ।
'दौलत' ते अनंत अविनाशी, सुख शिव का बेवैं ।।६।।

न मानत यह जिय निपट ....

न मानत यह जिय निपट अनारी, सिख देत सुगुरु हितकारी ।
कुमति कुनार सग रति मानत, सुमति सुनारि विसारी ।।टेक।।
नर परयाय सुरेश चहें सो, चख विष विषय विगारी ।
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह पर आकुलता विस्तारी ।।१।।
अपनी भूल आप समता निधि, भव दुख भरत भिखारी ।
परद्रव्यन की परनति को शठ, वृथा बनत करतारी ।।२।।
जिस कषाय दव जरत तहां, अभिलाष छटा घृत डारी ।
दुख सौं डरै करै दुखकारन, तैं नित प्रीति करारी ।।३।।
अति दुर्लभ जिन वैंन श्रवन करि, संशय मोह निवारी ।
'दौल' स्व-पर हित-अहित जानके, होवहु शिवमगचारी ।।४।।

तन नहीं छूता कोई ....

तन नहीं छूता कोई चेतन निकल जाने के बाद।
फेंक देते फूल ज्यों खुसबू निकल जाने के बाद ।।टेक।।
आज जो करते किलोलें, खेलते हैं साथ में।
कल डरेंगे देख तन, निरजीव हो जाने के बाद ।।१।।
बात भी करते नहीं जो, आज धन की ऐंठ में।
माँगते नजर आये वही, तकदीर फिर जाने के बाद ।।२।।
पाँव भी धरती पै जिनने, हैं कभी रक्खे नहीं।
वन में भटकते वो फिरे, आपत्ति आ जाने के बाद ।।३।।
बोलते जब लों सगे हैं, चार पैसा पास में।
नाम भी पूछे नहीं, पैसा निकल जाने के बाद ।।४।।
स्वार्थ प्यारा रह गया, असली मुहब्बत उठ गई।
भूल जाता माँ को बछड़ा, पय निकल जाने के बाद ।।५।।
भाग जाता हंस भी, निरजल सरोवर देखकर।
छोड़ देते वृक्ष पंक्षी, पत्र झड़ जाने के बाद ।।६।।
लोक ऐसे मतलबी फिर, क्यों करें विश्वास हम।
बाल डरता आग से, इक बार जल जाने के बाद ।।७।।
इस अथिर संसार में क्यों, मग्न कुंदन हो रहा।
देख फिर पछतायगा, असमर्थ हो जाने के बाद ।।८।।

तुम जिनवर का गुण गावो ....

तुम जिनवर का गुण गावो, यह औसर फेर न पावो।
मानुष भव जन्म दुहेला, दुर्लभ सत्संगति मेला ।।टेक।।
यह बात भली बनि आई, भगवान भजो मेरे भाई।
पहिले चित चीर सम्हारो, कामादिक कीच उतारो ।।१।।
फिर प्रीत फिटकडी दीजे, तब सुमरन रग रंगीजे।
धन जोड भरा जो कूवा, परिवार बढ़े क्या हूआ ।।२।।
हस्ती चढ क्या कर लीना, प्रभु भज्न बिना धिक् जीना।
'भूधर' पैड़ी पग धरिये, तब चढने की सुध करिये ।।३।।

मुझे संसार में कोई नहीं अपना . . . .

मुझे संसार में कोई, नहीं अपना नजर आता ।
सभी में स्वार्थ का नाता, न कोई एक हो जात ।।टेक।।
अगर जग ब्रह्ममय होता, तो क्यों कोई दुखी होता ।
क्यों होता ज्ञान में अंतर, क्यों कोई जन्म मर जाता ।।१।।
न रागी है न द्वेषी है, न मोही है परम ईश्वर ।
जगत रागी कुरागी और, द्वेषी उससे क्या नाता ।।२।।
यहाँ माया की है संगत, वहाँ है द्वैत की रंगत ।
यकीं रक्खे नहीं सत ब्रह्म, इस झंझट में है आता ।।३।।
पदारथ जीव पुद्गल से, सभी संसार कायम है ।
जो पाता भेद निज-पर का, वही प्रभु रूप लख पाता ।।४।।
समाया ध्यान में जब आप, न कुछ अनभाव आता है ।
सुखोदधि में रमण करना, यही आनन्द दिखाता है ।।५।।

मुसाफिर क्यों पड़ा सोता . . . .

मुसाफिर क्यों पड़ा सोता, भरोसा है न इक पल का ।
दमादम बज रहा डंका, तमाशा है चलाचल का ।।टेक।।
सुबह जो तख्त शाही पर, बडे सजधज से बैठे थे ।
दुपहरी वक्त में उनका, हुआ है वास जंगल का ।।१।।
कहाँ है राम और लक्ष्मण, कहाँ रावन से बलधारी ।
कहाँ हनुमंत से योद्धा, पता जिनके न था बल का ।।२।।
उन्हीं को काल ने खाया, तुझे भी काल खावेगा ।
सफर सामान उठ कर तू, बना ले बोझ को हलका ।।३।।
जरा-सी जिंदगानी पर, न इतना मान कर मूरख ।
यह बीते जिन्दगी पल में, कि जैसे बुदबुदा जल का ।।४।।
नसीहत मान ले ज्योति, उमर पल-पल में कम होती ।
जो करना आज ही कर ले, भरोसा कुछ न कर कल का ।।५।।

चेतन उलटी चाल चले.....

चेतन उलटी चाल चले ।।टेक।।
जड संगत तैं जडता व्यापी निज गुन सकल टले ।।१।।
हित सों विरचि ठगनि सों रचिपचि मोहपिशाचछले ।
हंसि हंसि फंद सवारि आप ही मेलत आप गले ।।२।।
आये निकसि निगोद सिंधु तें, फिर तिह पंथ चले ।
कैसे परगट होय आग जो दबी पहार तले ।।३।।
भूले भव भ्रम बीचि, 'बनारसी' तुम सुरज्ञान भले ।
धर शुभ ध्यान ज्ञान नौका चढ़ि, बैठें तें निकले ।।४।।

देखो! भूल हमारी, हम संकट पाये.....

देखो ! भूल हमारी, हम संकट पाये
सिद्धसमान स्वरूप हमारा, डोलूं जेम भिखारी ।।टेक।।
पर परिणति अपनी अपनाई, पोट परिग्रह धारी।
द्रव्यकर्म वश भावकर्म कर, निजगल फासी डारी ।।१।।
नोकर्मन तें मलिन कियो चित, बाँधे बन्धन भारी।
बोये बीज बबूल जिन्होंने, खावें क्यों सहकारी।।२।।
करम कमाये आगे आवे, भोगें सब ससारी।
'नैनसौख्य' अब समता धारो, सतगुरु सीख उचारी।।३।।

छांड़ि दे अभिमान जिय रे.....

छांड़ि दे अभिमान जिय रे ।।टेक।।
काको तू अरु कौन तेरे, सब ही हैं महिमान ।
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान ।।१।।
जगत देखत तोरि चलवो, तू भी देखत आन ।
घरी पल की खबर नाहीं, कहा होय विहान ।।२।।
त्याग क्रोध अरु लोभ माया, मोह मदिरा पान ।
राग-द्वेष हि टार अन्तर, दूर कर अज्ञान ।।३।।
भयो सुर पद देव कबहूँ, कबहूँ नरक निदान ।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, "भैया" आप पिछान ।।४।।

मोहि सुन-सुन आवे हाँसी,

मोहि सुन-सुन आवे हाँसी, पानी में मीन पियासी ।।टेक।।
ज्यों मृग दौड़ा फिरे विपिन में, ढूंढ़े गन्ध वसे निजतन मे ।
त्यों परमातम आतम मे शठ, पर में करे तलासी ।।१।।
कोई अँग भभूति लगावे, कोई शिर पर जटा बढ़ावे ।
कोई पंचाग्नि तपे कोई रहता दिन रात उदासी ।।२।।
कोई तीरथ बन्दन जावे, कोई गगा जमुना न्हावे ।
कोई गढ़ गिरनार द्वारिका, कोई मथुरा कोई काशी ।।३।।
कोई वेद पुरान टटोले, मन्दिर मस्जिद गिरजा डोले ।
ढूढा सकल जहान न पाया, जो घट घट का वासी ।।४।।
'मक्खन' क्यों तू इत उत भटके, निज आतमरस क्यों नहिं गटके ।
जन्म-मरण दुख मिटै कटे, लख चौरासी की फाँसी ।।५।।

चेतन कौन अनीति गही रे .....

चेतन कौन अनीति गही रे, ना मानैं सुगुरु कही रे ।।टेक।।
जिन विषयनवश बहु दुःख पायो, तिनसौं प्रीति ठही रे ।।१।।
चिन्मय ह्वै देहादि जड़न सौं, तो मति पागि रही रे ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज, तिनकौं गहत नहीं रे ।।२।।
जिनवृष पाय विहाय रागरूष निजहित हेत यही रे ।
'दौलत' जिन यह सीख धरी उर, तिन शिव सहज लही रे ।।३।।

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय .....

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ।।टेक।।
फल चाखन की बार भरै दृग, मर है मूरख रोय ।।१।।
किंचित् विषयनि के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ।
ऐसा अवसर फिर न मिलैगा, मोह नींद मत सोय ।।२।
इस बिरियां मैं धर्म-कल्प-तरु, सींचत स्याने लोय ।
तू विष बोवन लागत तो सम, और अभागा कोय ।।३।।
जे जग में दुःखदायक बेरस, इस ही के फल सोय ।
यों मन 'भूधर' जानिकै भाई, फिर क्यों भोंदू होय ।।४।।

हे नर! भ्रमनींद क्यों न छांड़त .....

हे नर! भ्रमनींद क्यों न, छांड़त दु:खदाई
सेवत चिरकाल सोज, आपनी ठगाई ।।टेक।।
मूरख अघ कर्म कहा, भेदैं नहि मर्म लहा ।
लागै दु:ख-ज्वाल की न, देह कै तताई ।।१।।
जम के रव बाजते, सुभैरव अति गाजते ।
अनेक प्रान त्यागते, सुनै कहा न भाई ।।२।।
पर को अपनाय आप, रूप को भुलाय हाय ।
करन-विषय दारु जार, चाह दौं बढ़ाई ।।३।।
अब सुन जिनबान, राग-द्वेष को जघान ।
मोक्षरूप निज पिछान 'दौल', भज विरागताई ।।४।।

गुरु दयाल तेरा दुख लखि कैं.....

गुरु दयाल तेरा दुख लखि कै, सुन लै जो फरमावै है ।।टेक।।
तामैं तेरा जतन बतावै, लोभ कछू नहिं चावै है ।।१।।
पर सुभाव कौ मोस्या चाहै, अपना उसा बनावै है ।
सो तो कबहू हुवा न होसी, नाहक रोग लगावै है ।।२।।
खोटी खरी जस करी कमाई, तैसी तेरै आवै है ।
चिन्ता आगि उठाय हिया मे, नाहक जान जलावै है ।।३।।
पर अपनावै सो दुख पावै, 'बुधजन' ऐसे गावै है ।
पर को त्यागि आप थिर तिष्ठै, सो अविचल सुख पावै है ।।४।।

जिया तुम चालो अपने देश .....

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर है थारो शुभ देश
लख चौरासी में बहु भटके, लह्यो न सुख को लेस ।।टेक।।
मिथ्यारूप धरे बहुतेरे, भटके बहुत विदेश ।
विषय-कषाय बहुत दु:ख पाये, भुगते बहुत कलेश ।।१।।
भयो तिरंच नारकी नर सुर, करि-करि नाना भेष ।
'दौलतराम' तोड़ जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश ।।२।।

तोहि समझायो सौ-सौ बार ·····

तोहि समझायो सौ-सौ बार, जिया तोहि
देख सुगुरु की पर-हित में रति, हित उपदेश सुनायो।।टेक।।
विषय भुजंग सेय सुख पायो, पुनि तिनसौं लिपटायो।
स्वपद विसार रच्यौ पर-मग में, मदरत ज्यौं वोरायो।।१।।
तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजै भ्रम चाख समामृत, जो नित संत सुहायो।।२।।
अबहूँ समझ कठिन यह नरभव, जिन वृष बिना गमायो।
ते विलखैं मनि डार उदधि में, 'दौलत' को पछतायो।।३।।

मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी ·····

मन हंस! हमारी लै शिक्षा हितकारी।।टेक।।
श्री भगवान चरन पिंजरे वसि, तजि विषयनि की यारी ।।१।।
कुमति कागली सौं मति राचो, ना वह जात तिहारी ।
कीजै प्रीत सुमति हंसी सौं, बुध हंसन की प्यारी ।।२।।
काहे को सोवत भव झीलर, दु:खजल पूरित खारी ।
निजबल पंख पसारि उड़ो किन, हो शिव सरवर चारी ।।३।।
गुरु के वचन विमल मोती चुन, क्यों निजवान विसारी ।
ह्वै है सुखी सीख सुधि राखें, 'भूधर' भूलैं ख्वारी ।।४।।

हो तुम शठ अविचारी जियरा ·····

हो तुम शठ अविचारी जियरा, जिनवृष पाय वृथा खोवत हो।।
पी अनादि मदमोह स्वगुननिधि, भूल अचेत नींद सोवत हो ।
स्वहित सीखवच सुगुरु पुकारत, क्यों न खोल उर-दृग जोवत हो।।
ज्ञान विसार विषयविष चाखत, सुरतरु जारि कनक बोवत हो ।
स्वारथ सगे सकल जनकारन, क्यों निज पाप भार ढ़ोवत हो।।
नरभव सुकुल जैनवृष नौका, लहि निज क्यों भवजल डोवत हो ।
पुण्य-पाप फल वात-व्याधिवश, छिन में हँसत छिनक रोवत हो।।
संयम सलिल लेय निज उर के, कलिमल क्यों न 'दौल' धोवत हो।।

भोंदू भाई! समुझ सबद यह मेरा .....

भोंदू भाई! समुझ सबद यह मेरा
जो तू देखै इन आंखिन सौं, तामैं कछू न तेरा
ए आंखैं भ्रम ही सौं उपजी, भ्रम ही के रस पागी
जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इन ही कौ रागी ।।१।।
ए आंखैं दोउ रची चाम की, चामहि चाम विलोवै ।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै ।।२।।
इन आंखिन कौ कौन भरोसौ, एक विनसैं छिन माही ।
है इनको पुदगल सौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं ।।३।।
पराधीन बल इन आंखिन कौ, विनु प्रकाश न सूझै ।
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनौं कर बूझे ।।४।।
खुले पलक ए कछु इक देखहि, मुदे पलक नहि सोऊ ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आंखैं दोऊ ।।५।।
जगम काय पाय एक प्रगटै, नहि थावर के साथी ।
तू तो मान इन्हे अपने दृग, भयौ भीम को हाथी ।।६।।
तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै ।
कै तो सहज खुलै वे आखै, कै गुरु सगति खोलै ।।७।।

अरे जिया! जग धोखे की टाटी .....

अरे जिया! जग धोखे की टाटी ।।टेक।।
झूठा उद्यम लोक करत हैं, जामैं निशदिन घाटी ।
जान-बूझ के अन्ध बने हैं, आँखिन बांधी पाटी ।।१।।
निकल जायेंगे प्राण छिनक में, पड़ी रहैगी माटी ।
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी ।।२।।

अजी हो जीवाजी थानैं श्रीगुरु .....

अजी हो जीवाजी थानै श्रीगुरु कहै छै, सीख मानौं जी ।।टेक।।
बिन मतलब की थे मति मानौं, मतलब की उर आनौं जी ।।१।।
राग-दोष की परिनति त्यागौ, निज सुभाव थिर ठानौं जी ।।२।।
अलख अभेद रु नित्य निरंजन, थे 'बुधजन' पहिचानौं जी ।।३।।

आगे कहा करसी भैया,.....

आगे कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे
ह्यां तौ तैंनैं पोल मचाई, व्हां तौ होय संभाल रे।।टेक।।
झूठ कपट करि जीव सताये, हरचा पराया माल रे।
सम्पति सेती धाप्या नाहीं, तकी विरानी बाल रे।।१।।
सदा भोग मैं मगन रहचा तू, लख्या नहीं निज हाल रे।
सुमरन दान किया नहिं भाई, हो जासी पैमाल रे।।२।।
जोवन में जुवती संग भूल्या, भूल्या जब था बाल रे।
अब हूँ धारो 'बुधजन' समता, सदा रहहु खुशहाल रे।।३।।

जिनके हिरदै प्रभु नाम नहीं.....

जिनके हिरदै प्रभु नाम नहीं, तिन नर अवतार लिया न लिया ।।टेक।।
दान बिना घर-वास बास, कै लोभ मलीन धिया न धिया ।।१।।
मदिरापान कियो घट अन्तर, जलमल सोधि पिया न पिया ।
आन प्रान के मांस भखे तैं, करुना भाव हिया न हिया ।।२।।
रूपवान गुनखान वानि शुभ, शील विहीन तिया न तिया ।
कीरतवन्त मृतक जीवत हैं, अपजसवन्त जिया न जिया ।।३।।
धाम मांहि कछु दाम न आये, बहु व्योपार किया न किया ।
'द्यानत' एक विवेक किये बिन, दान अनेक दिया न दिया ।।४।।

ऐसी समझ के सिर धूल .....

ऐसी समझ के सिर धूल ।।टेक।।
धरम उपजन हेत हिंसा, आचरैं अघमूल ।।१।।
छके मत-मद पान पीके, रहे मन में फूल ।
आम चाखन चहैं भोंदू, बोय पेड़ बबूल ।।२।।
देव रागी लालची गुरु, सेय सुखहित भूल ।
धर्म नग की परख नाहीं, भ्रम हिंडोले झूल ।।३।।
लाभ कारन रतन विराजै, परख को नहिं सूल ।
करत इहि विधि वणिज 'भूधर', विनस जै है मूल ।।४।।

तैं क्या किया नादान.....

तैं क्या किया नादान, तैं तो अमृत तजि विष लीना ।।टेक।।
लख चौरासी जौनी माहिं तैं, श्रावक कुल में आया ।
अब तजि तीन लोक के साहिब, नवग्रह पूजन धाया ।।१।।
वीतराग के दरसन ही तैं, उदासीनता आवै ।
तू तौ जिनके सनमुख ठाडा, सुत को ख्याल खिलावै ।।२।।
सुरग सम्पदा सहजै पावै, निश्चय मुक्ति मिलावै ।
ऐसी जिनवर पूजन सेती, जगत कामना चावै ।।३।।
'बुधजन' मिलैं सलाह कहैं तब, तू वापै खिजि जावै ।
जथा जोग कौं अजथा मानै, जनम-जनम दुख पावै ।।४।।

देख्या बीच जहान में.....

देख्या बीच जहान मे कोई अजब तमाशा
कोई अजब तमासा जोर तमासा सुपने का सा ।।टेक।।
एकौं के घर मंगल गावैं, पूरी मन की आसा ।
एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि-भरि नैन निरासा ।।१।।
तेज तुरङ्गनि पै चढि चलते, पहिरैं मलमल खासा ।
रङ्क भये नागे अति डोलैं, ना कोइ देय दिलासा ।।२।।
तरकैं राज तखत पर बैठा, था खुशवक्त खुलासा ।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीना वासा ।।३।।
तन धन अथिर निहायत जग में, पानी माहिं पतासा ।
'भूधर' इनका गरब करैं जे, धिक तिनका जनमासा ।।४।।

तेरी बुद्धि कहानी, सुनि मूढ़ अज्ञानी.....

तेरी बुद्धि कहानी, सुनि मूढ़ अज्ञानी।।टेक।।
तनक विषयसुख लालच लाग्यौ, नतकाल दुखखानी।।१।।
जड-चेतन मिलि बंध भये इक, ज्यौं पयमाहीं पानी।
जुदा-जुदा सरूप नहिं मानै, मिथ्या एकता मानी।।२।।
हूँ तो 'बुधजन' दृष्टा-ज्ञाता, तन जड सरधा आनी।
ते ही अविचल सुखी रहैंगे, होय मुक्ति वर प्रानी।।३।।

अहो यह उपदेश माहीं.....

अहो यह उपदेश माहीं, खूब चित्त लगावना
होयगा कल्यान तेरा, सुख अनन्त बढ़ावना ।।टेक।।
रहित दूषन विश्वभूषन, देव जिनपति ध्यावना।
गगनवत निर्मल अचल मुनि, तिनहिं शीस नवावना ।।१।।
धर्म अनुकम्पा प्रधान, न जीव कोई सतावना।
सप्ततत्त्व परीक्षा करि, हृदय श्रद्धा लावना ।।२।।
पुद्गलादिक तैं पृथक्, चैतन्य ब्रह्म लखावना।
या विधि विमल सम्यक्त्व धरि, शंकादि पंक बहावना ।।३।।
रुचै भव्यन को वचन जे, शठन को न सुहावना।
चन्द्र लखि जिमि कुमुद विकसै, उपल नहिं विकसावना ।।४।।
'भागचन्द' विभाव तजि, अनुभव स्वभावित भावना।
या शरण न अन्य जगतारन्य मे कहु पावना ।।५।।

ना समझो अभी मित्र कितना अंधेरा.....

ना समझो अभी मित्र कितना अंधेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।
गई सो गई मत गई को बुलाओ नया दिन हुआ है नया डग बढ़ाओ ।।
न सोचो न लाओ बदनपर मलिनता तुम्हारे करों में है कल की सफलता।
जली ज्योति बनकर ढलेगा अन्धेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा ।।
पियो मित्र शोले समझ करके पानी दुःखोंने लिखी है सुखोंकी कहानी।
नहीं पढ़ सका कोई किस्मत का कासा नहीं जानता कब पलट जाये पासा ।।
चले जो मिला मंजिलों का बसेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।
व्यथाये मिले तो उन्हें तुम दुलारो प्रगति प्रेम से मिले तो पुकारो ।।
दुःखों की सदा उम्र छोटी रही है सदा श्रम सुखों के ही बोती रही है।
सदा पतझरों ने बहारों को टेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा ।।
गुरुवर से नया जीवन मिला है जो निधियां बिखरती वो लूटो हमेशा।
अनेक ग्रन्थ मंथन से हीरा निकाला तुम जौहरी बनके कर दो उजाला ।।
जरा भूल की तो है नर्कों में बसेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।

आचरण तुम्हारा शुद्ध नहीं......

आचरण तुम्हारा शुद्ध नहीं, कल्याण तुम्हारा कैसे हो ।
विषयन-वश-भक्ष-अभक्ष भखो, हिय ज्ञान-उजाला कैसे हो ।।टेक।।
दिल दुनियाँ से भयभीत नही, आत्म-हित से कुछ प्रीत नहीं ।
तन पिंजर से जिय निकल पड़े, प्रस्थान सहारा कैसे हो ।।१।।
कायर बन जप व्रत छोड रहे, तप करने से दिल मोड़ रहे ।
विषयन में ममता जोड़ रहे, बिन दान गुजारा कैसे हो ।।२।।
पूजा कर मन इच्छा धरते, मन चचल कर माला जपते ।
झूठे धंधे गटपट करते, कर्मो का निवारा कैसे हो ।।३।।
इस तनको अपना मान रहे, धन सम्पत्ति अपनी जान रहे ।
मै-मैं तूँ-तूँ का ध्यान रहे, सत् ध्यान तुम्हारा कैसे हो ।।४।।
शुक जैसी रटना रटते हो, आगम का अर्थ न धरते हो ।
चलने की चाल पलटते हो, दुठ थान उबारा कैसे हो ।।५।।
प्रभुताई को तुम भजते हो, प्रभु नाम का कीर्तन तजते हो ।
प्रभु नाम से प्रभुता होती है, यह बात प्रचारा कैसे हो ।।६।।
नर तन-चिन्तामणि पाकर के, खोते हो काग उड़ा करके ।
डूबे को अगम भवोदधि मे, बिन यान किनारा कैसे हो ।।७।।
अवसर लहि निज-हित कर डालो, शिव मग पर निज दृष्टी डालो ।
फिर 'बाल' जहाँ मे रहने का, स्थान तुम्हारा कैसे हो ।।८।।

यम नियम संयम आप कियो.....

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लियो
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो ।।टेक।।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ जोग प्रयोग सुतार भयो ।
जप भेद जपे तप त्योंहि तपे, उर से ही उदासि लहि सबपे ।।१।।
सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मन्डन खन्डन भेद लिये ।
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न पर्यो ।।२।।
अब क्यो न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से? ।
बिन सद्‌गुरु कोउ न भेद लहे,मुख आगल है यह बात कहे ।।३।।

चेतन को मिला जब नर तन.....

चेतन को मिला जब नर तन तो, फिर होश में आना भूल गया
इस हाट में बारा बाट हुआ, निज हाट में आना भूल गया ।।टेक।।
इस भूल में इतना फूल गया, कि ब्याज के बदले मूल गया ।
ममता ठगनी ने ऐसा ठगा कि अपना-बिराना भूल गया ।।१।।
फिरता तू तीरनदाज बना निज लक्ष्य का कुछ भी ध्यान नहीं ।
तूं कैसे तीर चलावेगा जब पहल निशाना चूक गया ।।२।।
स्वार्थ सिद्धि का मंत्र बना कहने को तू सरपंच बना ।
निज कार्य जरा ना रंच बना कर्त्तव्य निभाना भूल गया ।।३।।
अविरत कषाय और योगों से दिन-रात जो पाप के बंध किए ।
नरकों में ऐसी मार सही जो गुजरा जमाना भूल गया ।।४।।
हीरा पन्ना माणिक मोती ये सब पुद्गल की पर्यायें ।
कंकड़-पत्थर पर मुग्ध हुआ आतम का खजाना भूल गया ।।५।।

आओ जय जिनेन्द्र हो जाये.....

आओ जय-जिनेन्द्र हो जाये ।।टेक।।
हम तुम कौन कहाँ से आये अब तक जान न पाये ।
निज को भूल फिरे पर पीछे लाखों जनम गँवाये ।।१।।
पता नहीं कब साँस दूसरी आये या नहिं आये ।
यह घट किस पनघट पर फूटे कोई जान न पाये ।।२।।
इस काया के नाम अनेकों पंडित शोध धराये ।
अमल अखंडित ज्ञान पिंड को अब तक जान न पाये ।।३।।
जिस काया पर अकड़ रहे वह तेरे साथ न जाये ।
इक दिन यह माटी की काया माटी में मिल जाये ।।४।।
यह काया माया दो दिन की साथ न आये जाये ।
जड़ को अपना मान के चेतन चहुँ गति चक्कर खाये ।।५।।
नाशवान काया पोषण को पाप अनेक कमाये ।
जब जमराज आनकर पकरौ तब 'काका' पछताये ।।६।।

चेतन तू तिहुकाल अकेला.....

चेतन तू तिहुकाल अकेला ।।टेक।।

नदी नाव संजोग मिले ज्यों, त्यों कुटुंब का मेला ।।१।।
यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला ।
सुख सम्पति शरीर जल बुद बुद, विनसत नाहीं बेला ।।२।।
मोह मगन आतम गुन भूलत, परी तोहि गल जेला ।
मैं मैं करत चहूँ गति डोलत, बोलत जैसे छेला ।।३।।
कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तज, होइ सुगुरु का चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला ।।४।।

कहिवे को मन सूरमा.....

कहिवे को मन सूरमा, करवे को काचा।।टेक।।

विषय छुडावै और पै, आपन अति माचा ।।१।।
मिश्री-मिश्री के कहैं, मुह होय न मीठा ।
नीम कहैं मुख कटु हुआ, कहु सुना न दीठा ।।२।।
कहनेवाले बाहुत है, करने को कोई ,
कथनी लोक रिझावनी, करनी हित होई ।।३।।
कोटि जनम कथनी कथै, करनी बिनु दुःखिया ।
कथनी बिन् करनी करै, 'द्यानत' सो सुखिया ।।४।।

जीव! तैं मूढ़पना कित पायो.....

जीव! तैं मूढ़पना कित पायो
सब जग स्वारथ को चाहत हैं, स्वारथ तोहि न भायो ।।टेक।।

अशुचि अचेत दुष्ट तन माहीं, कहा जान विरमायो ।
परम अतीन्द्रिय निजसुख हरिकै, विषय रोग लपटायो ।।१।।
चेतन नाम भयो जड़ काहे, अपनो नाम गमायो ।
तीन लोक को राज छांड़िकै, भीख मांग न लजायो ।।२।।
मूढ़पना मिथ्या जब छूटै, तब तू सन्त कहायो ।
'द्यानत' सुख अनन्त शिव विलसो, यों सद्गुरु बतलायो ।।३।।

भोंदू भाई! देखि हिये की आंखैं....

भोंदू भाई! देखि हिये की आंखै।
जै करषैं अपनी सुख संपति, भ्रम की संपति नाखैं।।टेक।।
जे आंखै अमृतरस बरसैं, परखैं केवलि वानी।
जिन्ह आंखिन विलोकि परमारथ, होहिं कृतारथ प्रानी।।१।।
जिन आंखिन्ह मैं दशा केवलि की, कर्म लेप नहि लागै।
जिन आंखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै।।२।।
जिन आंखिन सों निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै।
जिन आंखिन सौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै।।३।।
जिन आंखिन के जगे जगत के, लगैं काज सब झूठे।
जिन सौं गमन होइ शिव सनमुख, विषय-विकार अपूठे।।४।।
जिन आंखिन में प्रभा परम की, पर सहाय नहि लेखैं।
जे समाधि सौं तकै अखंडित, ढकै न पलक निमेखैं।।५।।
जिन आंखिन की ज्योति प्रगटि कै, इन आंखिन में भासैं।
तब इनहूँ की मिटै विषमता, समता रस परगासैं।।६।।
जे आंखैं पूरन स्वरूप धरि, लोकालोक लखावैं।
अब यह वह सब विकलप तजिकैं, निरविकलप पद पावै।।७।।

जीव तू अनादिही तैं, भूल्यो.....

जीव तू अनादिही तैं, भूल्यो शिवगैलवा।।टेक।।
मोहमदवार पियो, स्वपद विसार दियो।
पर अपनाय लियौ, इन्द्रिय सुख में रचियौ।।
भव तैं न भियौ, न तजियौ मनमैलवा।।१।।
मिथ्याज्ञान आचरन, धरि कर कुमरन।
तीन लोक की धरन, तामें कियो है फिरन।।
पायो न शरन, न लहायौ सुख शैलवा।।२।।
अब नरभव पायो, सुथल सुकुल आयौ।
जिन उपदेश भायो, 'दौल' झट छिटकायौ।।
पर-परणति दुःखदायिनी चुरैलवा।।३।।

गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार.......

गाड़ी खड़ी रे खड़ी र तैयार, चलो रे भाई मोक्षपुरी।।टेक।।

सम्यग्दर्शन टिकट कटाओ, सम्यग्ज्ञान संवारो
सम्यक्चारित्र की महिमा से, आठों कर्म निवारो

अगर बीच में अटके तो, सर्वार्थसिद्धि जाओगे
तैंतीस सागर एक कोटि, पूरब वियोग पाओगे

फिर नर भव से ही यह गाडी, तुमको ले जायेगी
मुक्ति वधु से मिलन तुम्हारा, निश्चित करवायेगी

भव सागर का सेतु लाँघकर, यह गाडी जाती है
जिसने अपना ध्यान लगाया, उसको पहुँचाती है

यदि चूके तो फिर अनन्त भव, धर धर पछताओगे
मोक्षपुरी के दर्शन से तुम, वन्चित रह जाओगे

नरभव पाय फेरि दुख भरना......

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो।।टेक।।
नाहक ममत ठानि पुद्गल सौं, करमजाल क्यौं परना हो।।१।।
यह तो जड तू ज्ञान अरूपी, तिल तुष ज्यौं गुरु वरना हो।
राग-दोष तजि भजि समता कौं, कर्म साथ के हरना हो।।२।।
यो भव पाय विषय-सुख सेना, गज चढ़ि ईंधन ढोना हो।
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर पद, ज्यौं भवसागर तरना हो।।३।।

अरे जु तैं यह जन्म गमायो रे......

अरे जु तैं यह जन्म गमायो रे।।टेक।।
पूरब पुण्य किये कहुँ अति ही, तातैं नरभव पायो रे।
देव धरम गुरु ग्रंथ न परखै, भटकि भटकि भरमायो रे।।१।।
फिर तोको मिलिबो यह दुर्लभ, दश दृष्टान्त बतायो रे।
जो चेतै तो चेत रे 'भैया' तोको कहि समुझायो रे।।२।।

अरे हो अज्ञानी तूने, ...

अरे हो अज्ञानी तूने, कठिन मनुष-भव पायो।।टेक।।
लोचन रहित मनुष के कर में, ज्यो बटेर खग आयो।।१।।
सो तू खोवत विषयन माहीं, धरम नहीं चित लायो।
'भागचन्द' उपदेश मान अब, जो श्रीगुरु फरमायो।।२।।

रे नर ! विपति में धर धीर .....

रे नर! विपति में धर धीर।।टेक।।
सम्पदा ज्यों आपदा रे ! विनश जै है वीर।।१।।
धूप छाया घटत बढ़ै ज्यों, त्यों हीं सुख दु:ख पीर।
दोष 'द्यानत' देय किसको, तोरि करम-जंजीर।।२।।

धन-धन साधर्मीजन मिलन की घरी .....

धन-धन साधर्मीजन मिलन की घरी, बरसत भ्रमताप हरन ज्ञानघनझरी।।
जाके बिन पाये भवविपति अति भरी निजपरहितअहित की कछू न सुधि परी।
जाके परभाव चित्त सुथिरताकरी, सशय-भ्रम-मोह की सुवासना टरी।।
मिथ्या गुरु-देव सेव टेव परिहरी वीतराग देव सुगुरु सेव उरधरी।
चारों अनुयोग सुहितदेश दिठपरी शिवमग के लाह की सुचाह विस्तरी।।
सम्यक तरु धरनि येह करन करिहरी भवजल को तरनि समर भुजग विषजरी
पूरवभव या प्रसाद रमनि शिववरी सेवो अब 'दौल' याहि बात यह खरी।।

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया .....

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया।।टेक।।
आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढमती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनौं, अन्त नरक पहुँचाया।।१।।
केते कंथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किस ही सौं नहि प्रीति निबाही, वह तजि और लुभाया।।२।।
'भूधर' छलत फिरै यह सबकों, भोंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी कों ठग बैठे, मैं तिसको सिर नाया।।३।।

देखो भाई महाविकल संसारी.....

देखो भाई महाविकल संसारी ।
दुखित अनादि मोह के कारन, राग-द्वेष भ्रम भारी ।।टेक।।
हिंसारंभ करत सुख समुझै, मृषा बोलि चतुराई ।
परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढ़त बड़ाई ।।१।।
वचन राख काया दृढ़ राखै, मिटै न मन चपलाई ।
यातैं होत और की औरैं, शुभ करनी दुख दाई ।।२।।
जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै ।
कथनी कथत महंत कहावै, ममता मूल न त्यागै ।।३।।
आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठ मद आनै ।
जाति लाभ कुल बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै ।।४।।
जड सौं राचि परम पद साधै, आतम शक्ति न सूझै ।
बिना विवेक विचार दरब के, गुण परजाय न बूझै ।।५।।
जस वाले जस सुनि संतोषै, तप वाले तन सोषैं ।
गुन वाले परगुन को दोषैं, मतवाले मत पोषैं ।।६।।
गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोह विकलता छूटै ।
कहत 'बनारसि' है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै ।।७।।

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय.....

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोवत हो ।।टेक।।
कठिन-कठिन कर नरभव भाई, तुम लेखी आसान ।
धर्म विसारि विषय में राचौ, मानी न गुरु की आन ।।१।।
चक्री एक मतंग जु पायो, तापर ईंधन ढोयो ।
बिना विवेक बिना मति ही को, पाय सुधा पग धोयो ।।२।।
काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय ।
बायस देखि उदधि में फैंक्यो, फिर पीछे पछताय ।।३।।
सात व्यसन आठों मद त्यागो, करुना चित्त विचारो ।
तीन रतन हिरदे में धारो, आवागमन निवारो ।।४।।
'भूधरदास' कहत भविजन सों, चेतन अब तो सम्हारो ।
प्रभु को नाम तरन-तारन जपि, कर्म फन्द निरवारो ।।५।।

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ......

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै, जाको जिनवानी न सुहावै
वीतराग से देव छोड़कर, कुगुरु कुदेव मनावै
कल्पलता दयालुता तजि, हिंसा इन्द्रीयनि बावैं ।।टेक।।
रचैं न गुरु निर्ग्रन्थ भेष, बहु-परिग्रही गुरु भावै ।
पर-धन पर-तिय कौ अभिलाषे, अशन अशोधित खावै ।।१।।
पर को विभव देख ह्वै विह्वल, पर-दुःख हरख लहावै ।
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै ।।२।।
ज्यों गृह में संचै बहु अघ त्यों, वन हू में उपजावै ।
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै ।।३।।
आरम्भ तज शठ यन्त्र मन्त्र करि, जनपै पूज्य मनावै ।
धाम वाम तज दासी राखे, बाहिर मढ़ी बनावै ।।४।।
नाम धराय जती तपसी मन, विषयनि में ललचावै ।
'दौलत' सो अनन्त भव भटकै, औरन को भटकावै ।।५।।

खुद को ही जानूँ ना.....

खुद को ही जानूँ ना, कैसा ज्ञानी हूँ?
खुद को ही ध्याऊँ ना, कैसा ध्यानी हूँ? ....
खोजा निज को परमाहिं, कैसा खोजी हूँ?
खोया हूँ पर के माहिं, सो दुःख-भोगी हूँ।।
पर में ही सुख को मान, पर का भोगी हूँ।
निज में ना सुख पहिचान, मैं दुःख-भोगी हूँ।।
आतम के ज्ञान बिना, मैं भ्रम-रोगी हूँ।
चेतन के ध्यान बिना, मैं भव-रोगी हूँ।।
ध्रुव चेतन तत्त्व सम्हाल, मैं सुख-भोगी हूँ।
आतम-आतम मय ध्याय, समता-भोगी हूँ।।
निज में रम जाऊँ मै, ऐसा ज्ञानी हूँ.....
[illegible] ही ध्याऊँ मैं, ऐसा ध्यानी हूँ.....

१३. जिन धर्म (जिनशासन)

जिन धर्म ही दाता मुक्ति का, ...

जिन धर्म ही दाता मुक्ति का, सुख पालो जिसका जी चाहे।
है जन्म-मरण-दुख हरण औषधि, खालो जिसका जी चाहे।।टेक।।
यह स्यादवाद निर्भेद किला, नहीं लगें कुतर्कों के गोले।
षट्दर्शन अपनी तोपों से अजमा लो जिसका जी चाहे।।१।।
है राग-द्वेष बिन देव गुरू, निर्ग्रंथ दया मई धर्म जहाँ।
है आदि अन्त अविरुद्धागम, पढ़ डालो जिसका जी चाहे।।२।।
इस सृष्टि का नहीं आदि-अन्त, है स्वयंसिद्ध रचना यूं ही।
नहीं कर्त्ता-हर्त्ता है कोई, बतला लो जिसका जी चाहे।।३।।
युक्ति प्रमाण नय निक्षेपों से, है द्रव्य पदार्थ तत्व वर्णन।
यदि हो इसमे कुछ भी सन्देह, निकालो जिसका जी चाहे।।४।।
नहीं सत का होता नाश कभी, नहीं असत् कभी पैदा होता।
यह जिनमत का सिद्धान्त अटल, अजमा लो जिसका जी चाहे।।५।।
संसार अथायी सागर से, जिनदेव बिना नहिं पार करे।
'मक्खन' रत्नत्रय नौका पे, चढ़ चालो जिसका जी चाहे।।६।।

सिद्धचक्र मण्डल भला आ गया ....

सिद्धचक्रमण्डल भला आगया, देखो देखो देखोजी आनंद छा गया ।।टेक।।

भटक रहा था पर परिणति मे, निज का भाव न आया मुझको
पर का भला-बुरा कर सकता, ऐसा भाव समाया मुझको
अब तो अपनारूप आ गया, देखो देखो देखोजी आनंद छा गया

मैं हूँ पर से भिन्न निराला, मैं हूँ ज्ञान सुधाकर आला
छहों द्रव्य परिणमें स्वयं मे, पर का किंचित् नहीं सहारा
कर्तापन का मन है गया, देखो देखो देखोजी आनंद छा गया

मैं तो शुद्ध ज्ञायक निराला, हर क्षण पी सकता सुख प्याला
अंतर में सुख दरिया उछलता पर के अटकने में नहीं धरता
निज के सिद्ध को आज पागया, देखो देखो देखोजी आनंद छा गया

जिनधर्म रत्न पाय के स्वकाज ना किया.....

जिनधर्म रत्न पायके स्वकाज ना किया।
नरजन्म पायके वृथा गमाय क्यों दिया।।टेक।।
अरहंतदेव सेव सर्व सुक्ख की मही।
तज के कुधी कुदेव की अराधना गही।।१।।
पण अक्ष तो परतच्छ, स्वच्छ ज्ञान को हरैं,।
इनमें रचे कुजीव जे कुजोनि मैं परैं।।२।।
परसंग के परसंगतैं, परसंग ही किया।
तजके सुधा स्वरूपको, जलक्षार ही पिया।।३।।
मद- मोह- काम- लोभ की, झकोर में परो।
तज इनको ये वैरी बड़े, लखि दूर से डरो।।४।।
हिरदै प्रतीत कीजिये, सुदेव धर्म की।
तजि राग- द्वेष मोह, ओ कुटेव कर्म की।।५।।
सजि वीतरागभाव जो स्वभाव आपना।
विधिबंध फंद के निकंद, भाव आपना।।६।।
मन का करो निरोध, बोध सोध लीजियें।
तजि पुण्य पाप बीज, आप खोज कीजिये।।७।।
सद्धर्म का यह भेव श्री, गुरुदेव ने कहा।
शिववास काज यों, 'जिनेशदास' ने गहा।।८।।

धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे.....

धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे, प्यारा प्यारा लागे जैनधर्म मेरा रे।।
ऋषभहुए वीरहुए धर्म मेरे रे, बलवानबाहुबली सेवे धर्म मेरा रे।
भरत हुए राम हुए धर्म मेरे रे, कुन्द कुन्द सन्त हुए धर्म मेरा रे।।
चंदना सीता हुई धर्म मेरे रे, ब्राह्मी राजुल सेवे धर्म मेरा रे।
सिंह सेवे वाघ सेवे धर्म मेरा रे, हाथी वानर सर्प सेवे धर्म मेरा रे।।
आत्माका ज्ञान देता धर्म मेरा रे, रत्नत्रयका दान देता धर्म मेरा रे।
सम्यक्त्व जिसका मूल वह धर्म मेरा रे, सुख देवे मोक्ष देवे, धर्म मेरा रे।।

जो क्रोध-मद-माया अपावन.....

जो क्रोध-मद-माया अपावन, लोभरूप विभाव है ।
उनके अभाव स्वभावमय, उत्तमक्षमादि स्वभाव है ।।टेक।।
उत्तमक्षमादि स्वभाव ही, इस आत्मा के धर्म हैं ।
है सत्य शाश्वत ज्ञानमय, निजधर्म शेष अधर्म हैं ।।१।।
निज आत्मा में रमण संयम, रमण ही तप-त्याग हैं ।
निज रमण आकिंचन्य है, निज रमण परिग्रह-त्याग हैं ।।२।।
निज रमणता ब्रह्मचर्य है, निज रमणता 'दशधर्म' है ।
निज जानना पहिचानना, रमना धरम का मर्म है ।।३।।
अरहन्त हैं दशधर्म-धारक, धर्म-धारक सिद्ध हैं ।
आचार्य हैं, उवझाय हैं, मुनिराज सर्व प्रसिद्ध हैं ।।४।।
जो आत्मा को जानते, पहिचानते करते रमन ।
वे धर्म-धारक, धर्म-धन हैं, उन्हें हम करते नमन ।।५।।

जैन धर्म के हीरे मोती.....

जैन धर्म के हीरे मोती, मैं बिखराऊँ गली गली।
ले लो रे कोई प्रभु का प्यारा, शोर मचाऊँ गली गली।।टेक।।
दौलत के दीवानो सुन लो, एक दिन ऐसा आयेगा।
धन-दौलत और रूप-खजाना, पडा यहीं रह जायेगा।।
सुन्दर काया मिट्टी होगी, चर्चा होगी गली गली।।१।।
क्यों कहता तू तेरी मेरी, तज दे उस अभिमान को।
झूठे झगडे छोडकर प्राणी, भज ले तू भगवान को।।
जगत का मेला दो दिन का, अंत में होगी चला चली।।२।।
जिन जिनने ये मोती लूटे, वे ही मालामाल हुए।
दौलत के जो बने पुजारी, आखिर में कंगाल हुए।।
सोने चाँदी वालो सुन लो, बात कहूँ मैं भली भली।।३।।
जीवन में दुख है तब तक ही, जब तक सम्यग्ज्ञान नहीं।
ईश्वर को जो भूल गया, वह सच्चा इन्सान नहीं।।
दो दिन का ये चमन खिला है, फिर मुर्झाये कली कली।।४।।

गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार ....

गाडी खड़ी रे खड़ी रे तैयार चलो रे भाई शिवपुर को ।।टेक।।
चन्द्रप्रभु भगवान का, करता हूँ गुणगान।
निज स्वरूप को जानकर, बन जाऊँ भगवान।।१।।
जो पारस सोना करे, सो पारस है कच्चा।
जो पारस पारस करे, सो पारस है सच्चा।।२।।
त्याग त्याग सब ही कहें, त्याग न जाने कोय।
राग-द्वेष के त्याग बिन, त्याग न सच्चा होय।।३।।
ग्रहण-ग्रहण सब कोई कहें, ग्रहण न जाने कोय।
निज स्वभाव के ग्रहण बिन, ग्रहण न सच्चा होय।।४।।
देव-देव सब ही कहें, देव न जाने कोय।
वीतराग सर्वज्ञ ही, देव जु सच्चा होय।।५।।
शास्त्र-शास्त्र सब कोई कहे, शास्त्र न जाने कोय।
वीतरागता पोषते, शास्त्र सु सच्चे होय।।६।।
गुरु-गुरु सब कोई कहे, गुरु न जाने कोय।
रत्नत्रय धारक नगन, गुरु ही सच्चा होय।।७।।
धर्म-धर्म सब ही कहें, धर्म न जाने कोय।
धर्मी के आश्रय बिना, धर्म कहाँ ते होय।।८।।

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म ....

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला।
इसी धर्म में वीर जिनेश्वर, मुक्ति का पंथ टटोला।।टेक।।
इसी धर्म में कुन्द-कुन्द मुनि, शुद्धातम रस घोला।
इसी धर्म में मानतुंग ने, जेल का फाटक खोला।।१।।
इसी धर्म में उमास्वामी ने, तत्वार्थ को तोला।
इसी धर्म में अकलंकदेव ने, क्षणिक वाद झकझोला।।२।।
इसी धर्म में टोडरमल ने, प्राण तजे बन भोला।
ऐसे उत्तम धर्म में पाया, मक्खन ने यह चोला।।३।।

पर्व पर्यूषण आया आनंद स्वरूपी जान.....

पर्व पर्यूषण आया आनंद स्वरूपी जान ।।टेक।।

पर्व कहें सब उत्तम दिन को, उत्तम वह जिनसे निजहित हो ।
यह संदेश सुनाया श्री वीतराग भगवान ।।१।।
सबकी परिणति न्यारी-न्यारी, आप रहें ज्ञायक अविकारी ।
शत्रु मित्र समझाया, यह धर्म क्षमा गुणखान ।।२।।
बड़ापना जो पर से माने, अपनी निधि को न पहचाने ।
मानकषाय हटाया, यह धर्म मार्दव जान ।।३।।
जाने भले ही न अज्ञानी, किन्तु जानते केवलज्ञानी ।
इस भाँति समझ में आया, अब तजहुँ कपट कृपान ।।४।।
मैं पवित्र चैतन्यस्वरूपी, भाव आस्रव अशुचि विरूपी ।
चाहदाह विनसाया, धारूँ संतोष महान ।।५।।
वस्तुस्वरूप धरै जो जैसो, सम्यक ज्ञानी जाने तैसो ।
राग-द्वेष मिटाया, बोले हित मित प्रिय बान ।।६।।
पंचेन्द्रिय मन भोग तजे जो, निज में निज उपयोग सजै जो ।
षट्काय न जीव नशाया, यह संयम धर्म प्रधान ।।७।।
निस्तरंग निजरूप रमे जो, सकल विभाव समूह वमे जो ।
द्वादश विधि बतलाया, यह तप दाता निर्वाण ।।८।।
राग-द्वेष की परिणति छीजे, चारों दान विधि से दीजे ।
उत्तम त्याग बताया, हितकारी स्व-पर सुजान ।।९।।
त्याग करे जो पर की ममता, अपने उर में धारे समता ।
आकिंचन धर्म सुहाया सब संग तजो दुख खान ।।१०।।
विषय बेल विष नारी तजकर, पुद्गलरूप लखो नारी नर ।
ब्रह्मचर्य मन भाया, आनंद दायिकी जान ।।११।।
दशलक्षण अरु सोलह कारण, रत्नत्रय हिंसा निरवारन ।
वस्तु स्वभाव बताया 'निर्मल' आतम पहचान ।।१२।।

उत्तम क्षमा धर्म

जिया तूं चेतत क्यों नहिं ज्ञानी, कर क्रोध करत बहु हानी ।।टेक।।
तेरो रूप अनूपम चेतन, रूपवंत सुखखानी।
ताको भूल रच्यो पर पद में, विभाव परिणति ठानी ।।१।।
क्रोधभाव अन्तर प्रगटावत, बन सम्यक् श्रद्धानी।
क्षमा बिना तप संयम सारे, होत नहीं फल दानी ।।२।।
तेरा शत्रु मित्र नहिं कोई, तू चेतन सुज्ञानी।
क्षमा प्रधान धर्म है तेरा, जासे वरे शिवरानी ।।३।।
क्षमाभाव जो नित भावत हैं, उनकी समझ सयानी।
उनको 'प्रेम' समागम चाहत, भजत सदा जिनवानी ।।४।।

उत्तम मार्दव धर्म

त्यागो त्यागो यार, मान बडा दुखदाई ।।टेक।।
है कितने दिन का जीना, जो करते मान प्रवीना ।
तुम्ही बतलाओ यार, मान बड़ा दुखदाई ।।१।।
यह तन धन यौवन सारा, है इन्द्र धनुष आकारा ।
न विनसन लागे वार, मान बड़ा दुखदाई ।।२।।
कुल जाति रूप मद ज्ञानं, धन बल मद तप प्रभुतानं ।
आठ मद यही निवार, मान बड़ा दुखदाई ।।३।।
यह मान नरक का दाता, आतम का रूप भुलाता ।
कीर्ति का करै सहार, मान बड़ा दुखदाई ।।४।।
रावण से भूपति भारी, तिन भोगी विपति अपारी ।
लिया नरकों अवतार, मान बड़ा दुखदाई ।।५।।
इसलिये मान परिहारो अरू मार्दव धर्म सम्हारो ।
'प्रेम' यह करत पुकार, मान बड़ा दुखदाई ।।६।।

उत्तम आर्जव धर्म

तज कपट महा दुखकारी, भज आर्जव वृष हितकारी ।।टेक।।
तूने उत्तम नरभव पाया, श्रावक कुल में आया ।
नहि कुछ भी धर्म कमाया, बन करके मायाचारी ।।१।।
क्यों मायाजाल बिछाता, तू भोले जीव फंसाता ।
क्यो बगुला भक्ति दिखाता, तेरी मति गई है मारी ।।२।।
माया की भंगिया छानी, नहीं बोले सांची बानी ।
भावे मिथ्या वच सानी, जो दुरगति की सहचारी ।।३।।
छिप करके पाप कमाता, बाहर से धर्म दिखाता ।
कोई विश्वास न लाता, सब कहते ढोंगाचारी ।।४।।
इससे अब जागो जागो, माया को त्यागो त्यागो ।
वृष आर्जव मे चित पागो, तज कपटभाव से यारी ।।५।।
तज भाव करोंत समानं, अरु बगुला भक्ति महानं ।
यह भाव महा दुख दान, भज सरल भाव सुखकारी ।।६।।
जहा किंचित कपट न पायो, वह आर्जव धर्म कहायो ।
यह छंद प्रेम ने गायो, निष्कपट बनो नर-नारी ।।७।।

उत्तम शौच धर्म

चेतो चेतो रे नर नारी, कर दो लोभ पाप परिहार ।।टेक।।
लोभ महा जग मे दुखदाई, इसने तृष्णा बेल बढाई ।
साता इसमे कछु न पाई, व्याकुल भये अपार ।।१।।
अन्तर लोभ मैल है छाया, जिससे आतम जग भरमाया ।
अबतक शुद्ध नहीं कर पाया, कैसे पावो पार ।।२।।
गंगा यमुना खूब नहाया, किन्तु पाप मल नहीं धुलाया ।
दूना हिंसा पापं कमाया, मिथ्या का भंडार ।।३।।
अब तो चेत यहाँ को आओ, शांति सलिल संतोष बहाओ ।
अन्तर का अघ मैल छुटाओ, हो जावे उद्धार ।।४।।
शौच धर्म है यही तुम्हारा, इसको प्रेम करो पतियारा ।
यही एक शुद्धी का द्वारा, वर देवे शिवनार ।।५।।

उत्तम सत्य धर्म

इस जग में थोड़े दिन की जिन्दगानी है।
क्यों हुआ दिवाना बके झूठ बानी है ।।टेक।।
नहिं सत्य व्रत सम जग में व्रत बखाना
नहिं झुठ पाप सम जग में पाप महाना।
तज मिष्ट सुधारस, पियत क्षार पानी हैं ।।१।।
जो पगे स्वार्थ में, झूठ वचन बतलाते
कोई नहिं उन पर, निज विश्वास रमाते।
सच बात कहें पर, झूठी श्रद्धानी हैं ।।२।।
जो सत्यामृत का पान, सदा करते हैं
वे सब प्रकार के सुख, अनुभव करते है।
सत्यार्थ पुरुष की, कीरति फहिरानी है ।।३।।
ज्यों पावक का कन, सघन बनी दहता है
त्यों थोडा झूठ भी, प्राणों को हरता है।
इसलिये झूठ का, करे त्याग ज्ञानी है ।।४।।
इस हेतु सत्य के भक्त, बनो नर नारी
है सत्य धर्म अति, पर्म शर्म दातारी।
कहे 'प्रेम' सिन्धु, सत्‌धर्म मुकति दानी है ।।५।।

उत्तम संयम धर्म

जगत में संयम धर्म महान ।।टेक।।
गफलत की तज नीद अरे नर, भर समकित की तान ।
तब तू पावे अक्षय निधि को, हो जावे धनवान ।।१।।
मेंट सकल मिथ्यात्व हृदय से, कर समकित रस पान ।
संगति पांच इन्द्रियों की तज दे, मान कही मतिवान ।।२।।
यह पांचों पक्की ठगनी हैं, इनसे ठगा जहान ।
मन के साथ इन्हें वश कर ले, संयम की पहिचान ।।३।।
धरम प्रेम है अगर वास्तविक, कर करुणा का दान ।
रक्षा कर स्थावर त्रस की, षट्‌कायक पहिचान ।।४।।
मन के सकल विकार दूर कर, कर अपना कल्याण ।
नत मस्तक जिन चरनन पर कर, 'प्रेम' निजातम ध्यान ।।५।।

उत्तम तप धर्म

करो जिय तप द्वादश परकार ।।टेक।।
रोको आभ्यन्तर इच्छाएँ, रत्नत्रय को धार ।
जिनसे अहित होत है तेरा, उनसे कैसा प्यार ।।१।।
या ससार असार जान कर, तज गए श्री जिनराज ।
तप कर अष्ट कर्म रिपु जीते, बैठे आत्म जिहाज ।।२।।
परिग्रह आरंभ त्याग गए वन, आतम अनुभव गार ।
द्वाविशति परीषह को सहकर, पायो भवदधि पार ।।३।।
दखल करो अपनी निधी ऊपर, कर करमो की हार ।
शक्ति नहीं छिपाओ विजय का, पहिनो सुन्दर हार ।।४।।
परिचय पाकर आत्म शक्ति का, निर्भयता को धार ।
रण में प्रस्तुत होकर चेतन, रहो मोह को मार ।।५।।
काया सफल जभी हो तेरी, कर जब तप स्वीकार ।
रत्नत्रय से प्रेम बढाकर, वर पावे शिवनार ।।६।।

उत्तम त्यागधर्म

कर त्यागधर्म से यारी, चेतन जाग जाग जाग ।।टेक।।
यह दया दान सुखकारी, छलकपट त्याग दुखकारी ।
यह धर्म स्व-पर हितकारी, इसमे लाग लाग लाग ।।१।।
यह दो प्रकार का गाया, इक अन्तरग बतलाया ।
रागादिक दोष न भाया, दुख दाग दाग दाग ।।२।।
है दूजा बाहच दानं, तसु चार भेद सुख खानं ।
सो दीजे वित्त समानं, चित पाग पाग पाग ।।३।।
है उत्तम दान अहारा, औषधि श्रुति अभय विचारा ।
है शुभ गति का दातारा, कर अनुराग राग राग ।।४।।
जो चाहो आप भलाई, वृष त्याग गहो सुखदाई ।
यह प्रेम कहैं समझाई, अब तो जाग जाग जाग ।।५।।

उत्तम आकिंचन्य धर्म

जिया तू आकिंचन्य व्रत धार ।।टेक।।
या समान कोई नहिं तेरा, है जग में हितकार ।
तू त्रिभुवन का ईश अकिंचन, तेरा है सहकार ।।१।।
आकिंचन के लिये न किंचित्, राखे परिग्रह भार ।
किंच उदर में होय तभी तो, होवे उदर विकार ।।२।।
चढ वैराग शैल के ऊपर, द्विविधि संग परिहार ।
नटवत स्वांग धरन का तब तो, हो जावे संहार ।।३।।
वृजवाला शिव सुंदरि बाला, तुझे करेगी प्यार ।
तब तो फिर तू हो जावेगा, अविनाशी अविकार ।।४।।
धाया इत उत खूब न पाया, तूने अपना द्वार ।
रम मति 'प्रेम' परिग्रह भीतर, जो चाहे उद्धार ।।५।।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

चेतन रूप चिन्ह चिद्रूपम, ब्रह्म स्वरूप पिछानत ज्ञानी ।।टेक।।
पुद्गल रूप विभाव विपर्यय, ताकी करत सभी विधि हानी ।
स्वातम शुद्ध समामृत चाखत, इम भाषत मुनि आतम ध्यानी ।।१।।
निज स्वरूप में मग्न हुए जब, परमानंद दशा प्रगटानी ।
सो यथार्थ ब्रह्मचर्य अवस्था, ताको लहत वरत शिवरानी ।।२।।
काष्ठादिक पाषाण धातु की, त्रिय मूरति चित्राम सुहानी ।
अथवा चेतन कामिनि की निज, माता बहिन सुता सम जानी ।।३।।
अंजन मंजन राग रंग तज, नाहीं तन श्रृंगार सजानी ।
पौष्टिक असन वसन भूषन तज, काम कथा नहिं श्रवन करानी ।।४।।
सर्व प्रकार त्याग मैथुन को, सो ही ब्रह्मचर्य श्रद्धानी ।
'प्रेम' तासु की महिमा उत्तम, वेद पुराण बखानी ज्ञानी ।।५।।

धर्म बिना बावरे तूने मानव रतन गँवाया.....

धर्म बिना बावरे तूने मानव रतन गँवाया।।टेक।।

कभी न कीना आत्म निरीक्षण कभी न निज गुण गाया।
पर परणति से प्रीति बढ़ाकर काल अनंत बढ़ाया।।१।।
यह संसार पुण्य-पापों का पुण्य देख ललचाया।
दो हजार सागर के पीछे काम नहीं यह आया।।२।।
यह संसार भव समुद्र है बन विषयी हरषाया।
ज्ञानी जन तो पार उतर गये मूरख रुदन मचाया।।३।।
यह संसार ज्ञेय द्रव्य है आतम ज्ञायक गाया।
कर्ता बुद्धि छोड़ दे चेतन नहिं तो फिर पछताया।।४।।
यह संसार दृष्टि की माया अपना कर अपनाया।
"केवल" दृष्टि सम्यक् कर ले समझाया।।५।।

सुन्दर दशलच्छन वृष सेय.....

सुन्दर दशलच्छन वृष, सेय सदा भाई।
जास तैं ततच्छन जन, होय विश्वराई।।टेक।।
क्रोध को निरोध, शान्त-सुधा को नितान्त शोध।
मान को तजौ, भजौ स्वभाव कोमलाई।।१।।
छल बल तजि, विमलभाव सरलताई भजि।
सर्व जीव चौन दैन, वैन कह सुहाई।।२।।
ज्ञान-तीर्थ स्नान दान, ध्यान भान हृदय आन।
दया-चरन धारि, करन-विषय सब बिहाई।।३।।
आलस हरि द्वादश तप धारि शुद्ध मानस करि।
होह गेह देह जानि, तजौ नेहताई।।४।।
अन्तरंग बाह्य संग त्यागि आत्मरंग पागि।
शीलमाल अति विशाल, पहिर शोभनाई।।५।।
यह वृष-सोपान राज, मोक्षधाम चढ़न काज।
शिव सुख निज गुन समाज, केवली बताई।।६।।

आओ आओ जी जैन जन सारे ....

आओ आओ जी जैन जन सारे, प्रभु निर्वाण गए ।
गाओ गाओ जी सकल नर नारि, प्रभुशिवथान गए ।।टेक।।
धन्य धन्य त्रिभुवन के स्वामी, परम प्रतापी नेता ।
सिद्धारथ सुत त्रिशला नन्दन, जय जय कर्म विजेता ।।१।।
यज्ञ मठों में लख पशुओं को, सब जग से मुँह मोड़ा ।
जीव मात्र पर दया दिखाकर, वन में किया बसेरा ।।२।।
वीतराग निर्ग्रन्थ दिगम्बर, मुनि मुद्रा तप धारी ।
आतम ध्यान जगाकर पावन, करम सेना मारी ।।३।।
केवलज्ञान ज्योति विस्तारी, दोष समूल नशाये ।
दे उपदेश अनन्त अधम जन, भव से पार लगाये ।।४।।
अविचल अजर अमर अविनाशी, निजानन्द पद धारी ।
पावापुर से मोक्ष पधारे, नित प्रति धोक हमारी ।।५।।

तुम तो जागो चेतन वीर ....

तुम तो जागो चेतन वीर ।
इस पलने में झूल चुके हैं, कैसे कैसे वीर ।।टेक।।
प्रति नारायण नौं नारायण, नव बलभद्दर वीर ।
वृषभादि वीरान्त जिनेश्वर, द्वादश चक्री वीर ।।१।।
इन्द्रजीत अरु कुम्भकर्ण और मेघनाद से वीर ।
भामंडल सुग्रीव नील नल, हनूमान रणधीर ।।२।।
श्रीपाल कोटि भट राजा, सेठ सुदर्शन धीर ।
रानी दोष लगाया झूठा, डिगे न गुन गम्भीर ।।३।।
पांचों पान्डव द्रौपदि रानी, सीता अग्नि नीर ।
अंजन चोर धरे शूली पर, पायो स्वर्ग गहीर ।।४।।
कुंदकुंद मुनि उमास्वामी, मानतुंग गम्भीर ।
काव्य काव्य में बंधन टूटे, अड़तालिस जंजीर ।।५।।
इस पलने की महिमा बरनें, ऐसा को बरवीर ।
रत्नत्रय नौका चढ़ि उतरो ,भव सागर गम्भीर ।।६।।

गाड़ी खड़ी रे, खड़ी रे......

गाड़ी खड़ी रे, खडी रे तैयार, चलो रे भाई शिवपुर को ।।टेक।
जो तू चाहे मोक्ष को, सुन रे मोही जीव ।
मिथ्यामत को छोड़ कर, जिन वाणी रस पीव ।।१।।
जो जिन पूजै भाव धर, दान सुपात्रहि देय ।
सो नर पावे परम पद, मुक्ति श्री फल लेय ।।२।।
जिनकी रुचि अति धर्म सों, साधर्मिन सौं प्रीत ।
देव शास्त्र गुरु की सदा, उर में परम प्रतीत ।।३।।
इस भव तरु का मूल इक, जानों मिथ्या भाव ।
ताको कर निर्मूल अब, करिये मोक्ष उपाव ।।४।।
दानो मे बस दान है, श्रेष्ठ ज्ञान ही दान ।
जो करता इस दान को, पाता केवलज्ञान ।।५।।
जो जाने अरहंत गुण, द्रव्य और पर्याय ।
सो जाने निज आत्मा, ताके मोह नशाय ।।६।।
निज परिणति से जो करे, जड चेतन पहिचान ।
बन जाता है एक दिन, समयसार भगवान ।।७।।
तीन लोक का नाथ तू, क्यो बन रहा अनाथ ।
रत्नत्रय निधि साध ले, क्यों न होय जगनाथ ।।८।।

भावों में सरलता रहती है......

भावों में सरलता रहती है, जहाँ प्रेम की सरिता बहती है ।।टेक।।
हम उस धर्म के पालक है, जहाँ सत्य अहिंसा रहती है ।।१।।
जो राग मे मूछे तनते हैं, जड भोगों में रीझ मचलते हैं, ।
वे भूलते है निज को भाई, जो पाप के साँचे ढलते है ।।२।।
उपकार उन्हें माँ जिन-वाणी, जहाँ ज्ञान-कथायें कहती हैं ।
जो पर के प्राण दुखाते हैं, वे आप सताये जाते हैं, ।।३।।
अधिकारी वे हैं शिवसुख के, जो आतम ध्यान लगाते है ।
'सौभाग्य' सफल कर नर जीवन, यह आयु ढलती रहती है ।।४।।

करलो आतम का गुणगान ....

करलो आतम का गुणगान आई आनन्द घड़ी ।
आई आनन्द घड़ी, आई मंगल घड़ी ..... ।।टेक।।
भोग रोग की खान है, भोग बुरे ही जान ।
जिन छोड़े इन भोग को, पहुँचे शिवपुर थान ।।१।।
पर निमित्त जामें नहिं सहजानन्द अपार, ।
सोई परमानन्द है, भोगे निज आधार ।।२।।
अंतरंग में ध्यान से, देखे जो अशरीर ।
शर्म जनक जन्म न धरै, पिये न जननी क्षीर ।।३।।
सर्प रूप संसार है, निर्बल रूप नर जान ।
संत बूटी संयोग से, होती अहि विष हानि ।।४।।
वीतराग सर्वज्ञ के, चरणन शीश नवाय ।
कर शुद्धातम चिन्तवन, पावो सहज स्वभाव ।।५।।
जो चहुँगति दुख से डरै, तज दे सब परभाव ।
कर शुद्धातम चिन्तवन, पावो सहज स्वभाव ।।६।।

तज दे मिथ्याज्ञान, परमातम बन जैहे ....

तज दे मिथ्याज्ञान, परमातम बन जैहे ।
कर ले निज पहिचान परमातम बन जैहे ।।टेक।।
जग झूठा, नाते हैं झूठे, मन्दिर और शिवालय झूठे ।
साँचो है आतमज्ञान, परमातम बन जैहे ।।१।।
पल पल कठती जाय जवानी, दुनियाँ सारी आनी जानी ।
झूठे सब अरमान, परमातम बन जैहे ।।२।।
अलख निरंजन ध्रुव अविनाशी, हर चेतन है शिवपुर वासी ।
पायेगा पद निर्वान, परमातम बन जैहे ।।३।।
कहै वीर की वाणी गुरुवर, आतम अमर शरीर है नश्वर ।
पावेगा केवलज्ञान परमातम बन जैहे ।।४।।
छोड़ के सब दुनियाँ के झगड़े, आतम को तू भज लै रे ।
पायेगा निज पहिचान, परमातम बन जैहे ।।५।।

नवकार मंत्र ही महामंत्र ....

नवकार मंत्र ही महामंत्र, निज पद का ज्ञान कराता है ।
नित जपो शुद्ध मन-वच तन से, मनवांछित फल का दाता है ।।टेक।।

पहिला पद श्री अरिहंताणं, यह आत्म-ज्योति जगाता है
यह समोशरण की रचना का, भव्यों को याद दिलाता है

दूजा पद श्री सिद्धाणं है, यह आत्मशक्ति बढ़ाता है
इससे मन होता है निर्मल, अनुभव का ज्ञान कराता है

तीजा पद श्री आयरियाणं, दीक्षा में भाव जगाता है
दु:ख से छुटकारा शीघ्र मिले, जिन मत का ज्ञान बढ़ाता है

चौथा पद श्री उवज्झायाणं, यह जैन धर्म चमकाता है
कर्माश्रव को ढीला करता, यह सम्यक्-ज्ञान कराता है

पंचम पद श्री सव्व साहूणं, यह जैन तत्त्व सिखलाता है
दिलवाता है यह ऊँचा पद, संकट से शीघ्र बचाता है

तुम जपो भविक-जन महामंत्र, अनुपम वैराग्य बढ़ाता है
नित श्रद्धा से मन से जपने से, मन को शान्त बनाता है

सम्पूर्ण रोग को शीघ्र हरे, जो मंत्र रुचि से ध्याता है
जो भव्य सीख नित ग्रहण करे, वो जामण-मरण मिटाता है

कुन्दकुन्द ज्ञानचक्र आ गया . . . .

कुन्दकुन्द ज्ञानचक्र आ गया, देखो देखो देखो जी आनन्द छा गया ।
कुन्दकुन्द आचार्य इसी भारत में विचरण करते थे ।।टेक।
परम दिगम्बर सन्त मुनीश्वर आतम रस में रमते थे ।
निर्ग्रन्थ पन्थ हमें भा गया, देखो देखो देखो जी आनन्द छा गया ।।१।।
ज्ञानचक्र की महिमा न्यारी, जन गण मन में आनन्द कारी ।
मोह महातम नाशनकारी, आतम रस बरसावन हारी ।।२।।
ज्ञान स्वभाव हमें भा गया, देखो देखो देखो जी आनन्द छा गया ।
जिनवाणी घर घर पहुँचावे, भेद ज्ञान की ज्योति जलावे ।।३।।
प्रवचन पूजन जिन भक्ति मे, जिन शासन की महिमा गावें ।
सिद्धों का सन्देशा लेके आ गया, देखो देखो देखो जी आनन्द छा गया ।।४।।

रंग मा रंग मा रंग मा रे ....

रंग मा रंग मा रंग मा रे, प्रभु थारा ही रंग मा रँगि गयो रे ।।टेक।।
आया मंगल दिन मंगल अवसर, भक्तिमां थारी हूँ नाच रह्यो रे ।
गावो रे गाना आतमराम का, आतम देव बुलाय रह्यो रे ।।१।।
आतम देव को अंतर में देखा, सुख सरोवर उछल रह्यो रे ।
भाव भरी हम भावना ये भायें, आप समान बनाय लियो रे ।।२।।
समयसार में कुन्दकुन्द देव, भगवान कही ने बुलाय रह्यो रे ।
आज हमारो उपयोग पलट्यो, चैतन्य-चैतन्य भास रह्यो रे ।।३।।

शिखर पे कलश चढ़ाओ मेरे साथी ....

शिखर पे कलश चढ़ाओ मेरे साथी मोक्ष महल में आओ मेरे साथी ।।टेक।।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाकर, आतम में अपनापन लाकर ।
समकित नींव भराओ मेरे साथी, शिखर पे कलश चढ़ाओ मेरे साथी ।।१।।
नय-प्रमाण दीवार बनाओ, अनेकांत का रंग चढ़ाओ ।
चारित्र छत डलवालोमेरे साथी, शिखर पे कलश चढ़ाओ मेरे साथी ।।२।।
रत्नत्रय का शिखर बनाओ, केवलज्ञान का कलश चढ़ाओ ।
मोक्ष महल में आओ मेरे साथी, शिखर पे कलश चढ़ाओ मेरे साथी ।।३।।

अपना ही रंग मोहे रंग दो ....

अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी, आतम का रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।
रंग दो, रंग दो, रंग दो प्रभुजी, अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।।टेक।।
ज्ञान में मोह की धूल लगी है, इससे मोकूँ छुड़ा दो प्रभुजी ।
छुड़ा दो, छुड़ा दो, छुड़ा दो प्रभुजी, अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।।१।।
सच्ची श्रद्धा रंग अनुपम, इसको मोपे चढ़ा दो प्रभुजी ।
चढ़ा दो चढ़ा दो चढ़ा दो प्रभुजी, अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।।२।।
रत्नत्रय रंग तुम्हरा सरीखा, इसको मोपे सजा दो प्रभुजी ।
सजा दो सजा दो सजा दो प्रभुजी, अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।।३।।
सेवक शरण गही आतम की, जन्म मरण दुःख मिटा दो प्रभुजी ।
मिटा दो मिटा दो मिटा दो प्रभुजी, अपना ही रंग मोहे रंग दो प्रभुजी ।।४।।

जय जिनशासन सुखकार रे रंग केशरियो ....

जय जिनशासन सुखकार रे रंग केशरियो,
जय भव-दधि तारणहार रे रंग केशरियो
रंग केशरियो....... २ रंग केशरियो....... २
जय चौबीसों भगवान रे रंग केशरियो
जय वीतराग-विज्ञान रे रंग केशरियो
जय शुद्धातम गुण खान रे रंग केशरियो
जय सम्यग्दर्शन-ज्ञान रे रंग केशरियो
सम्यक्चारित्र महान रे रंग केशरियो
इनसे बनते भगवान रे रंग केशरियो
जय कुन्दकुन्द मुनिराज रे रंग केशरियो
जय समयसार सरताज रे रंग केशरियो
जय नव तत्त्वों का सार रे रंग केशरियो
जय अमृतचन्द्र महान रे रंग केशरियो
जय आत्मख्याति गुणखान रे रंग केशरियो
शुद्धातम ज्योति महान रे रंग केशरियो

मोहे भावे न भैय्या थारो देश ....

मोहे भावे न भैय्या थारो देश, रहूँगा मैं तो निजघर में ।।टेक।।

मोहे न भावे महल अटारी, झूठी है ये दुनिया सारी
मोहे भावे नगन सु वेष, रहूँगा मैं तो निजघर में

हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता, यहाँ हमारा कोई नहीं दिखता
मोहे लागे यहाँ परदेश, जाऊँगा मैं तो स्व देश में

श्रद्धा ज्ञान चरित्र निवासा, अनंत गुण परिवार हमारा
मैं तो जाऊँगा सुख के धाम, रहूँगा मैं तो निजघर में

कब पाऊँगा निज में थिरता, मैं तो उसके लिये तरसता
मैं तो ध्याऊँ दिगम्बर वेष, जाऊँगा मै तो निजघर में

सब सगे अपनी ही गरज के, बाते मतलब की हैं करते
बिन गरज के पूछे नहीं बात, छोड़ूँगा मै तो इन सबको

ज्ञाता-दृष्टा आत्मा, ...

ज्ञाता-दृष्टा आत्मा, ...बन जाये परमात्मा ।।टेक।।
पुण्य-पाप तो कर्म है, ...वीतरागता धर्म है ।
वस्तु स्वभाव धर्म है, ...राग और द्वेष अधर्म है ।।१।।
सम्यक् दशा की क्या पहचान .... स्वानुभूति और भेदविज्ञान ।
महावीर का क्या संदेश .... तेरी सत्ता जग में एक ।।२।।
जिनवाणी ने क्या दिया .... भगवान आत्मा बता दिया ।
जिनवाणी का मर्म है ....वस्तु स्वभाव धर्म है ।।३।।
जिसका कर्त्ता जो ही है .... नहीं माने वह मोही है ।
जड-चेतन में भेद जहाँ .... सच्चा मुक्तिमार्ग वहाँ ।।४।।
जो हुए आज तक अरिहंत .... सबने अपनाया यही पंथ ।
जिनवाणी को ध्यायेंगे .... परमेष्ठी पद पायेंगे ।।५।।
वीर जिनेश्वर प्यारा है .... चैतन्य सरोवर न्यारा है ।
सप्त तत्त्व को जान ले .... धर्म अधर्म पहचान ले ।।६।।

देखो-देखो जो कलयुग को हाल ....

देखो देखो जो कलयुग को हाल, लगे न मन मंदिर में ।।टेक।।

आगम शास्त्र पुराण छोड़ के, उपन्यास हैं पढ़ रहे
धरम-करम को बिलकुल भूले, मन को मारग गढ़ रहे
ऐसी चल रहे चाल कुचाल, लगे न मन मंदिर में

स्याने लौ मंदिर में आकें, तू तू मैं मैं कर रहे
इक दूजे की पोलें खोले, सब सम्बन्ध बिगड़ रहे
अब तो बढ़ गयो मन को मलाल, लगे न मन मंदिर में

बहुयें बिटियें सासें नन्दें, जब मंदिर में आवें
कौनऊँ तो घर को दुख रोवे, चुगली कोऊ लगावें
इत बैठी बनावें कड़ी दाल, लगे न मन मंदिर में

नये-नये मंदिर बनवा दये, और रख दये पुजारी
धरम-करम से छुट्टी हो गयी, कौन करे रखवाली
कैसे चल है धरम जो विसाल, लगे न मन मंदिर में

जग में प्रभु पूजा सुखदाई ....

जग में प्रभु पूजा सुखदाई ! ।।टेक।।
दादुर कमल पांखुरी लेकर प्रभु पूजा को जाई ।
श्रेणिक नृप गज के पग से दबि प्राण तजे सुर जाई ।।१।।
द्विज पुत्री ने गिर कैलासे पूजा आन रचाई ।
लिंग छेद देव पद लीनो अन्त मोक्ष पद पाई ।।२।।
समोसरण विपुलाचल ऊपर आये त्रिभुवन राई ।
श्रेणिक वसु विधि पूजा कीनी तीर्थंकर गोत्र बंधाई ।।३।।
'द्यानत' नरभव सुफल जगत में जिन पूजा रुचि आई ।
देव लोक ताके घर आंगन अनुक्रम शिवपुर जाई ।।४।।

ज्ञानचक्र का स्वागत करते . . . .

ज्ञानचक्र का स्वागत करते, कुन्दकुन्द को वन्दन करते ।टेक।।
हृदय हर्षित होता है, आनन्द उल्लसित होता है
हो.... हो.... हो ... आनन्द उल्लसित होता है

कुन्दकुन्द का ज्ञानचक्र यह शुभ संदेश सुनाता है
जो अपने को पहचाने वह स्वयंसिद्ध बन जाता है

कुन्दकुन्द के परमागम में दिव्यध्वनि का सार कहा
प्रवचन समय नियम पंचास्ति पाहुड में मुक्तिमार्ग कहा

दो हजार वर्षों से अद्भुत अनेकान्त ध्वज लहराता
दर्शन ज्ञान चरित्र मुक्तिपथ सारे जग को बतलाता

लहर लहर लहराये ....

लहर लहर लहराये, केशरिया झण्डा जिनमत का
ये सबके मन हरषाये, केशरिया झण्डा जिनमत का।।टेक।।

फर फर फर फर करता झण्डा, गगन शिखर पर डोले
स्वस्तिक का यह चिन्ह अनूपम, भेद हृदय के खोले
यह ज्ञानकी ज्योति जगाये केशरिया झण्डा जिनमत का

इसकी शीतल छाया में सब पड़े रतन जिनवाणी,
सत्य अहिंसा अनेकान्तमय, झरती निर्मल वाणी
ये सच्चा मार्ग बताये, केशरिया झण्डा जिनमत का

इसकी शीतल छाया में सब पड़े रतन जिनवाणी
सत्य अहिंसा प्रेम युक्त सब बनें तत्त्व श्रद्धानी
यह सत् पथ पर पहुँचाये, केशरिया झण्डा जिनमत का

मन्दिरजी में चलो मित्रजन . . . .

मन्दिरजी में चलो मित्रजन, पूजन-भजन रचावेंगे ।
पूजन-भजन रचावेंगे, जिनजी के गुण सब गावेंगे ।।टेक।।
जिनदर्शन तें पाप जावें, अनुभव आवे आतम को ।
भेद-विज्ञान उदै हो घट में, चेतन पावे शिवपुर को ।।१।।
शान्ति छवि के दर्शन से हो, शान्ति अपने भावों में ।
दुखिया का दुःख दूर होवे, सुख पावे वह निज मन में ।।२।।
कर्म जीतना जो जन चाहें, सो ध्यावे जिन मुद्रा को ।
कायोत्सर्ग लगा के निश्चल, सुमरे पंच परमपद को ।।३।।
जिनदर्शन से 'बालक' परसन, पावें शिवतियरानी को ।
ज्ञानावरणी दूर होवे, जब गावें जिनवाणी को ।।४।।

हठ तजो रे बेटा, हठ तजो . . . .

पिता – हठ तजो रे बेटा, हठ तजो, मत जाओ वनवास ।
पुत्र – मोह तजो रे बापू मोह तजो, जाने दो वनवास ।।टेक।।
पिता – वन मां कंटक वन मां कंकर, वन मां वाघ विकराल ।
पुत्र – वाघ सिंह तो परम मित्र सम, मैं धरूँ आतम ध्यान ।।१।।
पिता – सुख वैभव की रेलम पेल में, तू ही एक आधार ।
पुत्र – यह संसार दवानल सम है, इसको तृण वत जान ।।२।।
पिता – लाड़ लडाऊँ प्रेम से तुझको, खाओ मिष्ट पकवान ।
पुत्र – क्या करना है राख के ढेर ये, खाये अनन्ती बार ।।३।।
पिता – ऊँचा बंगला महल मनोहर, करो मोती श्रृंगार ।
पुत्र – महल मसान ये हीरा मोती, ये पुदगल के दास ।।४।।

समझो-समझो रे धर्म का सार ....

समझो-समझो रे धर्म का सार, सुखीं तुम होवोगे ।।टेक।।
धरम ही मंगल धर्म ही उत्तम, धर्म शरण सुखकार रे ।
धरम करम बन्धन को टाले, ले जाय मुक्ति मँझार रे ।।१।।
धरम तो वस्तुस्वभाव है,पर्यय तीन प्रकार रे ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान अरु, चारित्र सुख करतार रे ।।२।।
सबसे पहले तत्वज्ञान से, निज की करो संभार रे ।
निज के आश्रय से ही कर दो, रागादिक परिहार रे ।।३।।
वीतराग सर्वज्ञदेव अरु, जिनवाणी दुखहार रे ।
ज्ञान, ध्यान, तप लीन जो, निर्ग्रन्थ गुरु आधार रे ।।४।।
जीव, अजीव, आस्रव, संवर, अरु बंध निर्जरा सार रे ।
मोक्ष प्रयोजनभूत तत्व है, दृढ़ श्रद्धा उर धार रे ।।५।।
पाप दुखमय सब कहें, पुण्य कहें सुखकार रे ।
पुण्यभाव भी है दुखमय, श्री गुरु कहें पुकार रे ।।६।।
पाप छोडकर पुण्य करो, पर हेय बुद्धि ही धार रे ।
पुण्य-पाप से भिन्न आत्मा, ही शिवपद दातार रे ।।७।।

गुण अनन्त का अचल अनुपम ....

गुण अनन्त का अचल अनुपम ध्रुव का हुआ प्रचार रे
ये शाला उपकार रे ....ये शाला उपकार रे ।।टेक।।

ऐसा है उपकार परस्पर, छहों द्रव्य की जातियाँ
मिली नहीं इक हुई नहीं, स्वाधीन तत्त्व की बातियाँ
वीतराग की वाणी का यह, अजर अमर अधिकार रे

हमको इस शाला के द्वारा, पाखण्डों को तोडना
निज मन्दिर के सुदृढ़ किले को, संवर से है जोड़ना
कब तक घूमें चौरासी में, अब तो करो विचार रे

हमको इस शाला के द्वारा, निज शाला को पाना है
मैं पर का कुछ करता हरता, भ्रम को यही भुलाना है
टंकोत्कीर्ण शुद्ध चिन्दानन्द, वैभव की भरमार रे

१४. होली

होली खेलें मुनिराज ....

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में रे अकेले वन में।
मधुवन में मधुवन में आज मची रे होली मधुवन में, ।।टेक।।

चैतन्य गुफा में मुनिवर बसते, अनन्त गुणों में केली करते
एक ही ध्यान रमायी वन में, मधुवन में....

ध्रुवधाम ध्येयकी धूनी लगाई, ध्यानकी धधकती अग्नि जलाई
विभाव का ईंधन जलावें वन में, मधुवन में....

आत्मीक जीवन ऐसा बीते, सिद्ध प्रभु सम चलते फिरते
शुद्धि की वृद्धि बड़ाई वन में, मधुवन में....

अक्षय घट भरपूर हमारा, अन्दर बहती अमृतधारा
पतली धार न भाई मन में, मधुवन में....

हमें तो पूर्ण दशा ही चहिये, सादि अनंत का आनंद लहिये
निर्मल भावना भाई वन में, मधुवन में....

पिता झलक जो पुत्र में दिखती जिनेन्द्र झलक मुनिराज चमकती
श्रेणी मांडी पलक छिन में, मधुवन में....

अन्तर साधना मुनि की भाई ! बाहर से न दिखती भाई
साधना निरन्तर भायी वन में, मधुवन में....

नेमीनाथ गिरनार में देखो, शत्रुंजय पर पाण्डव देखो
केवलज्ञान ले आयो क्षिण में, मधुवन में

बार-बार वन्दन हम करते, शीश चरण में उनके धरते
भव से पार लगायें वन में, मधुवन में....

ज्ञानी ऐसी होली मचाई.....

ज्ञानी ऐसी होली मचाई ।।टेक।।

राग कियो विपरीत विपन घर, कुमति कुसौति सुहाई ।
धार दिगम्बर कीन्ह सु संवर, निज-पर भेद लखाई ।।
घात विषयिन की बचाई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई ।।१।।
कुमति सखा भजि ध्यानभेद सम, तन में तान उड़ाई ।
कुम्भक ताल मृदंग सौं पूरक रेचक बीन बजाई ।।
लगन अनुभव सों लगाई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई ।।२।।
कर्म बलीता रूपनाम अरि, वेद सुइन्द्रि गनाई ।
दे तप अग्नि भस्म करि तिनको, धूल अघाति उड़ाई ।।
भव्य शिवपन्थ बताई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई ।।३।।
ज्ञान को फाग भागवश आवै, लाख करौ चतुराई ।
सो गुरु दीनदयाल कृपाकरि, 'दौलत' तोहि बताई ।।
नहीं चित्त से बिसराई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई ।।४।।

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै.....

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै ।।टेक।।

प्रथम ही पाप हिंसा जा माही, दूजै झूठ जपावै ।।१।।
तीजे चोर कलाबिन जामें, नैंक न रस उपजावै ।
चौथौं परनारी सौं परचै, -सील वरत मल लावै ।।२।।
त्रसना पाप पाचवा जामें, छिन छिन अधिक बढावै ।
सब विधि अशुभ रूप जो कारिज, करत ही चित चपलावै ।।३।।
अक्षर ब्रह्म खेल अति नीको, खेलत हो हुलसावै ।
'जगतराम' सोई खेलिये, जो जिन-धरम बढावै ।।४।।

रंग भयो जिन द्वार.....

रंग भयो जिन द्वार, चलो सखी खेलन होरी ।।टेक।।
समत सखी सब मिलकर आओ, कुमति ने देवो र्निकार ।
केशर चन्दन और अगर्जा, समताभाव धलाय चलो ।।१।।

दया मिठाई, तप बहु मेवा, सित ताम्बूल चबाय।
आठ करम की होरी रची है, ध्यान अग्नि सु जलाय।।२।।
गुरु के वचन मृदंग बजत है, ज्ञान क्षमा डफ ताल।
कहत 'बनारसी' या होरी खेली, मुक्तिपुरी को गय।।३।।

निजपुर में आज मची रे होरी......

निजपुर मे आज मची रे होरी।।टेक।।
उमँगि चिदानन्दजी इत आये, इत आई सुमती गोरी।।१।।
लोकलाज कुलकानि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी।
समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिचुकी छोरी।।२।।
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसौं वरस्यो री।
देखन आये 'बुधजन' भीगे, निरख्यौ ख्याल अनोखो री।।३।।

अरे मन! कैसी होली मचाई ....

अरे मन! कैसी होली मचाई, खेलत चेतन राई ।।टेक।।
सम्यग्दर्शन रंग अनुपम, मन पिचकारि भराई ।
डालत स्वानुभूति तिय ऊपर, अद्भुत ठाठ बनाई ।।१।।
ध्यान में हो इकताई, अरे मन! कैसी होली मचाई ।
सम्यग्ज्ञान गुलाल उड़ाकर, धूम मची सरसाई ।।२।।
सम्यक्चारित्र धाम अपूरब, रंग नदी बन जाई ।
करत कलोल अघाई, अरे मन! कैसी होली मचाई ।।३।।
निजानंद अमृत ठंडाई, पीय पीय हुलसाई ।
मस्त होय निज आप रमण कर, पर की चाह बुझाई ।।४।।
द्वैत अद्वैत हो जाई, अरे मन! कैसी होली मचाई ।
भव-समुद्र से पार करन को, यह होली गुणदाई ।।५।।
तीरथ कर मुनिजन सब खेलें, निज आतम लवलाई ।
सुखोदधि मगन कराई, अरे मन! कैसी होली मचाई ।।६।।

चेतन खेलै होरी······

चेतन खेलै होरी।।टेक।।

सत्ता भूमि छिमा वसन्त मे, समता प्रान प्रिया संग गोरी।।१।।
मन को कलश प्रेम को पानी, तामें करुना केसर घोरी।
ज्ञान-ध्यान पिचकारी भरि-भरि, आपमे छारै होरा होरी।।२।।
गुरु के वचन मृदग बजत हैं, नय दोनों डफ ताल टकोरी।
संजम अतर विमल व्रत चोवा, भाव गुलाल भरै भर झोरी।।३।।
धरम मिठाई तप बहु मेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी।
'द्यानत' सुमति कहै सखियन सो, चिरजीवो यह जुग-जुग जोरी।।४।।

जे सहज होरी के खिलारी······

जे सहज होरी के खिलारी, तिन जीवन की बलिहारी।।टेक।।
शान्तभाव कुकुम रस चन्दन, भर समता पिचकारी।
उडत गुलाल निर्जरा सवर, अबर पहरै भारी।।१।।
सम्यक्दर्शनादि सग लेकै, परम सखा सुखकारी।
भीज रहे निज ध्यान रंग मे, सुमति सखी प्रियनारी।।२।।
कर स्नान ज्ञान जल मे पुनि, विमल भये शिवचारी।
'भागचन्द' तिन प्रति नित वदन भावसमेत हमारी।।३।।

सहज अबाध समाध धाम तहाँ······

सहज अबाध समाध धाम तहाँ, चेतन सुमति खेलैं होरी।।टेक।।
निजगुन चंदन मिश्रित सुरभित, निर्मल कुकुम रस घोरी।
समता पिचकारी अति प्यारी, भर जु चलावत चहुँ ओरी।।१।।
शुभ सवर सुअबीर अडंबर, लावत भर भर कर जोरी।
उडत गुलाल निर्जरा निर्भर, दुखदायक भव थिति टोरी।।२।।
परमानंद मृदंगादिक धुनि, विमल विरागभाव घोरी।
'भागचन्द' दृग-ज्ञान-चरनमय, परिनति अनुभव रंग बोरी।।३।।

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि.....

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि ।।टेक।।
धर्म थान जहँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार ।।१।।
ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, वानी वरषा धार ।
झेलत प्रेम प्रीति सौं जेते, धोवत करम विकार ।।२।।
तत्वन की चरचा शुभ चोबो, चरचौ बारंबार ।
राग गुलाल अबीर त्याग, भरि रंग रंगो सुविचार ।।३।।
अनहद नाद अलापो जामैं, सोहे सुर झंकार ।
रींझ मगनता दान त्याग कर 'धर्मपाल' सुनि यार ।।४।।

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी.....

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी, अलख अमूरति की जोरी ।।टेक।।
इतमैं आतम राम रंगीले, उतमैं सुबुद्धि किसोरी ।
या कै ज्ञान सखा संग सुन्दर, बाकै संग समता गोरी ।।१।।
सुचि मन सलिल दया रस केसरि, उदै कलस में घोरी ।
सुधी समझि सरल पिचकारि, सखिय प्यारी भरि भरि छोरी ।।२।।
सत-गुरु सीख तान धर पद की, गावत होरा होरी ।
पूरव बंध अबीर उडावत, दान गुलाल भर झोरी ।।३।।
'भूधर' आजि बड़े भागिन, सुमति सुहागिन मोरी ।
सो ही नारि सुलछिनी जग में, जासौ पति नै रति जोरी ।।४।।

चेतन ! खेल सुमति संग होरी.....

चेतन ! खेल सुमति संग होरी ।।टेक।।
तोरि आन की प्रीति सयाने, भली बनी या जौरी ।।१।।
डगर डगर डोले है यौं ही, आव आपनी पौरी ।
निज रस फगुवा क्यौं नहि बांटो, नातर ख्वारी तोरी ।।२।।
छार कषाय त्याग या गहि लै, समकित केशर घोरी ।
मिथ्या पाथर डारि धारि लै, निज गुलाल की झोरी ।।३।।
खोटे भेष धरैं डोलत है, दुख पावै बुधि भोरी ।
'बुधजन' अपना भेष सुधारो, ज्यौं विलसो शिवगोरी ।।४।।

अब घर आये चेतनराय.....

अब घर आये चेतनराय, सजनी खेलौंगी मं होरी ।।टेक।।
आरस सोच कानि कुल हरिकै, धरि धीरज बरजोरी ।।१।।
बुरी कुमति की बात न बूझै, चितवत है मो ओरी।
वा गुरुजन की बलि-बलि जाऊं, दूरि करी मति भोरी ।।२।।
निज सुभाव जल हौज भराऊं, घोरूं निजरंग रोरी।
निज ल्यौं ल्याय शुद्ध पिचकारी, छिरकन निज मति दोरी ।।३।।
गाय रिझाय आप वश करिकै, जावन द्यौं नहिं पोरी।
'बुधजन' रचि मचि रहू निरंतर, शक्ति अपूरब मोरी ।।४।।

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद.....

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद ।।टेक।।
शिशिर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि वसंत ।।१।।
पीय सग खेलनि कौं, हम सइये तरसी काल अनन्त
भाग जग्यो अब फाग रचानौ, आयौ विरह को अत ।।२।।
सरधा गागरि में रुचि रूपी, केसर घोरि तुरन्त
आनन्द नीर उमग पिचकारी, छोडूगी नीकी भंत ।।३।।
आज वियोग कुमति सौतनि कौ, मेरे हरष अनंत
'भूधर' धनि एही दिन दुर्लभ, सुमति राखी विहसत ।।४।।

खेलत फाग महामुनि वन में.....

खेलत फाग महामुनि वन मे, स्वातम रग सदा सुखदाई ।।टेक।।
अष्टकर्म की रचत होलिका, ध्यान धनंजय ताहि जराई।
राग-द्वेष-मोहादिक कटक, भस्म किये चिर शांति उपाई ।।१।।
मार्दव आर्जव सत्यादिक मिल, दया क्षमा संग होरी मचाई।
मन मृदंग तम्बूरा तन का, डुलन डोरि कसि तग कराई ।।२।।
सुरत सारगी की धुनि गाजे, मधुर वचन बाजत शहनाई।
ज्ञान गुलाल भाल पर सोहै, परम अहिंसा अबीर उडाई ।।३।।
क्षमा रग छिडकत भविजन पर, प्रेम रग पिचकारी चलाई।
मोक्षमहल के द्वार फाग लखि, सेवक 'कुज' रहे हर्षाई ।।४।।

१५. विविध

त्रस में आया नरभव पाया.....

त्रस में आया नरभव पाया, थी ये पुण्य कमाई, तूने यूंही गँवाई।
स्व-पर का कुछ भेद न जाना, कैसी मूढ़ता छाई, तूने यूंही गँवाई ....
चिंतामणि-सा नरभव पाया, जो कुछ लाया वह भी गँवाया।
पुण्य उदय को मानी कमायी, क्या मिथ्या मति छायी ।।

मात गरभ में जो दुःख पाये, शब्दों में बरने नहीं जाये।
तेरे दुख को देख के भैया, श्रीगुरू करूणा आयी ।।

बालकपन में ज्ञान न पाया, खेलकूद में समय गँवाया ।
यौवन मे तरुणी मन भायीं, झूठी शान बढ़ाई ।।

मोटर बंगले साथ न देंगे, साथी कुटुम्बी क्या कर लेंगें।
नाहक इनमें ममता बढ़ाई, कर ली नरक की साई ।।

विश्वजयी सम्राट सिकन्दर, धन वैभव का किया आडम्बर ।
स्त्री-पुत्रादि काम न आये, दुखमय हुई बिदाई ।।

कोई बचाओ मुझको भैया, चाहे ले लो सारे रुपैया ।
डाक्टर वैद्य भी काम न आये, सगे सम्बन्धी भाई ।।

'मुझको बचाओ' – वाणी बोली, लेकिन टूटीस्वाँस की डोरी।
बिना बुलाये आये बराती, हो गई उसकी बिदायी ।।
नारी कहे काहे मुख मोड़ा, भाई कहे मेरा बिछुड़ा जोड़ा ।
रोने लगे सब छोरा छोरी, माता ने सुध बिसराई ।।

ऐसा मरना अनन्त किया है, माता की आँखों से अश्रु बहा है ।
समुद्र भरा पर अन्त न आया, तेरे दुख का भाई ।।

जन्मे अकेला मरे अकेला, दो दिन का है रैन-बसेरा ।
पर से सुख की आस लगाई, कैसी मूढ़ता छाई ।।

नाभि में तो कस्तूरी बसे है, बाहर खोजे दौड़ा फिरे है ।
शिकारी ने क-स्तूरी पाई, मृग के हाथ न आयी ।।
मृगतृष्णा में चहुँगति भटका, सुख का पाया लेश न कटका ।
कुन्द कुन्द का मान लो कहना, निज में खोजना भाई ।।

बिजली चमक में पो लो मोती, आतमज्ञान की कर लो ज्योति ।
बिखर जायेगा पंछी मेला, कर ले धर्म कमायी ।।
आया बुढ़ापा गई तरुणाई, अब भी सम्भल जा चेत रे भाई ।
कौन है अपना कौन पराया, सोच समझ ले भाई ।।
तेरा मरण भी आयेगा भाई, सिर पर मौत सदा मँडराई ।
ज्ञानानन्द के आश्रित होकर, कर ले सबसे जुदाई ।।
देह मंदिर के देव को जानो, पुण्य-पाप में दुख ही मानो ।
ज्ञायक ध्रुव का आश्रय लेकर, कर लो दु:ख की बिदाई ।।
सात तत्त्व चित आतम तेरी, श्रद्धा ज्ञान से मिटेगी फेरी ।
एक शरण निज आतम भाई, रहे सदा सुखदायी ।।
त्रस मे आया नरभव पाया, थी ये पुण्य कमायी।
स्व-पर का कुछ भेद न जाना, कैसी मूढ़ता छायी ....

जगत को कैसा दिखता हूँ......

जगत को कैसा दिखता हूँ, सदा देखा यही है ।
स्वय मै कैसा दिखता हूँ, कभी देखा नहीं है ... ।।
जगत के रगडो में ऐसा रँगा, रंग ही गया हूँ ।
स्वय को ऐसा भूला हूँ, कि पर–सा ही हुआ हूँ ।।
मिली बहुभाग्य से जिनधुन, सदा जप ही रहा हूँ ।
रँगा हूँ आतम मे अब तो, कि अब निजमय हुआ हूँ ।।

होते को जानूँगा......

होते को जानूँगा, कर्ता क्यो मानूँगा ।
ज्ञाता था, ज्ञाता हूँ, ज्ञाता ही मानूँगा ... ।।
ज्ञाता था, ज्ञाता हूँ, ज्ञाता श्रद्धानूँगा ।
ज्ञाता था, ज्ञाता हूँ, ज्ञाता ही जानूँगा ।।
ज्ञाता ही रहना है, ज्ञायक ही ध्याऊँगा ।
ज्ञायक को ध्या करके, सिद्धों–सा जानूँगा ।।
जो झूठा जानूँगा संकट ही ठानूँगा ।
जो सच्चा जानूँगा, सुख को ही ठानूँगा ... ।।

कर्म कलंक में फँसा हुआ हूँ.....

कर्म कलंक में फँसा हुआ हूँ, मैं प्रभु काल अनादि से ।
आतमसुख निज मांहि प्रगट हो, हे प्रभु! मुझको आज से ....

कल-कल करते कालबली ने, किया मरण संसार से।
लख चौरासी भवसागर में, तुमही एक जहाज से ।।

लख चौरासी भ्रमते-भ्रमते, दर्शन पाये भाग्य से ।
नहीं लखा प्रभुरूप कभी निज, लखूँ निजातम आज से ।।

दिव्यदेशना पायी प्रभुवर, मैंने आज अनादि से ।
नहीं रुलूँ प्रभु भवसागर मे, हे प्रभु! इच्छा आज से ।।

रत्नत्रय की नाँव बैठ कर, तरूँ भवोदधि भार से ।
कर्म-कलंक नशें प्रभु मेरे, स्व-पर भेद-विज्ञान से ।।

सिद्धातम पद मिले आप-सा, हे प्रभु! इच्छा आपसे....

कहूँ कहाँ तक तेरी महिमा.....

कहूँ कहाँ तक तेरी महिमा, हे! सिद्धों के तीर्थस्थान!!
सिद्धों की निर्वाण भूमि है, सम्मेदाचल तीर्थमहान!! ....

शाश्वत तीर्थराज मैं वन्दूँ, तीर्थंकर के पूज्य महान ।
'नमः सिद्ध' के उच्चारण से, नग्न रूप धर पाया ज्ञान ।।

क्षपक श्रेणी से आरोहण हो, पाया आतम सिद्ध समान ।
सम श्रेणी में जाय विराजे, नमूँ सदा सम्मेद महान ।।

हुए, हो रहे, होवेंगे जो, तीर्थंकर से देव महान ।
वे भी तेरे थानक से ही, हो जाते हैं सिद्ध महान ।।

माने तूँ चाहे ना माने......

माने तूँ चाहे ना माने, फिर भी है आत्मा ।
जाने तूँ चाहे ना जाने, ज्ञायक परमात्मा ...।।

चेतन क्यों चौरासी भटके, दुःख पावे आत्मा ।
बोले जिनवर अब तो चेतो, चेतन परमात्मा ।।

भेदज्ञान बिन जीव सदा, दुःखमय बहिरात्मा ।
जब भेदज्ञान उर में प्रगटे, जाने तब आत्मा ।।

जाने जो निज का रूप सत्य, वे अन्तरात्मा ।
राग–द्वेष को त्याग सदा, सेवो शुद्धात्मा ।।

निजरूप भजो, जिनरूप सजो, तूं है शुद्धात्मा ।
ध्यावें शुद्धातम रूप सदा, वे हों परमात्मा ... ।।

क्रमनियमित परिणाम है होता......

क्रमनियमित परिणाम है होता, कहे जिनागम रे प्राणी ।
पर में तूं कुछ कर नहि सकता, महावीर की है वाणी ... ।।

मेरे करने से होता है, मैं घर–बार चलाता हूँ ।
मैं ही सबका कर्ता हूँ, बच्चों का बोझ उठाता हूँ ।
जन्म-मरण संयोग सभी है, निश्चित क्रम में रे प्राणी ।।

महाभाग्य से जिनवाणी, जो मिली जगत की कल्याणी ।
जिनवाणी का मर्म बतावें, जिनवाणी के श्रद्धानी ।
तूं तो ज्ञायक रूप सदा है, क्यों नहि चेते रे प्राणी ।।

अपना भव भी नही कभी कोई, बदल सका कहे जिनवाणी ।
केवलज्ञान विषै है भासे, तीन लोक के सब प्राणी ।
जगत क्रम से हो विराम, अब निजानन्द लो हे प्राणी ।।

मै हूँ राम की सन्तान......

मैं हुँ राम की सन्तान, आतम राम की सन्तान... ।।
पर्ययबुद्धि लही मोही हो, भटका हूँ बिन ज्ञान ।
इस शरीर को अपना समझा, कर इसका अभिमान? ।।

काल अनन्त रुल्यो दुःख पायो, लख चौरासी मशान ।
इक दिन बना पिण्ड पुद्गल का ढेर मशान ठिकान ।।

चेतन चेत कहे सद्गुरु तो, कर ले सम्यग्ज्ञान ।
ज्ञान-ज्ञान में तिष्ठ लेय जो, नशै जन्म दुःख हान ।।

मेरा आज तलक प्रभु करुणापति.......

मेरा आज तलक प्रभु करुणापति, थारे चरणों में जियरा गया ही नहीं।
मैं तो मोह की नींद में सोता रहा, मुझे तत्वों का दरस भया ही नहीं।।
मैंने आतम बुद्धि बिसार दई, और ज्ञान की ज्योति बिगाड लई।
मुझे कर्मोंने ज्योंत्यों फंसा लिया, थारे चरणों में आन दिया ही नहीं।।
प्रभु नरकों में दुःख मैंने सहे, नहीं जायें प्रभु अब मुझसे कहे।
मुझे छेदन भेदन सहना पडा, और खाने को अन्न मिला ही नहीं।।
में तो पशुओं में जाकर पैदा हुआ, मेरा और दुःख वहाँ ज्यादा हुआ।
किसी माँस के भक्षी ने आन हता, मुझ दीन को जाने दिया ही नहीं।।
मैं तो स्वर्गों में जाकर देव हुआ, मेरे दुःख का वहाँ भी न छेद हुआ।
मैं तो आयु को यूं ही बिताता रहा, मैंने संयम भार लिया ही नहीं।।
प्रभु उत्तम नरभव मैंने लहा, और निशदिन विषयों मे लिप्त रहा।
माता पिता प्रियजन ने मुझे, चैन तो लेने दिया ही नही।।
मैंने नाहक जीवो का घात किया और परधन छलकर खोश लिया।
मेरी औरों की नारी पे चाह रही, मैंने सत तो भाषण दिया ही नही ।।
मेरी औरों की नारी पे चाह रही, मैंने सत तो भाषण दिया ही नही ।
मैं तो मोह की नींद में सोता रहा, मैंने आतम दरस किया ही नहीं ।।
मैं तो क्रोध की ज्वाला में भस्म रहा, मैंने शान्तिसुधारस पिया ही नहीं ।
राग-बिना सब जग जन तारे, द्वेष बिना सब करम विदारे ।।

करौं आरती वर्द्धमान की . . . .

करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की
राग-बिना सबजगजनतारे, द्वेष बिना सब करम विदारे
शील-धुरंधर शिव तियभोगी, मन वच कायन कहिये योगी
रतनत्रय मिधि परिग्रह हारी, ज्ञानसुधा-भोजन व्रत धारी
लोक अलोक व्याप निजमाही, सुखमय इन्द्रिय सुख दुख नाहीं
पंच कल्याणक पूज्य विरागी, विमल दिगबंर अंबर-त्यागी
गुनमनि-भूषन भूषित स्वामी जगत-उदास जगंतर स्वामी
कहै कहाँ लौं तुम सब जानौ 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं

सुन मन! भजो आतमदेव ....

सुन मन! भजो आतमदेव
काल अनंत फिरो अनादी, भजो नहिं निज देव ।।टेक।।
आत्म ज्ञायक ज्योति जगमग, है अनाद्य अनंत ।
ज्ञान दर्श चतुष्ट धारी, सिद्ध शुद्ध महंत ।।१।।
अचल अविनाशी अनाकुल, जनम मरन न देह ।
अक्षय पद शाश्वत विराजै, चेतना है देह ।।२।।
निर विकल्प मई अनूपम, रागादिक नहिं लेश ।
बंध मोक्ष स्वभाव नाहीं, शुद्ध आत्म प्रदेश ।।३।।
वर्ण आदि योग त्रय अर, मार्गणा नहिं ज्ञान ।
गुणस्थान हू नाहीं जामें, लिंग नाहीं मान ।।४।।
ज्ञान दर्शन चरण तीनों, छेड़ यह व्यवहार ।
निरभेद किरिया तीन निहचे, द्रव्य मांहि निहार ।।५।।
ज्ञेय ज्ञायक एक आपहि, आप जानो आप ।
खेल जग को मिट गयो तब, कहा पुण्य रु पाप ।।६।।
नंदब्रम्ह विचार देखो, स्याद्वाद प्रमान ।
गुरु किरपा छिन में प्रकाशे, शुद्ध अनुभव ज्ञान ।।७।।

आतमराम मैं आतमराम ....

आतमराम मैं आतमराम, नित्य निरजन आतमराम ।
कुछ करना नहिं मेरा काम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम ।।टेक।।
स्वयं सिद्ध ज्ञायक अभिराम, परम ज्योतिमय आतमराम ।
ध्रुव परमातम आतमराम, परमप्रभु मैं आतमराम ।।१।।
सहजानन्दमय आतमराम, परमानन्दमय आतमराम ।
बिन्मुरति मैं आतमराम, चिन्मूरति मै आतमराम ।।२।।
भव से न्यारा आतमराम, अक्षय सुखमय आतमराम ।
समयसार मैं आतमराम, शिवस्वरूप मैं आतमराम ।।३।।
चिद्स्वरूप मै आतमराम, ध्रुव अनुपम मैं आतमराम ।
ज्ञानमात्र मैं आतमराम, ज्ञानघन मैं आतमराम ।।४।।

अब सत्य धर्म को है जानो .....

अब सत्य धर्म को है जानो, सच्चाई क्या है पहचानो... ।।
जीवों की हिंसा बन्द करो, अपनी ही हिंसा बन्द करो ।
जीवों की हिंसा ना ठानो, अपने समान उनको जानो ।।
धर्म में हिंसा बन्द करो, मन्दिर में हिंसा बन्द करो ।
पूजन में हिंसा ना ठानो, दया भाव मन श्रद्धानो ।।
अपने समान सब को जानो, अपने ही जैसा है मानो ।
जो निगोद में है जानो, जो स्वर्ग–नरक में है जानो ।।
जो स्वयं आज हो वो जानो, जो इसमें होगा वो जानो ।
क्यों भ्रमें आज तक है जानों, अब कैसे छूटेंगे जानो ।।
जिन वचन स्वयं तुम परमानो, निश्चय स्वरूप ही निज जानो ।
फिर वैसा ही है श्रद्धानो, फिर वैसा ही जीवो स्यानों ।।

सत्य अहिंसा के मन्दिर में.....

सत्य अहिंसा के मन्दिर में, वीर विराजे हैं।
महाभाग्य मेरा हे प्रभु! मम, उर में साजे हैं ....
मिथ्या हृदय रहा यह मेरा, पाप समाये हैं।
तुम दर्शन से आज हमारे, पाप नशाये हैं।।
जगत पाप को देख हृदय मेरा भर आया है।
जगत मात्र को सुखी सदा यह, उर में आया है।।
पुण्य उदय का भोग नहीं, अब मम उर भाये है।
दर्शन कर मम मोह नशा, आतम सुख पाये है।।
आतम सुख अब तुम सम हो, मेरे मन भाया है।
दर्शन फल बस यही चाहिये, तुम पद भाया है।।

पाप-पुण्य की धूप-छाँव में......

पाप-पुण्य की धूप-छाँव में, हुआ बहुत हैरान रे ।
शुद्धातम को क्यों नहि ध्याता, स्वयंसिद्ध सुखखान रे...

चिदानंद चैतन्य बावरे, तू ही सुख की खान रे ।
आत्मतत्त्व ही है सुखदायी, परम ज्योति भगवान रे ।।

पंच परावर्तन में भटका, हुआ बहुत हैरान रे ।
राग-द्वेष की आग जलाती, चौरासी के माँहि रे ।।

सद् जिनधर्म मिला है चेतन, महाभाग्य ये जान रे ।
अब तो इसकी शरण ना छूटे, कर ले भेद—विज्ञान रे ।।

भेद—ज्ञान से सिद्ध दशा, जो प्रगटे निज के माँहि रे ।
आत्म आत्म में तिष्ठ जाय तो प्रगट होय सुखखान रे... ।।

कब निजरूप सजा पाऊँगा.....

कब निज रूप सजा पाऊँगा, कब निजगुण चन्दन महकेगा ।
कब जागेगा भेदज्ञान, किस दिन समकित सावन बरसेगा ....

पर घर में मैं ऐसा भूला, अपने घर की राह भुलाई ।
कँकरीली राहों मे कंटक, पथरीली मे ठोकर खाई ।

देव-शास्त्र-गुरु की शरणा बिन और कही ना चैन मिलेगा ।।
बन नादान शिशु-सम जैसा, पकड रहा अपनी परछाई ।
मिथ्या मत मे ऐसा उलझा, निज-पर की कुछ सूझ ना पाई ।
कब तक यों अज्ञान-दशा में भटक-भटक कर दम निकलेगा ।।

छहों द्रव्य से भरे विश्व में, मैंने बस ससार बढ़ाया ।
पुण्य-पाप की परिभाषा में, ऐसा उलझा निकल न पाया ।
वीतराग-विज्ञान-ज्योति से, कब मेरा आँगन दमकेगा ।।

अमल-अखण्ड-अतुल-अविनाशी निज-पर का कुछ भेद न पाया ।
गृह-अगृह मिथ्यात्व ज्ञान नें, तत्त्वज्ञान से विमुख बनाया ।
कब निर्ग्रन्थ दिगम्बर बनकर, मेरा मन वन-वन विचरेगा ।।

मैं हूँ कौन? कहाँ से आया? कहा गति, कित मंजिल मेरी?
चिर स्वतंत्र निष्काम सिद्ध हूँ, फिर क्यों अशरण, क्यो भवफेरी ।
निज स्वरूप लवलीन होय फिर, कब मेरा आतम चमकेगा ।।

सहजानंद अनंत चतुष्टय, धारी हूँ, नहीं शक्ति हेरी ।
शुद्ध-बुद्ध निर्द्वन्द्व सिद्ध की, नहीं बजा पाया मैं भेरी ।
सिद्धशिला पर कब ये आतम, ज्ञान शरीरी बन चमकेगा ....

नाथ तुम्हारी पूजा में सब स्वाहा करने......

नाथ तुम्हारी पूजा में सब स्वाहा करने आया।
तुम जैसा बनने के कारण, शरण तुम्हारी आया।।टेक।।
पंच इन्द्रिय का लक्ष्य करूँ, मैं इस अग्नि में स्वाहा।
इन्द्र नरेन्द्रों के वैभव की, चाह करूँ मैं स्वाहा।।
तेरी साक्षी से अनुपम, मैं यज्ञ रचाने आया।।१।।
जग की मान प्रतिष्ठा को भी, करना मुझको स्वाहा।
नहीं मूल्य इस मन्द भाव का, व्रत तप आदि स्वाहा।।
वीतराग के पथ पर चलने, प्रण लेकर मैं आया।।२।।
अरे जगत के अपशब्दों को, करना मुझको स्वाहा।
परलक्षी सब ही वृत्ति को, करना मुझको स्वाहा।।
अक्षय निरकुंश पद पाने, और पुण्य लुटाने आया।।३।।
तुम तो पूज्य पुजारी मैं, यह भेद करूँगा स्वाहा।
बस अभेद मैं तन्मय होना, 'और सभी कुछ स्वाहा।।
अब पामर भगवान बने, ये भीख माँगने आया।।४।।

मन के विकार नासो ......

मन के विकार नासो हे! आदिनाथ देवा ..... ।।
भव की भँवर में भ्रमत, तुम ही हो एक खेवा।
कब तक रुलूँगा भगवन, देखा ना तुमसा देवा।।
जग में तो देव सारे, हैं भव भ्रमण के मारे।
जो सेवा नाहिं चाहें, देवें स्वपद का मेवा।।
रागादि आग शीतल, निज आत्म माहिं करके।
तुम ही हो इस भवोदधि में, तारने को खेवा।।
तुम समान बनकर, हो शान्त आग मेरी।
हो करके वीतरागी, अरहत नाम देवा।।
संसार ताप छूटे बस, एक चाह देवा ... ।।

अब तो चेत रे! भइया ......

अब तो चेत रे! भइया भज ले, आतम सत्य सुखेरा ।
भटकत हो गये काल अनन्ते जग स्वारथ का डेरा... ।।

किसको अपना माने है तू, स्वारथ के सब साथी ।
काम जो ना हो, उनके मन का माने तुझको पापी ।
छोड जगत को अब निज भज ले, सुख का जहाँ सवेरा ।।

धन-बल तेरे काम ना आवे, निज वनिता-परिवारा ।
सबको अपना सुख है प्यारा, तू क्यों बना दुःखारा ।
दुःख का लेश न निज आतम में वो ही है बस तेरा ।।

सत्य स्वरूप नहीं है जाना, लख चौरासी भटका ।
भटकत हो गये काल अनन्तो, सुख का मिला न टमका ।
जब मिथ्या श्रद्धान हटे तो, सुख का होय सबेरा ।।

परद्रव्यों मे लपट-लपट कर, सुख की इच्छा धारी ।
करते-करते भोग मिटी ना, तेरी ये बीमारी ।
तत्वज्ञान दीपक से निज उर, प्रगटा ज्ञान सवेरा ।।

भइया अब मैं ठान लयी है, छूटे सब संसारा ।
तिल-तुष मात्र नहीं है मेरा, अब तो निज उर धारा ।
भवसागर से पार होन को, बोध-ज्ञान मै हेरा ।।

जिन-दीक्षा बिन मुक्ति ना होगी, बोले श्री जिनवाणी ।
जिनवाणी का मर्म बतावें, सम्यक् भेद-विज्ञानी ।
अब निज मे ही जम सुख पाले, सिद्ध परम पद तेरा ।।

अब तक मिथ्यात्व सहित जग में ......

अब तक मिथ्यात्व सहित जग में, क्या किया नहीं है वो बोलो ... ।।
बस आत्मज्ञान ही नहीं किया, अब जागो निज अन्तर खोलो ।
जिनरूप सजे, पर खूब मजे, निज आतम क्यों भूले बोलो ।।
अब ध्यावो इस शुद्धातम को, जय बोलो बस इसके होलो ।
अब फेर नहीं पर में डोलो, बस निज आतममय ही होलो ... ।।

हमने तो धर्म पाया......

हमने तो धर्म पाया, अब तुम भी धर्म पाओ ।
विज्ञानमय है आतम, अब तुम भी जान जाओ ... ।।

नहिं जग में कोई अपना, कहते हैं सर्व ज्ञानी ।
बिन आत्मा को जाने, तुम क्यों बने अज्ञानी ।
अब भेदज्ञान पाओ, निज आत्मा ही ध्यावो... ।।

नहिं कर्म आत्मा में, है आत्मा अछूता ।
धर्मी ही मर्म जाने, कर्मों से है यह रीता ।
नहिं राग-द्वेष मुझमें, शुद्धात्मा ही ध्यावो... ।।

नहिं धर्म तीर्थ में है, धर्मी तो आत्मा है ।
बाहर जो धर्म जाने बहिरात्मा कहा है ।
आतम ही धर्ममय है, परमात्मा को ध्यावो... ।।

ध्रुव आत्मा को ध्याकर, दुःख—द्वन्द्व सब मिटाओ ।
तीर्थंकरो ने ध्याया, अब उस ही पथ पे आओ ।
बाहर कहीं ना सुख है, ध्रुवधाम में ही आओ... ।।

है तत्त्व सात जानो, चिद्रूप है इन्ही में ।
निर्वाण ना कहीं है, निर्वाण आत्मा मे ।
निर्वाण क्षेत्र ध्याकर, सिद्धात्मा हो जाओ ... ।।

हिंसा धर्म के नाम पर ना हो कभी .....

हिंसा धर्म के नाम पर ना हो कभी, आत्मगुणरत हों सदा निर्भय सभी...।।

गर धर्म में जीव का बलिदान हो, धर्म की फिर क्यो जरुरत हो कभी ।
जीव हिंसा से धर्म होता नहीं, यो समझ लो हे! सदा चेतन सभी ।।

पर दया बिन आत्मा मिलता नहीं, आत्मा के बोध बिन ना सुख कही ।
सुख सदा ही जीव की है चाहना, सुख सरोवर आत्माये हैं सभी ।।

आत्मगुणरत हो सदा निर्भय सभी, हिंसा धर्म के नाम पर ना हो कभी ।
आत्मा की हो रही हिंसा सदा, ध्यान अब तक क्यों ना कीन्हा है कभी ।।

जो सदा रतिवंत नित शुद्धात्म में, पर दया भी है सदा उन को लही ।
हिंसा धर्म के नाम पर ना हो कभी, आत्मगुणरत हों सदा निर्भय सभी... ।।

गर जिनवाणी ज्ञान न मिलता......

गर जिनवाणी ज्ञान न मिलता, वीर प्रभू कैसे गुण गाते ।
गर जिनवाणी ज्ञान ना सुनते, कैसे बोध ज्ञान हम पाते ... ।।

कैसे निज आतम को पाते, कैसे निज ज्ञायक को ध्याते ।
आत्म ज्ञान बिन सुख ना कही भी, कैसे भव भ्रम रोग मिटाते ।।

कैसे चर्तुगति नाश करके, पंचमगति सिद्धपद पाते ।
कैसे जिनशासन को गाते, कैसे मुनि ह्वै सिद्ध कहाते ।।

अरे! ज्ञान को दीप......

अरे! ज्ञान को दीप जलाजोजी, म्हान मिथ्या मग स बचाजोजी ।
म्हारो महावीर ही साचोजी, म्हान महावीर ही जांच्योजी ।।

म्हार मनड मैं थे ही जचाज्योजी, म्हान भव बंधन स बचाज्योजी ।
म्हान दिव्यध्वनी न (को) सुनाज्योजी, म्हान स्व-पर विवेक बताज्योजी ।।

थार–म्हाँर को भेद मिटाज्योजी, म्हान आतम ज्ञान सिखाज्योजी ।
म्हान ध्यान ही थारो जचाज्योजी, म्हान–म्हार को भेद मिटाज्योजी ।।

वीतरागता का ही सपना अच्छा ......

वीतरागता का ही सपना अच्छा लगता है ।
अरे! बताओ जग में क्या कोई अपना लगता है ... ।।

महाभाग्य हैं, प्रभो! आपके दर्शन होना हैं ।
नहीं गया मिथ्यात्व जो अब तक, वो क्षय होना है ।।

भटक चुका हूँ जग में तो मैं, अब नहिं भ्रमना है ।
नही लखा जग में कोई अपना, मिथ्या तजना है ।।

अब तुम दर्शन से उर में मम, महिमा आई है ।
गई कालिमा मिथ्यातम की, निज-सुध आई है ।।

अब होऊँ शुद्धात्म मगन जिन रूप ही भाया है ।
स्वप्न हुए साकार हमारे, राग नशाया है ... ।।

हिंसा ना होवे नाथ ऐसा भाऊँ मैं ......

हिंसा ना होवे नाथ ऐसा भाऊँ मैं ।
ना होवे कोई अनाथ जग में चाहूँ मैं ... ।।

पर जीवों का ना घात होवे भाऊँ मैं ।
समतामय हों सब जीव ऐसा चाहूँ मैं ।।

ना पर कृत हो पर घात कोई चाहूँ मैं ।
हो सम्यक् ज्योति प्रकाश जग में चाहूँ मैं ।।

निज-पर का भेद सुजान, निज ही चाहूँ मैं ।
शुद्धातम रूप सुजान, निज अब ध्याऊँ मैं ।।

जिन रूप सजा मम रूप, अब हो जाऊँ मैं ।
निज सुखसागर के माँहि ही रह जाऊँ मैं ।।

शुद्धातम के ही ध्यान में, रम जाऊँ मैं ।
हिंसा ना होवे नाथ ऐसा भाऊँ मैं ... ।।

हिंसा की कमाई को ...

हिंसा की कमाई को, क्यों भोग रहा है ।
हिंसा में धर्म ना है, क्यों भूल रहा है ... ।।

हिंसा है सदा हिंसा, भव-भव में रुलाती है ।
इस भव की भवोदधि में, बहु दुःख दिलाती है ।।

पर की पीडा जानो, पर को दुःख होता है ।
खुद—सा ही सदा जानो, पर को दुःख होता है ।।

पापों की कमाई का फल पशु बन कटते हैं ।
गर हिंसा छोडी नां, कल को तेरी बारी है ।।

रे! चेत तूं चेतन है, चेतन तेरी काया है ।
पापों से रहित है तूं, तूं ज्ञान स्वभावी है ।।

आतम में जो रम ले तू, आतम हिंसा छूटे ।
बन कर परमातम तूं, भव-भव का भ्रमण छूटे ।।

जय जय जिनवाणी माँ ......

जय-जय, जिनवाणी माँ, जय-जय जिनवाणी माँ... ।।
पायी शरण तिहारी मैंने हे! जिनवाणी माँ ।
नहीं भ्रमूँगा जग में अब मैं, हे! जिनवाणी माँ ।।

भ्रम्यो चतुर्गति तुम ही बतायो, हे! जिनवाणी माँ ।
तेरे ज्ञान बिना जग सूना, हे! जिनवाणी माँ ।।

महाभाग्य इस दुःख काल में, मिलना तेरा माँ ।
राज्य सम्पदा की क्या कीमत, तुम बिन जाने माँ ।।

तुमसे सदा सत्य मारग का, ज्ञान मिले हे! माँ ।
निज--पर ज्ञान तुम्हीं से प्रगटे, हे! जिनवाणी माँ ।।

थारे ज्ञान यथारथ से हो, भेद ज्ञान हे! माँ ।
भेदज्ञान से सिद्ध अनन्तानन्त हुए हैं माँ ।।

सिद्ध सम्पदा तुम्ही बतायो, हे! जिनवाणी माँ ।
मोक्षमहल को रूप बतायो, हे! जिनवाणी माँ ।।

सम्यक् पथ को तुम्हीं जतायो, हे! जिनवाणी माँ ।
आतम ज्योति तुम्ही प्रगटायो, हे! जिनवाणी माँ ।।

चार गति में भ्रमते-भ्रमते......

चार गति मे भ्रमते-भ्रमते, नहीं मिला सुख इक क्षण भाई ।
जिनवाणी ही परम सहाई, देवे मोक्षमार्ग दरशाई... ।।

लख चौरासी भ्रमते-रुलते, काल अनन्ते खोये भाई ।
परद्रव्यो से प्रीति लगाई, पर ना हुआ निज कभी हे! भाई ।।

महाभाग्य इस दुःख काल में, जिनवाणी की शरणा पाई ।
जिनवाणी के ज्ञान बिना तो, नहीं मिला निजरूप दिखाई ।।

सत्य ज्ञान श्रद्धान बिना तो, जीवन दुःखमय रहा ही भाई ।
जिनवाणी का वचन यथारथ, अब तो श्रद्धा में लो भाई ।।

ज्ञान यथारथ निज-पर करके, जीवन में पाओ सुख भाई ।
आतमरूप माहि ही जम लो, आतम रूपसदा सुख दाई ।।

तीन लोक में ज्ञान एक मैं भाई रे! ......

तीन लोक में ज्ञान एक मैं भाई रे! ।
वीतरागता सार एक सुखदाई रे ... ।।

भटकत हो गई चौरासी बहु भाई रे!,
जन्म जरा करते करते भरपाई रे ।
महाभाग्य से महावीर-मग पाई रे,
पंचेन्द्रिय के फेर में ना फँस जाई रे ।।

मोक्षमार्ग का हुआ उद्योत है भाई रे!
उस पर भी सद्गुरु-सा गुरु मैं पाई रे ।
महाभाग्य से निज उर महिमा आई रे,
भेदज्ञान ही दुःखहर सुख प्रगटाई रे ।।

वीतरागता मम उर महिमा आई रे,
वीतरागता निज उर में लख पाई रे ।
वीतराग ही रूप सदा सुखदाई रे,
वीतराग ही सुखी परम पद पाई रे ।।

नहिं बाँधूँ निदान बन्ध ......

नहिं बाँधूँ निदान बन्ध जो, किया अनादि से ।
भ्रमते–भ्रमते मिला नहीं सुख, काल अनादि से... ।।

भटकत हो गये काल अनन्तों, लख चौरासी में ।
भ्रमण हुआ है चतुर्गति में, मिथ्या बुद्धि से ।।

काल अनन्ते मैंने खोये, सुख की चाहत मे ।
सुख का लेश नहीं मैं पाया, किन्हीं उपायो से ।।

महाभाग्य से जिनवाणी का, सार लहा हूँ मैं ।
भेदज्ञान मम निज उर जागा, माँ जिनवाणी से ।।

अब पाऊ वो सुख मैं माता, जो तुमने गाया ।
सिद्धालय में वास होय मम, नहीं जो है पाया ।।

भ्रमण सदा को नाश होय, यह विनती है तुमसे... ।।

जिन–बिम्ब दर्शन निज के दर्शन ....

जिन–बिम्ब दर्शन निज के दर्शन हेतु हैं, आधार हैं।
जो रह सके ना आतमा में, उनको ये आधार हैं ... ।।

जिनने बताया जगत को कि आत्मा भगवान है।
क्यों ना रमें निज आत्मा में, तू स्वयं जिनराज है ।।

अब चेत रे! चेतन जरा यह, दाँव बहुविधि आया है।
जो अनादि काल से ऐसा सु अवसर पाया है ।।

दिव्यध्वनि का विरह पर, जिनवाणी मर्म लखाया है।
भेदज्ञान ज्योति जो, पाने का अवसर आया है ।।

होऊँ अब प्रभु आप सम, मम मन में भाया है।
लहूँ निजानन्द राज प्रभु जो तुमने पाया है ।।

मत राग करो मत द्वेष करो ....

मत राग करो! मत द्वेष करो! निज आतम ज्ञान करो।
मत पाप करो! मत पुण्य करो! निज आतम ध्यान धरो... ।।

अब तक मैंने पर को ही है, सुख-दुःख का हेतु गिना।
निज के सुख का सत्यारथ मग, नहिं देखा और सुना।
अब भेदज्ञान को उर में धर, सम्यक श्रद्धान करो ... ।।

सुन करके भी सुनने में ही, अपना कल्याण गिना।
जो स्वयं ज्ञानमय तत्त्व सदा, उसको ही नहीं गुना।
निज-पर विवेक करके अब तो, निज का ही ध्यान धरो ...।।

है महाभाग्य ऐसा जो अब तो, मिले जिनागम नाथ।
अब होवे ना संसार-भ्रमण, बस यही प्रार्थना नाथ।
जब तक संसार रहे मेरा, जिनवर उर हृदय धरो ... ।।

संसार कामना होवे ना अब, होंऊँ निज का नाथ।
अब मम मय ही मै हो जाऊँ, है यही प्रार्थना नाथ।
बस वीतरागता ही मम में, प्रगटे वो काम करो ... ।।

महावीर के वीर सपूतों ने देखो

महावीर के वीर सपूतों ने देखो वो काम किया ।
कुन्दकुन्द से आत्मज्ञानी बन आत्मतत्त्व दर्शाय दिया... ।।

सीमन्धर की दिव्यध्वनी को, जग जीवों हित दिखा दिया ।
आत्मज्ञान का वैभव दर्शा, मिथ्यामत का नाश किया ।।

समयसार का सार बताकर, जीवों का उद्धार किया ।
आत्मतत्त्व ही जग में अपना, अन्य प्रलाप मिटाय दिया ।।

नियमसार का नियम बताकर, शुद्धाचरण प्रकाश किया ।
सत्याचरण सदा ही पाऊँ, मिथ्याचरण मिटाय दिया ।।

प्रवचनसार की ज्ञान-ज्योति से, आत्मज्ञान को जगा दिया ।
मिथ्यातम की घटा हटाकर, आतमतत्त्व जगाय दिया ।।

पचास्तिकाय की रचना में, अस्ती का श्रद्धान जगाया ।
अस्ती की मस्ती सदा रही, शुद्धातम का दीप जलाया ।।

अष्टपाहुड की रचना कर, जीवों को सत्याचरण दिया ।
शासन आचार्य तुम्हें वन्दूँ, जो सत्य पन्थ निर्ग्रन्थ दिया ।।

जिनवर के ये वचन हैं ......

जिनवर के ये वचन हैं, चेतो रे! चेत भाई ।
इस पुण्य की कमाई, क्यों पाप में गँवाई... ।।

देखे निगोद भाई, पर कौन है सहाई? ।
इस पुण्य की कमाई, का क्या भरोसा भाई ।।

मिथ्यात्व नशे बिन ना शान्ती कहीं दिखाई ।
अब राग-द्वेष नशलो, हो वीतराग भाई ।।

वीतराग होवे तब, जग दे सब दिखाई ।
तब अनंत चतुष्टय से, हो कृत्य-कृत्य भाई

इस मग पे चल सदा ही, सुख-शान्ति है पाई ।
सम्यक् जो बोध होवे तो, मोक्षमग है पाई ।।

आत्मा हमारा हुआ है क्यों काला ......

आत्मा हमारा हुआ है क्यों काला,
राग से है मेला हुआ है झमेला ।
दौड़ा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, चार गति में दौड़ा ... ।।

राग करोगे — नहीं नही, द्वेष करोगे — नहीं नहीं ।
पूजा करोगे — हॉं हॉं, भक्ति करोगे — हॉं हॉं ।।
दौड़ा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, मुक्तिपुरी में दौड़ा ... ।।

मनुष्य गति में पहुँचा, दुनिया को जब देखा ।
मान में गँवाया जीवन, भटक गयी फिर नौका ।।
दौडा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, मनुष्य गति में दौड़ा ।
मान करोगे — नहीं नहीं, घमण्ड करोगे — नहीं नहीं ।
दौड़ा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, मुक्तपुरी में दौड़ा ... ।।

नरक गति में पहुँचा, दु:खों को जब देखा ।
क्रोध की जलती ज्वाला थी, स्व को फिर से भूला ।
दौड़ा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, नरक गति में दौड़ा ।
क्रोध करोगे — नहीं नही, गुस्सा करोगे — नहीं नहीं ।
दौड़ा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, मुक्तपुरी में दौड़ा ... ।।

तिर्यच गति में पहुँचा, वहॉं भी खुद को भूला ।
माया मे गँवाया जीवन, भटक गई फिर नौका ।
दौडा - दौड़ा - दौडा चेतन, तिर्यंचगति में दौड़ा ।
माया करोगे — नहीं नहीं, हिंसा करोगे — नहीं नहीं ।
दौडा - दौडा - दौड़ा चेतन, मुक्तपुरी में दौड़ा ... ।।

देवगति में पहुँचा, आकुलता में डूबा ।
लोभ में गँवाया जीवन, वहाँ भी खुद को भूला ।
दौड़ा - दौड़ा - दौडा चेतन, देवगति में दौड़ा ।
लोभ करोगे — नही नहीं, लालच करोगे — नहीं नहीं ।
पूजा करोगे — हाँ हॉं, स्वाध्याय करोगे — हाँ हाँ ।
दौडा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, मुक्तपुरी मे दौड़ा ... ।।

चेतन राजा सुन्दर है, वीर प्रभु समझाते हैं ।
स्व को देख लीन हो जा, मुक्ति-वधू पुकारे है ।
दौड़ा - दौड़ा - दौड़ा चेतन, मुक्तपुरी में दौड़ा ।
स्वाध्याय करोगे – हाँ हाँ, मन्दिर आओगे – हाँ हाँ ।
पूजा करोगे – हाँ हाँ, भक्ति करोगे – हाँ हाँ ।
दौडा - दौड़ा - दौडा चेतन, मुक्तपुरी में दौड़ा ... ।।

ज्ञाता-दृष्टा राही हूँ ......

ज्ञाता-दृष्टा राही हूँ, अतुल सुखों का ग्राही हूँ, बोलो मेरे संग ।
आनन्दघन-आनन्दघन-आनन्दघन-आनन्दघन-आनन्दघन ... ।।

आत्मा में रमूँगा में छिन-छिन में, चाहे मेरा ज्ञान जाये निज-पर में ।
अपने को जाने बिना लूँगा नहीं दम, आतमज्ञान में बढ़ाऊँगा कदम ।
सुख में दुःख में, दुःख में सुख मे, एक ही राह पर चल ।।
धूप हो या गर्मी, बरसात हो जहाँ, अनुभव की धारायें बहाऊँगा वहाँ ।
विषयों का फिर नहीं होगा जनम, आतमज्ञान में बढ़ाऊँगा कदम ।
दुःख में सुख में, सुख में दुःख में, एक ही राह पर चल ... ।।
गुण अनन्त स्वामी हैं, मुझमें ये रतन, गणधर भी हार गये कर वर्णन ।
अनुपम और अद्भुत है, मेरा ये चमन, आतमज्ञान मे बढ़ाऊँगा कदम ।
दुःख में सुख में, सुख में दुःख में, एक ही राह पर चल ... ।।

इतनी शक्ति हमें देना माता

इतनी शक्ति हमें देना माता, मन का विश्वास कमजोर हो न ।
हम चले मोक्षमारग में हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो न .. ।।

दूर अज्ञान के हों अंधेरे, तू हमें ज्ञान की रोशनी दे ।
हर बुराई से बचते रहें हम, हमको ऐसी तू मोक्षपुरी दें ।
बैर हो न किसी का किसी से भावना मन में बदले की हो न ।
हम न सोचें हमें क्या मिला है, हम ये सोचें किया क्या है अर्पण ।
फूल समता के बाँटे सभी को, सबका जीवन ही बन जाये मधुवन ।
अपनी समता का जल तू बहा के, कर दे पावन हरेक मन का कोना ।।

जैनी बालकों – क्या भाई क्या? ......

जैनी बालकों-क्या भाई क्या?इक बात सुनोगे-हाँ भाई हाँ ।।
अरे अभी सुनी थी-क्या भाई क्या? जिनधर्म का जलसा-वाह भाई वाह।
अरे प्रभु का दर्शन-वाह भाई वाह ।अरे सम्यग्दर्शन-वाह भाई वाह ।।

एक दो तीन चार ......

एक दो तीन चार – जैनधर्म की जय जय कार ।
पाँच छह सात आठ – सात तत्त्व का करेंगे पाठ ।
नौ दस ग्यारह बारा – जैनधर्म है हमको प्यारा ।
तेरह चौदह पंद्रह सोला – जैनधर्म का बच्चा बोला ।
सतरह अठारह उन्नीस बीस – पंच गुरु हमारे ईश ।
इक्कीस बाईस तेईस चौबीस – जैनधर्म के तीर्थंकर चौबीस ।

शुद्धातम है मेरा नाम ......

शुद्धातम है मेरा नाम, मात्र जानना मेरा काम ।
मुक्तिपुरी है मेरा धाम, मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम .... ।।

जहाँ भूख का नाम नहीं है, जहाँ प्यास का काम नहीं है ।
खाँसी और जुखाम नहीं है, आधि-व्याधि का नाम नहीं है ।
सत् शिव सुन्दर मेरा धाम, शुद्धातम है मेरा नाम ... ।।

स्व-पर भेद-विज्ञान करेंगे, निज आतम का ध्यान धरेंगे ।
राग-द्वेष का त्याग करेंगे, चिदानन्द रसपान करेंगे ।
सब सुख दाता मेरा धाम, शुद्धातम है मेरा नाम ... ।।

मैंने प्रभु के चरण पखारे ......

मैंने प्रभु के चरण पखारे ।
जनम-जनम के संचित पातक, तत्क्षण ही निरवारे ...।।

प्रासुक जल के कलश श्री जिन, प्रतिमा ऊपर ढारे ।
वीतराग अरहंत देव के, बोलूँ जय जय कारे ।।

चरणाम्बुज स्पर्श करत ही, छाये हर्ष अपारे ।
पावन तन-मन-नयन भये सब, दूर भये अँधियारे ।।

लख जिनराज सफल भयी अखियाँ .....

लख जिनराज सफल भयी अखियाँ ... ।।

सुमरत नाम भयो मुख उज्ज्वल, दर्शन कर शीतल भयी छतियाँ ।
भयो प्रकाश मेरे घट अंतर, कट गई मोह की कील रतियाँ ।।

सम्यक् सहित मिल्यो रत्नत्रय, बुझ गई करम दाह की भटियाँ ।
चल चेतन जिनराज पंथ पर, स्वागत करे मुक्ति की सखियाँ ।।

मिथ्यातम ही महापाप है ......

मिथ्यातम ही महापाप है, सब पापों का बाप है ।
सब पापों से बड़ा पाप है, घोर जगत संताप है ... ।।

हिंसादिक पांचों पापों से, महा भयंकर दुखदाता ।
सप्त व्यसन के पापों से भी, तीव्र पाप जग विख्याता ।
है अनादि से अगृहीत ही, शाश्वत शिवसुख का घाता ।
वस्तुस्वरूप इसी के कारण, नहीं समझ में आ पाता।
जिनवाणी सुनकर भी पागल, करता पर का जाप है ...।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय होता है, तो गृहीत अपनाता है ।
दो हजार सागर त्रस रहकर, फिर निगोद में जाता है।
पर में आपा मान स्वयं को, भूल महादुख पाता है ।
किन्तु न इस मिथ्यात्व मोह के, चक्कर से बच पाता है।
ऐसे महापाप से बचना, यह जिनकुल का माप है ...।।

इससे बढ़कर महाशत्रु तो, नहीं जीव का कोई भी ।
इससे बढ़कर महादुष्ट भी, नहीं जगत में कोई भी ।
इसके नाश किए बिन होता, कभी नहीं व्रत कोई भी ।
एकदेश या पूर्णदेश व्रत, कभी न होता कोई भी ।
क्रियाकाण्ड उपदेश आदि सब, झूठा वृथा प्रलाप है ...।।

यदि सच्चा सुख पाना है तो, तुम इसका संहार करो ।
तत्क्षण सम्यग्दर्शन पाकर, यह भवसागर पार करो ।
वस्तुस्वरूप समझने को अब, तत्त्वों का अभ्यास करो ।
देह पृथक है जीव पृथक है, यह निश्चय विश्वास करो ।
स्वयं अनादि-अनंत नाथ तू, स्वयंसिद्ध प्रभु आप है ...।।

गर हो जनम दुबारा .....

गर हो जनम दुबारा, मानव जनम मिले ।
फिर से यही जिनालय, भगवत् शरण मिले .. ।।

समयसार का पठन हो, निश्चय का हो मनन ।
हर स्वांस पर हमारे, नियमसार का रटन ।
सम्यक् सुबोध श्रद्धा, अरु आचरण मिले ।।

मुनि कुन्द हों हमारे, श्रद्धा की एक सुमन ।
उपाध्याय सर्व साधु, उनको मेरा नमन ।
उपकार जिनवाणी का, भूलें नहीं जन्म ।।

आतम की कर लो श्रद्धा, फिर पाप का दफन ।
अतिम समय अधर पर, आतम ही हो वचन ।
हो एक लक्ष्य अपना, शिवपुर मे हो गमन ।।

मदिर मे नित्य जाऊँ, करुँ शास्त्र का मनन ।
भेदज्ञान बल के द्वारा, खोजूँ मैं आतमन ।
ध्रुवधाम की ध्वनि से, गुँजाऊँगा गगन ..।।

सुन रे जिया! चिरकाल गया ....

सुन रे जिया! चिरकाल गया
तुने छोड़ा न अब प्रमाद, जीवन थोडा रहा ...।

जिनवाणी कहती है तेरी कथा, तुने भूल करी सही भारी व्यथा ।
अब करके स्वय की पहिचान, जीवन थोड़ा रहा ... ।।

जीव स्वयं तू परम उपादेय, अजीव सभी हैं ज्ञान के ज्ञेय ।
निज को निज, पर को पर जान, जीवन थोड़ा रहा ... ।।

आस्रव बंध ये भाव विकारी, चेतन ने पाया दुःख इनसे भारी ।
अब इन दुखो को पहिचान, मिथ्यात्व की लै लै जान, जीवन ... ।।

सवर निर्जरा शुद्ध भाव हैं, मोक्षतत्त्व पूर्ण बंध अभाव है ।
इनको ही विश्वस्त मान, जीवन थोड़ा रहा .... ।।

राग रहित तीनों काल विमल है अचल अखंड अविनाशी अमल है ।
मान प्रभु के समान, करके तू सम्यक् श्रद्धान, जीवन थोडा .... ।।

जब पुण्य पल्ले होता है ......

जब पुण्य पल्ले होता है, दुश्मन भी दोस्त हो जाता है ।
जब पाप पल्ले होता है, अपना भी गैर हो जाता है... ।।

जब पाप पल्ले होता है, घर दीपक आग लगाता है ।
इस पुण्य-पाप के चक्कर से, विरला ही छुटने पाता है ।।

नहिं धर्म ज्ञान के बिना कोई, इस भवसागर से छूटा है ।
है परम भाग्य हे प्रभु ! आज मैं, जिनशासन को जाना है ।।

जब शुद्धातम का ध्यान होय, तो पाप-पुण्य नश जाते हैं ।
ऐसा करते निज में रहते, संसार-चक्र मिट जाते हैं... ।।

मेरे प्रभु वीतराग और नहिं कोई ......

मेरे प्रभु वीतराग और नहिं कोई ।
अष्टादश दोष रहित निर्विकार सोई ...।।

मिथ्यातम नाश कियो ज्ञान ज्योति जोई ।
निज-परिणति रास रच्यो पर-परिणति खोई ।।

गुण अनंत प्रगटाए साधना विलोई ।
सकल ज्ञेय ज्ञायक सर्वज्ञता सँजोई ।।

मैंने तो पाप बेल भव अनन्त बोई ।
राग-द्वेष कीच-बीच आत्मा भिजोई ।।

जिनप्रभु की छवि देख ज्ञान माल पोई ।
वीतरागता की रुचि जागत सुख सोई ।।

हमारे पार्श्व जिनेश महान ......

हमारे पार्श्व जिनेश महान ।
भव-दुःख-हर्त्ता शिव-सुख-कर्त्ता, त्रिभुवनपति गुणवान ...।।

विघ्न विनाशक संकट नाशक, स्व-पर प्रकाशक भान ।
शुक्लध्यान धर तुमने पाया, स्व-पर प्रकाशक ज्ञान ।।

परकृत सर्व उपद्रव नाशक, सुनो विनय धर ध्यान ।
सर्व अमंगल हरो हमारे, मंगलमय भगवान ।।

आतमा हूँ, आतमा हूँ, आतमा ......

आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा, मैसदी ज्ञायक स्वभावी आत्मा ... ।।

शस्त्र से भी मैं कभी कटता नहीं, तीर से भी मैं कभी छिदता नहीं ।
अग्नि से भी मैं कभी जलता नहीं, जल गलाये तो कभी गलता नहीं ।।

चरम चक्षु से कभी दिखता नहीं, मुर्ख नर मिथ्यात्व बस जाने सही ।
ज्ञानियों के गम्य ज्ञायक आतमा, आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा ।।

क्रोध माया मान से भी भिन्न हूँ, लोभ अरु रागादि से भी भिन्न हूँ ।
भावकर्मों से रहित मैं आतमा, आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा ।।

आवरण है भिन्न दर्शन ज्ञान के, है अलग पर्दे करम मोहादि के ।
द्रव्यकर्मों से रहित मैं आतमा, आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा ।।

भूलकर मैं आपको दुख पा रहा, पर-विभावों को भी अपना रहा ।
भूल मेटन हार भी मैं आतमा, आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा ।।

गोरा काला जो भी दिखता चाम है, मोटा पतला होना इसका काम है ।
सब शरीरों से रहित है आतमा, आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा ।।

दीप सम स्व-पर प्रकाशी हूँ सदा, मात्र ज्ञाता और दृष्टा हूँ कुसदा ।
शात शीतल शुद्ध निर्मल आतमा, आतमा हूँ, आतमा हूँ आतमा ।।

कुन्दकुन्द का यह कहना ......

कुन्दकुन्द का यह कहना, राग में जीव तू मत फँसना ।
राग में जीव तू मत फँसना, मोह में जीव तू मत फँसना...।।

अनादि काल से रुलता है, दृष्टि पर में करता है ।
अब न ये गलती करना, राग में जीव तू मत फँसना ।।

यह सत् आदि अनादि है, नहीं इसका कोई साथी है ।
निज में ही दृष्टि करना, राग में जीव तू मत फँसना ।।

देह मंदिर में देव है तू, ज्ञायक को पहिचान ले तू ।
उसमें ही दृष्टि धरना, राग में जीव तू मत फँसना ।।

तू तो गुणों का सागर है, ज्ञान शक्ति दिवाकर है ।
सत् की तू दृष्टि करना, राग में जीव तू मत फँसना ।।

हम होंगे ज्ञानवान ......

हम होंगे ज्ञानवान, हम होंगे ज्ञानवान,
हम होंगे ज्ञानवान, एक दिन ।
हो-हो मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास,
हम होंगे ज्ञानवान, एक दिन ... ।।

हम बनेंगे वीत राग, बनेंगे वीत राग,
हम बनेंगे वीतराग, एक दिन
हो हो मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास,
हम बनेंगे वीत राग, एक दिन ... ।।

नहिं परद्रव्यों के साथ, लेके स्वद्रव्य का हाथ,
लेके स्वद्रव्य का हाथ, एक दिन ।
हो हो मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास,
हम बनेंगे वीत राग, एक दिन ... ।।

करने आतम का कल्याण, करने आतम का कल्याण,
करने आतम का कल्याण, एक दिन ।
हो हो मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास,
हम करेंगे कल्याण, एक दिन ... ।।

हम धरेंगे आतमध्यान, धरेंगे आतमध्यान,
हम धरेंगे आतमध्यान, एक दिन ।
हो हो मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास,
हम धरेंगे आतमध्यान, एक दिन ... ।।

पार्श्व प्रभु तुम्हे पुकारूँ ......

पार्श्व प्रभु तुम्हें पुकारूँ मैं ।
ऐसी मति दो एक बार निज, स्वपद निहारूँ मैं ...।।

भवसमुद्र दल-दल से निकरूँ, रूप निखारूँ मैं ।
जर्जर तरणी डगमग डोले, पार उतारूँ मैं।।

कर्मशत्रु शिवसुख के दाता, इन्हें पुकारूँ मैं ।
सिद्ध शिला पर पास तुम्हारे, नाथ पधारूँ मैं ।।

इस शासन की महिमा न्यारी

इस शासन की महिमा न्यारी, इस शासन पर अभिमान ।
ये प्यारा आतमराम हमारा, न्यारा आतमराम हमारा .. ।।

ये अनुभव करती आत्मा, इसका ये अनुभव न्यारा ।
इसका ये सुंदर अनुभव, लगता है कितना प्यारा ।
गूँज रहा है इसके सहारे, आनंद का जयगान ये प्यारा ।।

हम जिनवाणी के बालक, हम इसकी आँख के तारे ।
पलने मे इसके झूले, माता के नयन सितारे ।
गूँज रहा है इसके सहारे, आनद का जयगान ये प्यारा ।।

हम जिनवर के लघु-नंदन, हम इसके राजदुलारे ।
आनद में इसके झूले, पिता के नयन सितारे ।
गूँज रहा है इसके सहारे, आनंद का जयगान ये प्यारा ।।

निज आतम की ज्योति ...

निज आतम की ज्योति जलालो, तत्त्वज्ञान की ज्योति जगा लो... ।।

बिना ज्ञान तम नहीं मिटेगा, बिना ध्यान तम नहीं हटेगा ।
स्व-पर विवेक विज्ञान जगा लो, निजानन्द रस पान को पा लो ।।

जग दीपक तो बहुत जलाये, आतम दीप नही प्रगटाये ।
स्व श्रद्धान की नींव जमा लो, आतमज्ञान की ज्योति जला लो ।।

निज आतम ही सार जगत मे, अन्य सभी उपचार जगत में ।
मुनिदशा धर कर्म खपा लो, सिद्धदशा का पद प्रगटालो ।।

श्री जिनदेव भरोसो साँचो ......

श्री जिनदेव भरोसो साँचो ।
शाश्वत एक आत्मा चेतन, और सभी झूठे जग ढाँचौ ...।।

दोष अठारह रहित देव हैं, इनको चाहे जैसे जाँचो ।
इनके चरण-कमल में मन को, निशदिन प्रतिपल प्रतिक्षण राँचौ ।।

हिंसा झूठ कुशील परिग्रह, चोरी पाप तजौ अब पाँचौ ।
अनुभव रस चिन्तामणी वैभव, और जगत वैभव सब काँचौ ।।

तुम कब तक घूमोगे संसार मां

तुम कब तक घुमोगे संसार मां, चालो चालो नी चेतन दरबार मां ।।

अनादिकाल से घूम रहा है, पर में तू सुख को खोज रहा है ।
जहाँ सुख का नहीं है ठिकाना, चालो चालो नी चेतन दरबार मां ।।

सिद्ध समान स्वभाव है चेतन, विकारी भाव को तज दे तू चेतन ।
पुरुषार्थ शक्ति प्रगटवाना, चालो चालो नी चेतन दरबार मां ।।

मृत्यु-महोत्सव की तैयारी कर ले, ममता तजि ने समता को धर ले ।
तेरे पास है सुख का खजाना, चालो चालो नी चेतन दरबार मां ।।

अब तक जीवन ऐसा ही बिताया, संसार को ही तूने बढ़ाया ।
आज पुण्य उदय है हमारा, चालो चालो नी चेतन दरबार मां ।।

आनद सागर अंतर में उछले, आनंद आनंद लहरें हैं डोले ।
उस सागर में डुबकी लगावना, चालो चालो नी चेतन दरबार मां. ।।

प्रभु तुम हरो मेरी पीर ......

प्रभु तुम हरो मेरी पीर ।
राग-द्वेष विनाश कर दो, देहु समरस नीर...।।

लीन विषय-कषाय होकर, सही जग की पीर ।
कर्मफल भोगत अकेलो, कोऊ नाहीं सीर ।।

तत्त्व चिन्तन बिना पाई, चार गति की भीर ।
शुद्ध-बुद्ध स्वरूप बिसरचो, भूल आतम हीर ।।

प्रभु का जो नित भजन करे ......

प्रभु का जो नित भजन करे।
पार्श्वनाथ को नाम लेत ही, संकट सकल टरें ...।।

निज स्वभाव छवि देखत उर में, मोद प्रमोद भरें ।
जब तक शिवपद मिले न तब तक, प्रभु पद नमन करें ।।

शुक्लध्यान धर क्षपकश्रेणी चढ़, जो निज भाव वरें ।
महा मोक्षपद पावें उनके, आठों कर्म जरें ।।

कैसे करुँ गुणगान प्रभु तेरो ......

कैसे करुँ गुणगान प्रभु तेरो, कैसे करुँ गुणगान ।
पर से भिन्न, स्व से अभिन्न, देखी चीज महान ... ।।

सारी पृथ्वी कागज बनाऊँ, समुद्र जल की स्याही लाऊँ ।
वनस्पति की कलम बनाऊँ, अरे, पूरा न होय बखान ।।

शक्ति का संग्रहालय तुझमें, शक्ति का संग्रहालय मुझमें ।
गुण के भरे गोदाम, प्रभु तेरो कैसे करुँ गुणगान ।।

अनंत गुण परिवार हमारा, अंदर बहती अमृत धारा ।
सुख सतोष महान, प्रभु तेरो कैसे करुँ गुणगान ।।

गोखुर में नहिं सिन्धु समाये, वायस लोक अनंत नहिं पाये ।
देखी चीज महान, प्रभु तेरो कैसे करुँ गुणगान ।।

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा, जड़ शब्दों से क्या हो लेखा ।
अनुपम चीज महान, प्रभु तेरो कैसे करुँ गुणगान ।।

शाश्वत सिद्धक्षेत्र को मैं नमूँ ......

शाश्वत सिद्धक्षेत्र को मैं नमूँ! जिनराज जी ।
संसार-भ्रमण दुःख मेटो, हे! जिनराज जी ... ।।

कर्माष्ट बन्ध मैं करा, सदा मुनिनाथ जी ।
नहिं दर्श मोह मम नशा, कभी मुनिराज जी ।।

मिथ्यात्व सहित शुभ किया, भ्रमा मैं नाथ जी ।
सम्यक्त्व प्राप्त नहिं हुआ, कभी ऋषिराज जी ।।

हो बोध-लाभ तो सुख, होवे यह सांच जी ।
मैं पाऊँ तुम सम सुखसागर परमात्म जी ।।

शुद्धात्म तत्त्व का लखारूप मैं आज जी ।
हो सम्यक् ज्ञान चारित्र, पूर्ण हे! नाथ जी ।।

सम्मेदाचल से सिद्धालय हो वास जी ।
शाश्वत सिद्धक्षेत्र को सदा नमूँ सिद्धात्म जी ।।

थे तो जिनवाणी के मारग ....

थे तो जिनवाणी के मारग, मारग चालो रे म्हारा मनड़ा ।
चालो रे म्हारा जीवणा, लख चौरासी कट जासी ...।।

कुण थारे संगे आयो, कुण थारे संगे जासी ।
कुण कांई गोरखधंधा राच्यो रे राच्यो रे म्हारा ... ।।

पिछला भव की कमाई, इनां भव मां कुण खाई ।
अगला भव को कांई सोच्यो रे, सोच्यो रे म्हारा ... ।।

ब्याता बाता मां ही, बाध्यां हसतां हसतां कर्म बाध्यां ।
चुकाणु पगरो तो रोई रे, रोई रे म्हारा ... ।।

थाने जिनवाणी समझावे, जड़–चेतन भिन्न बतावे ।
थे तो भेदज्ञान करणुं रे, करणु रे म्हारा ... ।।

विभाव भाव से नाता तोड़ो, स्वभाव से नाता जोड़ो ।
ज्ञायक के आश्रय से ही थाने मारग मिल जासी ... ।।

श्री जिननाम लिये बिन प्राणी ......

श्री जिननाम लिये बिन प्राणी, व्यर्थ जन्म भयो तोरा रे...।।
जल बुद-बुद सम काल वायु का, नेक न सहे झकोरा रे ।
ऐसे महा तुच्छ जीने पर, झूठा करत निहोरा रे ।।

भोगत भोग विषै न अघावत, जो पावत सोई थोरा रे ।
जलती अग्नि तेल सों ढाँपे, दूनी उठत हिलोरा रे ।।

दुःख पर दुःख बहु सहे, भूल में कहा न जावे बोरा रे ।
सच आतम परमात्म होय जब, जग से होय बिछोरा रे ।।

गुण अनन्त अरहन्त विराजे, राग-द्वेष सों कोरा रे ।
जाके भजन किये अघ भाजें, 'सन्त' वही प्रभु मोरा रे ।।

हम लाये हैं विदेह से ......

हम लाये हैं विदेह से तत्त्वों के ज्ञान को ।
जिनवाणी को रखना सभी भव्यों संभाल के ।
मक्खन जो परोसा है, छांछ को निकाल के ... ।।

देखो ये ग्रन्थराज है चिंतामणी जैसा ।
आचार्य कुन्दकुन्द ने निज हाथ से लिखा ।
भगवान आतमा है, जगाया जहान को ... ।।

दुनियाँ में जैनधर्म का, न्यारा है रास्ता ।
पुद्गल का जीव से नहीं, कोई है वास्ता ।
भूलो नहीं समझो जरा, ज्ञायक स्वभाव को ... ।।

कर्तृत्वबुद्धि से दुखी होती है ये दुनिया ।
रागो मे धर्म मान के, बैठी है ये दुनिया ।
आओ मेरे समझो जरा, इस भेदज्ञान को ... ।।

कहीं जनम का सूरज ......

कहीं जनम का सूरज उगता, कहीं मरण की रैना ।
द्रव्य नहीं पर्याय बदलती, ये सद्गुरु का कहना... ।।

कहीं निकलती अर्थी देखी, चढ़ती कहीं बरातें ।
सुख के दिन बीत गये तो, बीती दुःख की रातें ।
बीती दुःख की रातें, सुख की हो बरसातें ।
वीतराग की ऐसी वाणी, क्यों न धीर है धरना ।।

जन्म-जन्म में चेतन तूने, बहुते दुःख उठाये ।
परघर फिरत बहुत दिन बीते, कब हुँ न निजघर आये।
कब हुँ न निजघर आये चेतन, नाम अनेक धराये।
चेतन अब तो तज विषयों को, निज आतम मे ही रहना ।।

पार्श्व प्रभु परम वीतरागी ......

पार्श्व प्रभु परम वीतरागी ।
भव तन भोगों से उदास हो, बन गये वैरागी ...।।
विश्वसेन वामादेवी के सुत, तुम बड़भागी ।
काशी त्यागि वन में पहुँचे, जब निजधुन लागी ।।

पंचमहाव्रत धारे तुमने, निज पद अनुरागी ।
सम्मेदाचल के पर्वत से, कर्म धूल त्यागी ।।

तुम दर्शन से मेरे उर में, निज महिमा जागी ।
भाव सहित प्रभु चरण पखारूँ, बुझे कर्म आगी ।।

तुमसे ना कहूंगा तो फिर . . . .

तुमसे ना कहूंगा तो, मैं फिर किससे कहूंगा।
तुम ही ना सुनोगे तो, मेरी कौन सुनेगा . . .
जानो हो मेरे दुःख को तुम्ही, मैं क्या कहूंगा।
नश जावे मेरा जन्म मरण, ये मैं चहूंगा।१।
तुमसे ही सुनी अपनी कथा, फिर क्यों भ्रमूंगा।
ध्याऊंगा निजातम ही सदा, सुख ही लहूंगा।२।
धारूंगा नग्न रुप प्रभू, तुमसा लगूंगा।
कर्मों को नाश कर हे प्रभू! तुममें मिलूंगा।
सिद्धों की सिद्धभूमि में, फिर वास करूंगा।
पाया ना कभी सुख जो - सदा उस में रहूंगा ४।

हे जीव । भव के भय का भेदन करने वाले इन (जिनेन्द्र) भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नही है? - तो तू भव समुद्र के मध्य मे रहने वाले मगर के मुख मे है।

नियम सार कलश

पारस प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स डी-४४ सेक्टर-८ नोएडा

गागर में सागर

* शास्त्रों का पार नहीं है, काल थोड़ा है और हम मंद बुद्धि है, अत: शीघ्र वह कला सीखलो जिससे जन्म मरण का क्षय हो।
* जगत में जो सर्वोत्कृष्ट है वह सब अपने स्वभाव में ही भरा है- एक क्षण उसकी ओर देखलो, तुम धन्य हो जाओगे।
* ज्ञान में जिस समय जो कुछ जानने को मिला है, ज्ञान का वह परिणाम अपना ही स्वभाव है। उसे 'ऐसा क्यों और'ऐसा क्यो नहीं' ऐसी विषम कर्तृत्व बुद्धि से पलटने की चेष्टा न करो।
* तत्व-निर्णय अध्यात्म की प्रथम मंजिल है और वह जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता और कर्तव्य है।
* संकल्पों की-उत्पत्ति व पूर्ति जीवन नहीं, किन्तु संकल्पों का अभाव ही जीवन है।
* आत्मोद्धार के लिए आत्मनिरीक्षण आवश्यक है।
* सुन लेते हैं पर निर्णय नहीं करते वे मूढ़ हैं।
* अनुकूलता प्रतिकूलता वस्तु में नहीं दृष्टि में होती है।
* सत्पुरुष संपत्ति और विपत्ति में समभाव रखते हैं।
* 'कर्ता भोगी होता है और दृष्टा योगी'।